Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बृहत् निबन्ध भास्कर

Romak

डॉ० वचनदेव कुमार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वृहत् निबंध भास्कर

वचनदेव कुमार

एम॰ ए॰ (हिंदी-संस्कृत), पी-एच॰ डी॰, डी॰ लिट्॰

BHARATI BHAWAN (P & D)

भारती भवन

पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकाशक :

भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स)

ठाकुरवाड़ी रोड, कदमकुआँ, पटना 800 003

शाखाएँ : **नई दिल्ली**—4271/3 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002
कलकत्ता— 'आई॰एम॰ए॰ हाऊस', 53 क्रीक रो, कलकत्ता 700 014
बंगलूर—शंकर बिल्डिंग (फर्स्ट फ्लोर), 36 एवेन्यू रोड, बंगलूर 560 002
राँची—20 जेल रोड (पूर्व), थरपखना, राँची 834 001
मुजफ्फरपुर—पड़ाव पोखर, आमगोला, मुजफ्फरपुर 842 002

एजेंसियाँ : भारती भवन (एजेंसी), डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद रोड, भागलपुर 812 002
भारती भवन (एजेंसी), चौधरी कम्पाउंड, जी॰ बी॰ रोड, गया 823 001
सेन बुक स्टोर्स, गोदाम नं॰ 8, टैंक एरिया, साकची, जमशेदपुर 831 001
विद्या भवन एजेंसी, रेलवे सिनेमा रोड, धनबाद 826 001
आकर्ष बुक डिपो, टावर चौक, दरभंगा 846 004

© लेखक

53683

दिल्लीरमण-कल्याणी रेग्मी स्मारक पुस्तकालय
Dilliraman-Kalyani Regmi Memorial Library
काठमाडौं

द्वितीय संस्करण : 1994
द्वितीय पुनःमुद्रण : 2001

इस पुस्तक पर एक 3-D होलोग्रैम स्टिकर लगा है जो साधारण स्टिकरों से भिन्न है। हमारे होलोग्रैम स्टिकर की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

- पृष्ठभूमि पर भारती भवन का लोगो और नाम है, जो एक खास गहराई पर है।
- पुस्तक को हिलाने पर होलोग्रैम का पृष्ठभाग भी हिलेगा।
- पुस्तक को हिलाने पर होलोग्रैम पर बना वृत्त और तारा special effect दर्शाएगा।

आशा है, आप होलोग्रैम देखकर सही किताब पहचान पाएँगे।

वृहत् निबंध भास्कर
बी॰ बी॰ प्रिंटर्स, पटना 800 006 द्वारा मुद्रित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्राक्कथन

'वृहत् निबंध भास्कर' का यह द्वादश परिवर्द्धित संस्करण आप सुधीजनों के समक्ष है। विद्यानुरागी शिक्षक-बंधुओं, विद्याव्यसनी प्रधानाध्यापकों तथा प्राचार्यों ने 'वृहत् निबंध भास्कर' को पसंद किया, छात्रों ने इसे चाहा—इसी कारण इस नवीन संस्करण में अनेक उपयोगी परिवर्तन-परिमार्जन करने के लिए मैं बाध्य हुआ। इस संस्करण में पुराने विषयों को हटाकर सामयिक महत्त्व के कई निबंध जोड़ दिए गए हैं। इस संस्करण का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसमें इकत्तीस लघु निबंध भी हैं, जिनके आधार पर परीक्षार्थियों को माध्यमिक परीक्षा में पूछे जानेवाले लघु निबंधों की तैयारी में समुचित दिशानिर्देश मिल सकेगा।

एक बात मैं पुनः दुहरा देना चाहता हूँ कि निबंध अधकचरे अध्ययन का अकस्मात् वमन नहीं है, सूचनाओं का क्रमहीन संकलन नहीं है, तथ्यों की प्रलंब सूची नहीं है, विचारों का विवर्ण मानचित्र नहीं है, किसी बँधी-बँधाई लीक का अंधानुकरण नहीं है, किसी बटुतोषी लेखन की अवितथ प्रतिलिपि नहीं है, लँगड़ी बेजान भाषा का मखौल नहीं है और न किसी बासी शैली की भोंड़ी नकल ही है।

निबंधलेखन एक कला है, तपस्या है, मानसिक प्रशिक्षा है। जैसे कोई तबलावादक अनथक रियाज के सिलसिले में अपनी उँगलियों को ही सुमरनी बना डालता है, उसी प्रकार निबंधलेखक टनों कागज को रद्दी की टोकरी में डालकर ही अपनी कला में निष्णात बन पाता है। किंतु, अभ्यास की पॉलिश के लिए अध्ययन और प्रतिभा का महनीय मूलद्रव तो चाहिए ही।

सर्वोत्तम निबंध तो बिजली की ऐसी कौंध है, जो क्षणभर में आलोक की कनक-रेखा खींचकर आकृष्ट कर जाए, फूलों से लदी रजनीगंधा को चूमकर बहनेवाली ऐसी मदमाती बयार है, जिसका एक झोंका मन-प्राणों को महमह करता चला जाए, भैरवी की वह अंतःस्पर्शिनी तान है, जो सोए हुए दर्द को जगा जाए, ऐसी लहकती चिनगारी है, जो विचारों के वन में अनलपुष्प खिला जाए तथा एक ऐसी वजनदार कंकड़ी है, जो सोई स्तब्ध सरिता की अंतर्गुहा में हिलकोर उठा जाए। यदि ये मेरे निबंधशास्त्र पढ़-पढ़कर पथराए हुए विद्वानों के शिलाधर्मी सूखे भाषणों के गुरुभार से छात्रों को मुक्त कर उनकी सहज इंद्रधनुषी कल्पना को पाथेय प्रदान कर सकें, उनकी कारयित्री प्रतिभा को संतुलित सिंचन दे सकें, उनकी लुभावनी भाषा-शैली को सुदृढ़ आधार प्रदान कर सकें, तो मैं अपने प्रयास की अतिरिक्त सफलता मानूँगा।

वचनदेव कुमार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषय-सूची

(क) वृहत् निबंध

ऋतु-संबंधी निबंध

1. वर्षाऋतु 1
2. वसंतऋतु 2
3. जाड़े की रात 4
4. ग्रीष्म 5

महापुरुष-संबंधी निबंध

5. महापुरुषों का जीवन 8
6. महात्मा गाँधी 9
7. देशरत्न राजेंद्र प्रसाद 11
8. पंडित जवाहरलाल नेहरू 13
9. लालबहादुर शास्त्री 15
10. इंदिरा गाँधी 17
11. राजीव गाँधी 19
12. रवींद्रनाथ ठाकुर 21

पर्व-त्योहार-संबंधी निबंध

13. होली 24
14. दीपावली 26
15. सरस्वती-पूजा 28
16. रक्षाबंधन 30
17. स्वतंत्रता-दिवस 31
18. गणतंत्र-दिवस 33
19. दुर्गापूजा 34
20. ईद 36
21. मुहर्रम 37
22. ईस्टर 39
23. क्रिसमस 40
24. सरहुल 42

मनोभाव-संबंधी निबंध

25. देशभक्ति 44
26. सत्यवादिता 45
27. स्वावलंबन 47

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

28. अनुशासन 48
29. एकता 49
30. परोपकार 51
31. स्वास्थ्य 52
32. समय की महत्ता 53
33. मित्रता 55
34. अध्यवसाय 57
35. संगति 58

छात्र-शिक्षा-संबंधी निबंध

36. आदर्श छात्र 60
37. आदर्श अध्यापक 61
38. स्त्रीशिक्षा 63
39. परीक्षा 64
40. युवा-असंतोष : कारण और समाधान 67
41. छात्र, राजनीति और अनुशासनहीनता 68

विज्ञान-संबंधी निबंध

42. विज्ञान के चमत्कार 71
43. भारत और परमाणु-विस्फोट 74
44. युद्ध और शांति 75
45. चलचित्र 78
46. टेलीविजन 80

यात्रा-संबंधी निबंध

47. देशाटन 83
48. अंतरिक्ष-यात्रा 85
49. रेलयात्रा 88
50. साइकिल की सवारी 90
51. बैलगाड़ी की सवारी 92
52. वायुयान-यात्रा 94

ग्राम-नगर-संबंधी निबंध

53. ग्रामजीवन 96
54. भारतीय किसान 98
55. ग्रामपंचायत 100
56. नगरजीवन 102

आत्मकथा-संबंधी निबंध

57. पैसे की रामकहानी 105
58. चने की रामकहानी 107

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूक्ति-संबंधी निबंध

59. दैव-दैव आलसी पुकारा 110
60. जहाँ चाह वहाँ राह 112

कल्पना-संबंधी निबंध

61. यदि मैं भारत का प्रधानमंत्री होता 114
62. एक प्याली चाय 116
63. एक मोहक सपना 118
64. फिर भी नींद नहीं आई 119

राजनीति-समाज-संबंधी निबंध

65. अंत्योदय 122
66. प्रौढ़शिक्षा 123
67. आरक्षण 125
68. चुनाव 127
69. बेकारी की समस्या 128
70. लॉटरी 131
71. परिवार-नियोजन 133
72. दहेज-प्रथा 136
73. सांप्रदायिकता 139
74. अस्पृश्यता 141
75. जातिवाद : एक अभिशाप 143
76. समाजसेवा 145
77. महँगाई 147
78. नई शिक्षानीति 149
79. भारत इक्कीसवीं शती की ओर 151

विचार-विवरण-संबंधी निबंध

80. हमारा देश : भारतवर्ष 154
81. विज्ञापन 156
82. पुस्तकालय 158
83. समाचारपत्र 160
84. पुस्तकों का चुनाव 161
85. भिक्षुक 163
86. रिक्शावाला 165
87. सफलता का रहस्य 166
88. जीवन का लक्ष्य 168
89. अध्ययन का आनंद 170

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

90. जीवन में खेलकूद का स्थान 172
91. मनोरंजन के साधन 174
92. जीवन में हास्य-विनोद का स्थान 176
93. अवकाश का उपयोग 178
94. मेरे सर्वप्रिय कवि 180
95. मेरे सर्वप्रिय लेखक 183
96. मेरी सबसे प्रिय पुस्तक 186
97. राष्ट्रभाषा हिंदी 187
98. गंगा नदी 189
99. बाढ़ 191
100. सूखा 193
101. एक विख्यात मेला 195
102. हाट 196
103. मनपसंद खेल : फुटबॉल 198
104. महाविद्यालय का प्रथम दिन 201
105. व्यवसाय का चुनाव 203
106. हमारे पड़ोसी 205

(ख) लघु निबंध

1. परिश्रम सफलता की कुंजी है 208
2. आवश्यकता आविष्कार की जननी है 208
3. एकता ही बल है 208
4. सत्यं शिवं सुंदरम् 209
5. वसुधैव कुटुम्बकम् 209
6. मित्रता बड़ा अनमोल रत्न है 210
7. होनहार बिरवान के होत चीकने पात 210
8. निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय 210
9. गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय 211
10. धरम न दूसर सत्य समाना 211
11. समरथ को नहिं दोष गुसाईं 211
12. का बरखा जब कृषी सुखाने 212
13. पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं 212
14. जहाँ सुमति तहँ संपति नाना 213
15. सठ सुधरहिं सतसंगति पाई 213
16. हाथ कंगन को आरसी क्या ? 214
17. अधजल गगरी छलकत जाय 214
18. मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है 215
19. ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है 215

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

20. भई गति साँप छछूंदर केरी 215
21. मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना 216
22. स्वास्थ्य ही धन है 216
23. नाच न जाने आँगन टेढ़ 217
24. लालच बुरी बलाय 217
25. चोर-चोर मौसेरे भाई 217
26. एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाए 218
27. अंधेर नगरी चौपट राजा 218
28. साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप 219
29. बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय 219
30. करत करत अभ्यास ते, जड़मति होत सुजान 220
31. परहित सरिस धर्म नहीं भाई 220

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वर्षाऋतु

[प्रारंभ, दृश्य, उपसंहार]

क्या कभी आपने ग्रीष्म-दैत्य के अतिशय अत्याचार से अग-जग को आकुल-व्याकुल होते नहीं देखा है ? उस समय पृथ्वी तवे की तरह तपने लगती है। जब उसे ग्रीष्म का निदारुण अनाचार सह्य नहीं होता, तब उसका हृदय विदीर्ण हो उठता है। उसकी आंतरिक पीड़ा दरारों के रूप में दृष्टिगत हो उठती है। आकाश से दाहक सूर्यरश्मियाँ अग्निशर की तरह छूटती हैं। ग्रीष्मरूपी पिशाच जब सुहागिन सरिताओं का शोणित सोख लेता है, तब बेचारी बीमार विधवाओं की तरह मालूम होने लग जाती हैं। सघन जेठ की दुपहरी में जब छाँह भी छाँह चाहती है, तब सुकुमार-तन मानव की कौन कहे! पक्षियों के घोंसले कुम्हार के आँवें बन जाते हैं। भोले कृषकों के मुखड़ों पर उदासी का आलम छा जाता है। वे अपलक आँखों से निष्ठुर गगन को निहारते रहते हैं। कृषककुमारियाँ वर्षा के स्वामी इंद्र महाराज की अर्चना-वंदना करने लग जाती हैं—"हे इंद्र महाराज ! हम तुम्हें चंदन की चौकी पर बैठाएँगी। दूध से तुम्हारे पाँव धोएँगी, चावल पकाएँगी तथा मूँग की धुली हुई दाल राँधेंगी। ताँबे की कटोरी में घी गरम करेंगी। चलते समय तुम्हारी चाल देखेंगी। पलंग पर झालरदार गलीचा बिछाएँगी और तुम्हें सोने के लिए कहेंगी। हे महाराज! आज तो हमारे देश पर दया करो।"

चौकी पर इंदर राजा बैठो तो जी
एजी कोई दूध पलारूँगी पाँय !
आज मेहर करो इंदर राजा देश में जी !

निश्छल ग्रामबालाओं के अनुनय-विनय पर कोई पाषाणहृदय भी पिघल उठता है, तो भला सहृदय जलधर कबतक उनकी पुकार अनसुनी कर सकता था! और, बादल का नाम तो पर्जन्य ठहरा। बकपंक्तियों की मुक्तामाला धारण किए हुए, बिजलियों की स्वर्ण-पताका फहराते हुए, गर्जन का नगाड़ा ठोकते हुए, मतवाले बादल विजय-यात्रा के लिए नभपथ पर उतर आए।

प्यासी-पथराई पृथ्वी पर अमृत की बूँदें झरने लगीं और निष्प्राण प्राणियों में नई चेतना लौट आई। मौन मरघट में भी खुशियों की रागिनी बिखर उठी। पर्वत वर्षा-जल से भरपूर स्नान कर मानो पूजन के लिए उद्यत हो उठे। सागर के ऊपर मूसलाधार वर्षा इस प्रकार होने लगी, मानो कुबेर के पास अशर्फियों के तोड़े पहुँचाए जा रहे हों। मेघ ने 'सन्तप्तानां त्वमसि शरणम्' कविसम्राट कालिदास के इस वाक्यखंड को सार्थक किया। वैसे तो वर्षा की फुहार 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' आरंभ हो जाती है और आश्विन तक यदा-कदा धौले बादलों की घुड़दौड़ दिखाई पड़ती है, किंतु इसकी मस्तानी बहार तो सावन-भादों में ही देखते बनती है। बरसात के मनोहर दृश्य का क्या कहना! नभपथ में मेघखंड को चलते देखकर कभी तो ऐसा लगता है जैसे पर्वत पंख फैलाए उड़ रहे हों। कभी लगता है कि नभ-सागर में वणिकों के पोतसमुदाय निकल पड़े हों!

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वर्षाऋतु

[प्रारंभ, दृश्य, उपसंहार]

क्या कभी आपने ग्रीष्म-दैत्य के अतिशय अत्याचार से अग-जग को आकुल-व्याकुल होते नहीं देखा है? उस समय पृथ्वी तवे की तरह तपने लगती है। जब उसे ग्रीष्म का निदारुण अनाचार सह्य नहीं होता, तब उसका हृदय विदीर्ण हो उठता है। उसकी आंतरिक पीड़ा दरारों के रूप में दृष्टिगत हो उठती है। आकाश से दाहक सूर्यरश्मियाँ अग्निशर की तरह छूटती हैं। ग्रीष्मरूपी पिशाच जब सुहागिन सरिताओं का शोणित सोख लेता है, तब बेचारी बीमार विधवाओं की तरह मालूम होने लग जाती हैं। सघन जेठ की दुपहरी में जब छाँह भी छाँह चाहती है, तब सुकुमार-तन मानव की कौन कहे! पक्षियों के घोंसले कुम्हार के आँवें बन जाते हैं। भोले कृषकों के मुखड़ों पर उदासी का आलम छा जाता है। वे अपलक आँखों से निष्ठुर गगन को निहारते रहते हैं। कृषककुमारियाँ वर्षा के स्वामी इंद्र महाराज की अर्चना-वंदना करने लग जाती हैं—"हे इंद्र महाराज! हम तुम्हें चंदन की चौकी पर बैठाएँगी। दूध से तुम्हारे पाँव धोएँगी, चावल पकाएँगी तथा मूँग की धुली हुई दाल राँधेंगी। ताँबे की कटोरी में घी गरम करेंगी। चलते समय तुम्हारी चाल देखेंगी। पलंग पर झालरदार गलीचा बिछाएँगी और तुम्हें सोने के लिए कहेंगी। हे महाराज! आज तो हमारे देश पर दया करो।"

चौकी पर इंदर राजा बैठो तो जी
एजी कोई दूध पलारूँगी पाँय!
आज मेहर करो इंदर राजा देश में जी!

निश्छल ग्रामबालाओं के अनुनय-विनय पर कोई पाषाणहृदय भी पिघल उठता है, तो भला सहृदय जलधर कबतक उनकी पुकार अनसुनी कर सकता था! और, बादल का नाम तो पर्जन्य ठहरा। बकपंक्तियों की मुक्तामाला धारण किए हुए, बिजलियों की स्वर्ण-पताका फहराते हुए, गर्जन का नगाड़ा ठोकते हुए, मतवाले बादल विजय-यात्रा के लिए नभपथ पर उतर आए।

प्यासी-पथराई पृथ्वी पर अमृत की बूँदें झरने लगीं और निष्प्राण प्राणियों में नई चेतना लौट आई। मौन मरघट में भी खुशियों की रागिनी बिखर उठी। पर्वत वर्षा-जल से भरपूर स्नान कर मानो पूजन के लिए उद्यत हो उठे। सागर के ऊपर मूसलाधार वर्षा इस प्रकार होने लगी, मानो कुबेर के पास अशर्फियों के तोड़े पहुँचाए जा रहे हों। मेघ ने 'सन्तप्तानां त्वमसि शरणम्' कविसम्राट कालिदास के इस वाक्यखंड को सार्थक किया। वैसे तो वर्षा की फुहार 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' आरंभ हो जाती है और आश्विन तक यदा-कदा धौले बादलों की घुड़दौड़ दिखाई पड़ती है, किंतु इसकी मस्तानी बहार तो सावन-भादों में ही देखते बनती है। बरसात के मनोहर दृश्य का क्या कहना! नभपथ में मेघखंड को चलते देखकर कभी तो ऐसा लगता है जैसे पर्वत पंख फैलाए उड़ रहे हों। कभी लगता है कि नभ-सागर में वणिकों के पोतसमुदाय निकल पड़े हों!

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कभी मेघखंड काँवर ढोनेवाले तीर्थयात्रियों की तरह मालूम पड़ते हैं, तो कभी राजा नल के हाँफते हुए दौड़नेवाले दूतसमूह-जैसे, जो दमयंती को खोजने के लिए निकल पड़े हों।

दिग्वधुओं ने मेघरूपी वस्त्र से अपने शरीर को ढक लिया है। उनकी मुस्कराहटें जुही की कलियाँ बन झर रही हैं। उनके अंगकदंब कंटकित हो रहे हैं। प्रकृति रानी पल-पल परिधान परिवर्तित करती दिखाई पड़ती है। कभी वह वैदूर्यमणि की तरह घास की हरी साड़ी पहन लेती है, तो कभी पीले फूलों का पीतांबर धारण कर कन्हैया का अभिनय करनेवाली राधा की भाँति प्रतीत होती है। झींगुरों की झंकार उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई की तरह गूँजती है, तो मेढकों की टर्र-टर्र 'विविध भारती' के कर्नाटक संगीत जैसी मालूम पड़ती है। ऊदे-ऊदे बादलों के बीच तना हुआ इंद्रधनुष गंगा पर बने राजेंद्रपुल की सहसा याद दिला देता है।

घनघोर वर्षा होने पर बेचारे गरीबों का दिल दहलता रहता है। हर क्षण उन्हें अपने कच्चे घर गिर जाने की आशंका बनी रहती है, यम की कचहरी से किसी समय भी उनके सारे परिवार का परवाना कट सकता है। अतिवृष्टि से छोटी-छोटी सड़कें सर्पिल नालों में बदल जाती हैं—यातायात में बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। सड़कें, पुल, रेलवे-लाइनें—ये सभी टूट जाती हैं। अतिवृष्टि होने से बाढ़-दानवी गदराई फसलों को बहा ले जाती है। ईंधन-चारे का अभाव हो जाता है। हैजा, मलेरिया आदि बीमारियों का प्रकोप हो जाता है। मच्छर-मक्खियों की सेना का आक्रमण होने लगता है। साँप-बिच्छुओं की पलटन उतर आती है और हमारे प्राण हर क्षण खतरे में रहते हैं। घूमने-फिरने और खेल-कूद की असुविधा के कारण पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है और हमें रोगों का शिकार होना पड़ता है।

किंतु, संसार की ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसके प्रकाश-पक्ष के साथ उसका अंधकार-पक्ष न हो। जो वर्षाऋतु जीवनदायिनी है, अन्न-ब्रह्म की प्रापयित्री है, नयनरंजन है, प्राणियों की प्राणभूता है, कामनाओं की प्राण है, सारे वर्ष हर्षप्रदायिनी है, उसी के अतिरेक में यदि चाँद में कलंक की तरह एक-दो अवगुण हों, तो चिंता नहीं करनी चाहिए।

जो ग्रीष्म के प्राणघाती आतप को सह नहीं सकते, उनके जीवन में वर्षा का सरस जलधर उपलब्ध नहीं हो सकता, उन्हें उसकी हरीतिमा सुलभ नहीं हो सकती, उनका जीवन सुपल्लवित, सुपुष्पित नहीं हो सकता। अतः, हम लू में बार-बार तपनेवाले जीवनधर्म के तपस्वी कह उठेंगे—

बार-बार बरसो
मेरे आँगन में मतवाले बादल !

वसंतऋतु

[प्रारंभ, दृश्य, उपसंहार]

जिसके आगमन का समाचार सुनते ही मन-प्राणों की क्यारी-क्यारी लहलहा उठती है, अंतरात्मा की डाली-डाली मुस्करा उठती है—वह है ऋतुओं का राजा वसंत। ऋतुराज का आविर्भाव होते ही सर्वत्र स्वर्गिक माधुरी का प्याला छलकता दीखता है; वातावरण दुग्धधवल हास्य के झोंके से अनुगुंजित होता दीखता है। उदास-निराश पहाड़ियों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का सुहाग जग उठता है और वे लाल चूनर पहने नई-नवेली दुलहनों-सी सजी दीखती हैं। वृक्ष अपने तन से पुराने पत्तों के जीर्ण वस्त्र को त्यागकर, नवीन कोंपलों का परिधान धारण कर, नवजीवन की अँगड़ाइयाँ लेते दीखते हैं। गुलाब-फूल में अटकनेवाले भौंरे नई खिली कलियों का आमंत्रण पाकर गुनगुनाना आरंभ करते हैं। न तो तन को विद्युत-तरंग मारनेवाला शीत है और न नागिन की तरह जिह्वाएँ खोलनेवाली लू की लपटों की आशंका ही। एक हलका गुलाबी जाड़ा—तन-मन में गजब स्फूर्ति भरनेवाला ! न तो शीत-निशिचर के कठोर स्पर्श का उत्पीड़न है और न ग्रीष्म-दैत्य का उत्तप्त अत्याचार। अब यामिनी प्रमोदिनी हो गई है, उषा मधुरहासिनी। पादप-पत्रों के आनत अधरों का सोया संगीत जग उठता है। पारे-सी पारदर्शी नदियाँ मोटापा दूर होने के कारण जैसे किसी की आगमनी से नाचने लगती हैं और तब लगता है—वसंत सचमुच वसंत है, जिसमें आनंद, केवल आनंद का ही वास है। इसीलिए तो भगवान श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से अपने को 'ऋतूनां कुसुमाकरः' (ऋतुओं में मैं वसंत हूँ) कहकर इसकी महत्ता सिद्ध की थी।

ऋतुराज वसंत के आते ही प्रकृति रानी नई वेशभूषा, नई विच्छित्ति में उपस्थित होती हैं। उसके परिधान में रंग-बिरंगे फूल टँके होते हैं। उसके स्वागत के लिए अलिकुल वाद्यवादन करते दौड़ पड़ते हैं, शिखिसमूह नर्तन करते दीख पड़ते हैं। चंपा उसके मस्तक पर छत्र धारण करता है। आम्रमंजरियाँ उसके मुकुट हैं। पक्षिसमूह उसका अभिषेक-मंत्र पढ़ता है। पुष्पराग उड़कर चँदोबा-सा टँग जाता है। मलयपवन उसके ऊपर पंखा झलता है। कुंदतरु निशान धारण करते हैं। पाटल के पत्ते ही उसके तरकस हैं, अशोक के पत्ते ही बाण। पलाश के पुष्प उसके धनुष हैं, लवंगलता उसकी प्रत्यंचा। मधुमक्षिकाओं की विशाल सेना सजाकर राजा वसंत ने जैसे शिशिर की पूरी सेना को परास्त कर दिया है।

खेतों में दूर-दूर तक गेहूँ के गोरे गालों पर रूपसी तितलियाँ बल खा रही हैं—तीसी के मरकती तथा सरसों के पुखराजी फूलों पर भ्रमरों की पंक्तियाँ मँडराती हैं। मालतीलताओं को मतवाले भौंरे चूम रहे हैं और उनकी कोमल कलियाँ मंद-मंद पवन के हिंडोले पर झूल रही हैं। कहीं सुग्गे की चोंच के समान टेसू के फूल खिले हैं, तो कहीं हल्दी के रंग के कनेर के फूल। रूई के फाहे की तरह कुंद-कलियाँ, आम्रमंजरियों से इत्र को मात करनेवाली भीनी-भीनी महक, दिलफरेब चाँदनी, मस्तानी काकली, गंधमाती हवा, उन्मादक गुंजार—कष्टभरे जीवन के लिए अनोखे रसायन हैं। ऐसी मनमोहक ऋतु में गौतम बुद्ध का कथन 'सर्वं दुःखं दुःखम्, सर्वं क्षणिकं क्षणिकम्' मिथ्यावचन प्रतीत होता है। लगता है, जीवन में केवल आनंद का ही पारावार लहरा रहा है, सम्मोहन का साम्राज्य और अनुराग का ऐश्वर्य ही पग-पग पर लुट रहा है, उन्मुक्त यौवन की रसवंती धारा कूल-किनारा तोड़ रही है, उच्छल उत्साह की सरिता उमड़ चली है। सचमुच वासंती सुषमा की एक बाँकी चितवन पर लाख-लाख स्वर्गिक सुख न्योछावर हैं।

यही कारण है कि संसार के प्रसिद्ध कवियों ने इसी ऋतु को सर्वाधिक पसंद किया और अक्षरबद्ध कर अक्षर बना दिया, श्लोकबद्ध कर पुण्यश्लोक कर दिया। महाकवियों ने आत्मा-परमात्मा या नायक-नायिकाओं का प्रेम-मिलन कराया, तो इसी हृदयावर्जक ऋतु में। जयदेव ने राधा-कृष्ण का मिलन इसी ऋतु में कराया, तो गोस्वामी तुलसीदास ने राम-सीता का मिलन उस जनक की पुष्पवाटिका में कराया, जहाँ वसंत ऋतु लुभाकर रह गई थी। त्रिपुरासुर के विनाश के लिए जब कामदेव ने योगिराज शंकर की समाधि भंग करनी चाही थी, तब उसे वसंत की सहायता लेनी पड़ी थी। क्या वाल्मीकि, क्या

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कालिदास, क्या सूरदास, क्या तुलसीदास, क्या पद्माकर, क्या विद्यापति, क्या पंत, क्या रवींद्रनाथ ठाकुर, क्या सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' सभी ने वसंत पर कविताएँ लिखी हैं। अँगरेजी के महान कवियों में शेक्सपियर, मिल्टन, टेनीसन, ब्राउनिंग, स्विनबर्न, थॉमसन—सबने वसंत का गुणगान अपनी कविताओं में किया है।

वसंत प्रतीक है आनंद का, उल्लास का, रूप और सौंदर्य का, मौज और मस्ती का, जवानी और रवानी का, स्फूर्ति और संचेतना का; किंतु क्या पृथ्वी के सभी प्राणियों के मन में इस संजीवन वसंत में भी आनंद और उल्लास की स्रोतस्विनी उमड़ पड़ती है? कदापि नहीं। तभी हमें डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी के वैयक्तिक निबंध 'वसंत आ गया' की पंक्ति याद हो आती है, "वसंत आता नहीं ले आया जाता है।" यदि हम भी रूढ़ियों, अंधविश्वासों, कुसंस्कारों के जीर्ण-शीर्ण पत्रों को त्यागकर नवीनता और प्रगतिशीलता के नूतन किसलयों से अपना श्रृंगार कर सकें, तो सचमुच वसंत हमारे जीवन में वर्ष में केवल एक बार ही नहीं, वरन बार-बार लहराता रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

जाड़े की रात

[प्रारंभ, असुविधा, उपसंहार]

जाड़े की सुबह, भले ही, किसी कवि को फूले हुए कास के श्वेत वसन धारण किए, मस्त हंसों की मीठी बोली के सुहावने बिछुए पहने, पके हुए धान के मनोहर शरीरवाली तथा कमल के अनुपम मुखवाली नई ब्याही हुई दुलहन-सी लगती हो, जिसका मंगलगान नितदिन चाँदी-सी चमचम गोरी छरहरी नदियाँ गाती हैं तथा शंख की तरह शुभ्र शेफालिका झरकर जिसके पायंदाज की तरह बिछ जाती है, जाड़े की धूप, भले ही, किसी प्रणयी को किसी के रूप का श्रृंगार मालूम पड़ती हो, जाड़े का दिन, भले ही किसी प्रेमी को उनकी प्रेयसी के बदन का निखार मालूम पड़ती हो; किंतु जाड़े की रात! मत पूछिए, यह तो किसी शैतान की आकृति की तरह अत्यंत भयावह होती है, गरीबों को सताती है, काटे नहीं कटती! सूरज का गोला भी जल्दी निकलता नहीं, मानो कोई पवनसुत उसे बिंबफल समझकर निगलने को तैयार बैठा हो। हाँ, कनक-कुबेरों, सामंतों और सरदारों के पास इतने सामान रहते हैं कि शिशिर का शीत उनका कुछ कर नहीं पाता—

गुलगुली गिलमें, गलीचा है, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक हैं, चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यों गजक गिजा हैं सजी
सेज हैं, सुराही है, सुरा हैं और प्याला हैं॥
शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं, विनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं, दुशाला हैं, विशाला चित्रशाला हैं॥

किंतु साधारण गरीब लोग, जिन्हें भरपेट भोजन तक नसीब नहीं, तन ढकने को गर्म कपड़े की बात कौन कहे, साधारण कपड़ा भी जिनके पास नहीं, तीर की तरह भेदती ठंढक से उनकी हालत बड़ी दर्दनाक हो जाती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाड़े की रात, मानो संपन्नता के स्वर्ग और विपन्नता के नरक के दृश्यों को दिखानेवाली यंत्रनलिका हो। हमारे देश में एक ओर अमीरी का इंद्रवैभव है, तो दूसरी ओर गरीबी का रौरव—इसे दिखानेवाली जाड़े की रात है। किसी के लिए जाड़े की रात मधुयामिनी है। केंद्रतापित कक्षों में मखमल के गद्दों पर जिन्हें दरिद्रता का सर्पदंश नहीं लगता, जिन्हें अभाव की सूइयों की तीखी चुभन नहीं सहनी पड़ती, उनके लिए तो जाड़े की रात ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान है, कुदरत की अनोखी नियामत है, बहुत दुलारने पर क्षणभर में जन्म सफल करनेवाली किस्मत की परी है। किंतु, जिनके पास न तन ढकने को कपड़ा है, न पेट भरने को अन्न; फुटपाथों का आकाश ही जिनके आवास की छत है—ऐसे अभागों के लिए जाड़े की रात प्रकृति के सबसे बड़े अभिशाप के रूप में आती है। उनके लिए जाड़े की रात सुरसा की जमुहाई से भी लंबी, कुंभकर्ण की नींद से भी गहरी ठहरती है। शैत्य के बाणों के डर से सूरज का रथ भी कहीं-कहीं बहुत दूर अटका रहता है—बेचारे गरीबों के पोर-पोर में जाड़ा चुभता रहता है; कभी वे अपने को, कभी अपने बनानेवाले को और कभी अपने समाज को मन-ही-मन कोसते रहते हैं।

'जाड़ा' शब्द संस्कृत के 'जाड्य' से निकला है। लोग कहते हैं कि जाड़े में लोग अधिक काम करते हैं। मुझे तो लगता है कि जाड़े की रात लोगों को जड़ बना देती है—जिधर देखिए उधर सुनसान; आठ-नौ बजते ही बाजार श्मशान-सा नजर आता है। गाँव में दूर-दूर कहीं-कहीं कोई दीया जलता है। ठंढ से काँपते हुए सियार की आवाज ठिठुर जाती है। अतः, जाड़े की रात सचमुच अपना नाम सार्थक करती है। किंतु, ढाढ़स इसी से बँधती है कि कभी-न-कभी यह कालरात्रि अवश्य टलेगी और सुनहली सुबह आएगी—मीठ-मीठी धूप सोना लुटाएगी, बेचारे इसे मुट्ठी-मुट्ठी लूटकर निहाल होंगे, चहकेंगे, गाएँगे और मेड़-मचिए पर गुलछर्रे छोड़ते हुए बीते दुःख-दर्द भूल जाएँगे।

ग्रीष्म

[प्रारंभ, महत्ता, उपसंहार]

हमारा देश रंग-बिरंगी ऋतुओं का रंगमंच है, जिनके नाम हैं—वसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमंत और शिशिर। किंतु, आज हमें यह पता भी नहीं चलता कि वसंत का मदिर मलयानिल कब आता है और चला जाता है, हेमंत का हेमरथ कब आता है और लौट जाता है तथा शिशिर के डर से कब शशक कुलाँचें भरना छोड़ देते हैं। आज तो हम जिन तीन ऋतुओं को स्पष्टतः देखते और अनुभूत करते हैं, वे हैं गर्मी, बरसात और जाड़ा।

यदि सच कहा जाए, तो भारतवर्ष ग्रीष्म का ही देश है। इंगलैंड में, जैसे, वर्ष के नौ-दस महीने जाड़ा रहता है, वैसे हमारे देश के अधिकतर भागों में साल के आठ-नौ महीने गर्मी ही रहती है। जिसे हम वर्षाऋतु कहते हैं, उसमें भी ऊमस की कमी नहीं होती। अतः, ग्रीष्म या गर्मी हमारी राष्ट्रीय ऋतु है, जो हमारी प्रकृति के अनुकूल ही है। हम भारतवासियों में आज भी ऊष्मा है, जवानी की गर्मी है, पौरुष की दाहकता है तथा अनाचारों को जला देनेवाली अग्निशिखा है, इसलिए ईश्वर ने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमारे देश को ग्रीष्मप्रधान बनाया है। सूरज जो दिनभर तपता है, वह मानो हमारे भावों की ही विवृति करता है। संसार में इतनी विषमता हो, इतना वैमनस्य हो, इतना अन्याय हो और हम उनसे संतप्त न हों, ऐसा कैसे संभव है? अतः, ग्रीष्म सचमुच हमारे उबलते पौरुष एवं अनाचारों को क्षार-क्षार कर देनेवाले ऊर्जस्वल तेज का प्रतीक है।

ग्रीष्म का दिन हमारे सामने महादेव का प्रलयंकर रूप उपस्थित करता है, तो रात्रि शंकर रूप। दिन में सूरज की तीक्ष्ण किरणें अग्निबाण की तरह प्रतीत होती हैं। जिस जेठ की सघन दुपहरी में छाँह को भी छाँह चाहिए, उसमें मनुष्य किसी शीतल खोह की तलाश में रहता है। किसी स्नानगृह के हौज में लेटे रहने या चंदन का शीतल अनुलेप लगाकर वातानुकूलित कमरे में पड़े रहने की इच्छा होती है। मनुष्य ने तो अपनी सुख-सुविधाओं के लिए अनेक सरंजाम किए हैं, प्रकृति की मनमानी पर अपने नियंत्रण के अंकुश लगाए हैं, किंतु अन्य जीवों का तो और भी बुरा हाल है।

दहकते सूर्य की किरणों से झुलसे हुए जिन जंगली पशुओं की जीभें प्यास के मारे सूख गईं, वे धोखे में उन जंगलों की ओर दौड़ पड़ते हैं, जहाँ के अंजन के समान नीले आकाश को ही उन्होंने जल समझ रखा है। धूप से झुलसा, बार-बार फुफकार छोड़ता भयानक सर्प मोर के इंद्रधनुषी पंखों की छाया में बैठ जाता है। हवन की अग्नि की तरह जलते सूर्य की रश्मियों से व्याकुल मेढक सर्पों के फणों की छतरी के नीचे राहत पाता है। सिंदूर-सी लाल-लाल लपटोंवाली दावाग्नि में वन के पशु-पक्षी पतंगों की तरह जलते हैं। कच्चे बाँसों के जलने की आवाज बंदूक छूटने की आवाज-सी मालूम पड़ती है। इस भयंकर ध्वनि को सुनकर वन से हाथी, बैल, सिंह आदि भागकर किसी झरने के किनारे मित्रों की तरह साथ-साथ विश्राम करने लग जाते हैं। यह तो ग्रीष्म की बलिहारी कि उसने समग्र संसार को ही तपोवन बना दिया है। यह ग्रीष्म का ही पुण्य-प्रताप है कि साँप और मयूर, मृग और बाघ, जो एक-दूसरे के शत्रु हैं, एक साथ निवास कर रहे हैं। कविवर बिहारीलाल ने लिखा है—

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥

किंतु, ग्रीष्म की संध्या और रात्रि बड़ी सुनहली एवं लुभावनी होती है। जब दुधिया चाँदनी में हिना के इत्र से सुवासित ठंढी हवा हौले-हौले हमारे अंग का स्पर्श कर जाती है, तब हममें नई चेतना, नई स्फूर्ति, नई ताजगी, नई संजीवनी, नई जीवंतता लौट आती है। हमारे कुम्हलाए प्राण बेला की तरह खिल जाते हैं और हमारी मुखाकृति पर मौलिश्री की आभा फैल जाती है। दिनभर की कुम्हलाई-सोई नगरी मानो संध्या में जग जाती है। वह रात्रि में सोलहों शृंगार कर बैठ जाती है। कहीं गजरों की गमक होती है, तो कहीं पायलों की झमक, कहीं रेकॉर्डों की धुन है, तो कहीं रंगीन बत्तियों में फव्वारों की झलक। सेंट, पाउडर, क्रीम की सुगंधि चारों ओर फैलकर इंद्रनगरी की कल्पना को साकार कर देती है।

ग्रीष्म मेरी दृष्टि में निंदनीय नहीं है। यह तो हमारे पौरुष का पुंजीभूत ज्वाल है, जगत को तपोवन बना देनेवाला तपस्वी है, हमें अमृतफल रसराज आम का उपहार देनेवाला कुटुंबी है, बेला और हिना की सुगंधि लुटानेवाला कोई उदार गंधी है। यह इतना गुणशाली है कि उसके बारे में संक्षेपकथन संभव नहीं दीखता।

वैसे, इस ऋतु में कार्य-संपादन की असुविधाओं की बात कही जाती है। ऐसे देशों में, जहाँ दिनभर बर्फ गिरती रहती है, हर वक्त कुहासा छाया रहता है, बाहर निकलने पर शरीर पर बर्फ जम जाती है, वहाँ भी वैज्ञानिक अनुसंधानों से कार्यालय, कारखाने, घर तथा गाड़ियों को इस तरह केंद्रतापित कर दिया गया है कि किसी तरह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की परेशानी नहीं रह गई है। हम चाहें तो अपने घर, अपने कार्यालय, अपनी गाड़ियों को वातानुकूलित कर सकते हैं—किंतु याद रखें कि ग्रीष्म हमें संघर्ष का महामंत्र देता है, न कि भोग का।

जो व्यक्ति अपने जीवन में प्रगति के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ होना चाहते हैं, वे सुविधाओं की सुमनशय्या पर सोने की आदत छोड़ें। ग्रीष्म हमारी हारी-थकी शिराओं में भी मकरध्वज की ऊष्मा उड़ेलकर हमें मृत्युंजय बना देनेवाला महान प्रकृतिदूत है, इसमें कोई संदेह नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महापुरुषों का जीवन

[आरंभ, महापुरुषों के लक्षण, उपदेश-ग्रहण, उपसंहार]

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime,
And, departing leave behind us,
Footprints on the sands of time.

—Longfellow

(महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती हैं कि हम भी अपना जीवन महान बना सकते हैं और मरते समय अपने पदचिह्न समय की रेत पर छोड़ सकते हैं।)

महापुरुष कौन हैं ? क्या वे, जिनके एक हल्के-से पदचाप से समग्र पृथ्वी में भूकंप मच जाता है, जिनके भ्रूभंग से अखिल सृष्टि में खंडप्रलय का दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिनके हस्तसंचालन से सत्ताओं में ज्वार उठ जाता है, जिनके भय से प्रजा पीपल के पत्ते की तरह काँपती रहती है, जिनके अनुसंधानों से हरी-भरी धरती मरघट बन जाती है ? नहीं, कदापि नहीं। जिन्होंने कष्टों की खड्गधार पर चलते हुए भी अपने आदर्श के दीप को निर्वापित होने नहीं दिया है, जिन्होंने पीड़ाओं का विषपान शंकर की भाँति किया है तथा औरों के लिए अमृतकलश छोड़ दिया है—वे ही सच्चे महापुरुष हैं।

सच्चे महापुरुषों को स्वार्थ के कीटाणु कभी रुग्ण नहीं बनाते। उनका चित्त दिन-रात दूसरे के कल्याण में रहा करता है, जैसा कि महाकवि बाणभट्ट ने लिखा है—'लोकविधेयानि हि भवन्ति चेतांसि महताम्'। विघ्नों के विंध्याचल भी उनके मार्ग में अवरोध नहीं उत्पन्न कर सकते, वे आपत्तियों के अर्णव को भी अगस्त्य की तरह चुल्लुओं में गटक जाते हैं। ऐसे महापुरुष तो व्यासोक्त पुराणों के सारवचन—परोपकार को पुण्य और परपीड़न को सदा पाप मानते हैं। अपनी विपत्तियों की चिता में वे हँसते-हँसते कूद जाते हैं, पर दूसरे की विपत्ति की अग्नि से उनका हृदय नवनीत की भाँति द्रवित हो जाता है। कभी-कभी ऐसे चरित्र के इस विरोधाभास से चित्त द्रवीभूत हो उठता है। भवभूति ने ऐसे ही व्यक्तियों के लिए कहा है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

महान पुरुषों में ये गुण स्वाभाविक रूप से पाए जाते हैं—विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा, सभा में भाषणचातुर्य, युद्ध में विक्रम, यश में अभिरुचि तथा वेदशास्त्र के अध्ययन का व्यसन—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

—भर्तृहरि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महापुरुषों ने अपने जीवन में जो इतनी ऊँचाई प्राप्त की, वह आकस्मिक उड़ान नहीं थी। जबकि उनके साथी रात्रि में सुख की नींद सो रहे थे, तो वे रात्रि के सन्नाटे में आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे थे—

The heights by great men reached and kept,
Were not attained by sudden flight.
But they, while their companions slept,
Were toiling upwards in the night.

—LONGFELLOW, *The Ladder of St. Augustine*

अतः, यदि हम महत्ता के कनकाभ शिखर पर आरूढ़ होना चाहते हैं, तो हमें भी पंडित नेहरू का सिद्धांतवाक्य 'आराम हराम है' को अपना आदर्शवाक्य बनाना चाहिए।

महापुरुष कभी स्वप्रशंसा के मायाजाल में नहीं फँसते। वे तो चुपचाप अपनी साधना की लौ में जलते रहते हैं—

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥

अतः, हम बड़े भाग्यशाली हैं कि हमें राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मुहम्मद, ईसा, कन्फ्युसियस, लाओत्से, तुलसीदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गाँधी, आदि जैसे अनगिनत महापुरुषों के पथ पर खड़े होने का अवसर मिला है। इन्होंने अपने त्याग, तपस्या, सच्चरित्रता, जनसेवा आदि देवोपम गुणों से भयभीत मानवता को आशा की नई किरणें दीं। अब हमारा कर्तव्य है कि हम इनकी प्रेरणा के पाथेय बटोरकर हताशप्राय, विषण्ण, विमूर्च्छित मानव को नई संजीवनीशक्ति प्रदान कर, इन महापुरुषों की परवर्ती पंक्ति में अपना स्थान सुरक्षित करा लें।

महात्मा गाँधी

[आरंभ, जीवनवृत्त, संसार को देन, उपसंहार]

तू कालोदधि का महास्तंभ, आत्मा के नभ का तुंग केतु,
बापू! तू मर्त्य-अमर्त्य, स्वर्ग-पृथ्वी, भू-नभ का महासेतु।
तेरा विराट यह रूप कल्पना-पट पर नहीं समाता है,
जितना कुछ कहूँ, मगर कहने को शेष बहुत रह जाता है ॥

—दिनकर

राष्ट्र पर जब-जब संकट का कालमेघ छाता है, तब-तब प्रभु स्वयं या अपने प्रधान प्रतिनिधि को राष्ट्ररक्षा के लिए भेजता है। हमारा देश भी जब अँगरेजों के अत्याचार से कराह रहा था, जब भारतमाता स्वतंत्रता-देवी के रूप में परतंत्रता के कारागार में बंदिनी थीं, तब उन्हें मुक्त करने के लिए मोहन ने मोहनदास के रूप में अवतार ग्रहण किया।

धन्य है 2 अक्तूबर, 1869 का वह शुभ दिन, जब मोहनदास का जन्म गुजरात के पोरबंदर नामक स्थान में हुआ था। आज पोरबंदर हमारे लिए अयोध्या, मथुरा, कपिलवस्तु आदि की तरह पवित्र तीर्थस्थान बन चुका है। मोहनदास के पिता का नाम करमचंद था। उनकी वंशगत उपाधि 'गाँधी' थी। गुजरात तथा दक्षिण के प्रदेशों में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपने नाम के आगे पिता का नाम लगाने का प्रचलन है और उसके आगे वंशगत उपाधि लगाई जाती है, इसलिए उनका पूरा नाम हुआ मोहनदास करमचंद गाँधी। किंतु, सारा संसार उन्हें 'गाँधी' के नाम से ही जानता है। राष्ट्र की प्रत्येक संतान को उन्होंने बाप की दृष्टि से देखा—इसलिए वे बापू कहलाए, 'राष्ट्रपिता' शब्द से संबोधित हुए।

गाँधीजी की शिक्षा का श्रीगणेश पोरबंदर की पाठशाला से हुआ। उनका विवाह तेरह वर्ष की कच्ची उम्र में ही कस्तूरबा से हो गया। उनकी दृष्टि में वे बालक बड़े भाग्यवान हैं, जिनका विवाह इस कच्ची उम्र में नहीं होता। 1887 ई० में इंट्रेंस परीक्षा पास करने के बाद वे उच्च शिक्षा के लिए भावनगर के श्यामलदास कॉलेज में भेजे गए, किंतु वहाँ उनका मन रम न सका। उनके भाई लक्ष्मीदासजी राजकोट के मशहूर वकील थे। उन्होंने अपने छोटे भाई को विलायत भेजकर बैरिस्टर बनाना चाहा, किंतु बीच में ही माँ पुतलीबाई अवरोध बनकर खड़ी हो गईं। आखिर माँ के सामने मदिरा, मांस तथा परस्त्रीसंसर्ग के वर्जन की प्रतिज्ञा लेकर महात्मा गाँधी विलायत गए। वहाँ उनके जीवन-पथ में अनेक बाधाएँ आईं, किंतु वे सबको झेलते हुए अपने प्रण-निर्वाह में सफल हुए।

विलायत से लौटकर उन्होंने बंबई में वकालत शुरू की। संकोची स्वभाव और केवल सत्यभाषण के कारण उनकी वकालत चल न सकी। इसी बीच उन्हें 'दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी' की ओर से एक मुकदमे की पैरवी के लिए दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। सिर पर पगड़ी रखकर जब आप अदालत गए, तब पगड़ी उतारने के लिए कहा गया। जब आप रेलगाड़ी से यात्रा करने लगे, तब आपको टिकट रहने पर भी प्रथम श्रेणी में यात्रा नहीं करने दिया गया। गोरों की रंगभेद-नीति के कारण दक्षिण अफ्रीका में रेल, होटल, सड़क—सर्वत्र भारतीयों का अपमान किया जाता था और निरीह भारतीय अपमान का जहर पीकर भी जी रहे थे। गाँधीजी के सामाजिक क्रांतिकारी जीवन का शुभारंभ यहीं से हुआ। यहीं उन्होंने प्रथम बार दक्षिण अफ्रीका के भारतवासियों को नागरिक अधिकार दिलाने के लिए सत्याग्रह का पांचजन्य फूँका।

गाँधीजी में सेवाभाव कूट-कूटकर भरा था। वे शत्रुओं की भी सेवा तथा सहायता निस्संकोच करते थे। 1897 ई० से 1899 ई० तक ब्रिटिश-सरकार के विरुद्ध छिड़नेवाले बोअर-युद्ध में गाँधीजी ने घायलों की सेवा की और अपनी जान हथेली पर लेकर वे इसके लिए लड़ाई के मैदान में भी गए। 1897 ई० और 1899 ई० में भारत में जब अकाल पड़ा, तब उन्होंने अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए दक्षिण अफ्रीका में चंदा किया। डरबन में प्लेग के मरीजों की सहायता के उनके कार्यों से प्रसन्न होकर अँगरेज-सरकार ने उन्हें 'कैसर-ए-हिंद' की उपाधि प्रदान की।

भारतवर्ष लौटने पर गाँधीजी यहाँ की राजनीति में पूरी तरह कूद पड़े। उन्होंने 1914 ई० के प्रथम विश्वयुद्ध में अँगरेजों का साथ दिया। उन्हें विश्वास था कि युद्ध के पश्चात अँगरेज भारत को अवश्य आजाद कर देंगे, किंतु बात उलटी हुई। उनका दमनचक्र जोरों से चला। रॉलेट ऐक्ट तथा अमानुषी जालियाँवाला बाग-कांड 1919 ई० में हुआ। इस हत्याकांड से क्षुब्ध होकर महात्मा गाँधी ने असहयोग-आंदोलन चलाया और इस आंदोलन में सारा राष्ट्र कूद पड़ा।

1930 ई० में देशव्यापी नमक-आंदोलन हुआ। 1931 ई० में गाँधीजी गोलमेज कॉन्फ्रेंस में भाग लेने लंदन गए, किंतु वहाँ से निष्फल लौटे। 1937 ई० में भारत के विभिन्न प्रांतों में अंतरिम सरकारें बनीं। 1939 ई० में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। अँगरेजों ने भारतवासियों की राय की परवाह किए बिना भारत को युद्ध में सम्मिलित राष्ट्र घोषित कर दिया। प्रथम विश्वयुद्ध में अँगरेजों की सहायता का पुरस्कार महात्मा गाँधी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पा चुके थे, इसलिए इस बार उन्होंने सहायता देने से इनकार कर दिया। उनकी राय थी कि इसी शर्त पर सहायता की जा सकती है कि अँगरेज भारत को पूर्णरूपेण स्वतंत्र कर दें।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात अँगरेजों की राजनीतिक स्थिति डावाँडोल हो गई। युद्ध के पूर्व ये सारे संसार की सबसे बड़ी शक्ति थे। युद्ध के पश्चात ये तीसरे नंबर पर आ गए। 1942 ई० में 'भारत छोड़ो' का नारा दिया गया। हमारे नेता जेल के सींकचों में रखे गए, किंतु सारा देश हुंकार कर उठा। फिर, किसकी शक्ति थी कि इस समुद्री तूफ़ान की गति रोक दे। आखिर विवश होकर 15 अगस्त, 1947 को अँगरेजों को भारत को स्वाधीन कर देना पड़ा। गाँधीजी का स्वप्न साकार हुआ। किंतु, इसी बीच अँगरेजों की कूटनीति ने सांप्रदायिक दंगों के विषवृक्ष उगाए। गाँधीजी ने नोआखाली की पाँव-पयादे यात्रा की। अभी मोहन महाभारत-संग्राम की रास सँभालते-सँभालते हाथ की रगड़ मिटा भी नहीं पाए थे, चैन की साँस भी न ले पाए थे कि दिल्ली के बिड़ला-भवन में 30 जनवरी, 1948 को सांप्रदायिकता के व्याध ने तीन गोलियों से उनकी छाती छलनी कर दी। गाँधीजी का क्षणभंगुर भौतिक शरीर नष्ट हो गया, किंतु उनकी अक्षय आत्मा, उनके निर्मल विचार अमर हैं।

महात्मा गाँधी का समग्र जीवन राष्ट्र की बलिवेदी पर अर्पित दिव्य सुगंधित सुमन था। उनका सारा जीवन ही सत्य का प्रयोग था। सत्यरूपी सूर्य की किरण से ही उनका पथ प्रोद्भासित हुआ था। वे विभिन्न क्षेत्रों से मधु बटोरते रहे और अपने साधनापथ पर बढ़ते रहे। वे 'भगवद्गीता', 'रामचरितमानस', रस्किन की पुस्तक 'अन टू दि लास्ट', स्वामी विवेकानंद के 'राजयोग' तथा पतंजलि के 'योगसूत्र' से पाथेय लेकर ही संग्रामपथ पर निकल पड़े थे।

महात्मा गाँधी मानवमात्र के हितचिंतक थे। वे उनके तन के चितेरे नहीं, वरन आत्मा के महान शिल्पी थे। उनके आदर्शपुरुष थे श्रीराम और उनका आदर्श राज्य था रामराज्य। मानवता को सँवारने के लिए विश्ववंद्य महामानव बापू ने आत्मबलिदान किया। यही कारण है कि उनकी जन्मशताब्दी पर भिन्न-भिन्न प्रकार के आयोजन संसार-भर में हुए और उनकी स्मृति में उनके मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा ली गई। पंतजी ने ठीक ही कहा है—

बापू! तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान
हँस उठते हैं स्नेह हर्ष से पुलकित होते प्राण।
नवसंस्कृति के दूत, देवताओं का करने कार्य
मानव-आत्मा को उबारने आए तुम अनिवार्य ॥

देशरत्न राजेंद्र प्रसाद

[प्रारंभ, बाल्यकाल, राजनीति, महत्ता, उपसंहार]

अँगरेजों के साथ भारतीयों के स्वातंत्र्य-संघर्ष को यदि देवासुर-संग्राम मानें, तो राजेंद्र-बाबू ने उसमें जो भूमिका निबाही है, वह हमारे स्वातंत्र्य-इतिहास का स्वर्णिम अध्याय बन चुका है। चंद्रगुप्त और अशोक के बिहार ने राजेंद्र को पैदा कर अपनी परंपरा की मुक्ता-माला में एक और भी मोहक मणि जोड़ दी है, इसमें भला किसे संदेह हो सकता है?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बिहार-राज्य में भी सौभाग्यशाली है छपरा जिला की जीरादेई की वह धरती, जिसकी धूल में लोट-लोटकर बड़े हुए थे हमारी आँखों के तारे देशरत्न राजेंद्र प्रसाद। इनकी प्रारंभिक पढ़ाई उर्दू-फारसी के माध्यम से हुई। 1902 ई॰ में ये इंट्रेंस परीक्षा में बैठे, तो कलकत्ता विश्वविद्यालय से सर्वप्रथम आए। इसके बाद इन्होंने एफ॰ ए॰, बी॰ ए॰, एम॰ ए॰ तथा एम॰ एल॰ की उपाधियाँ प्राप्त कीं। यदि किसी भारतीय नेता के विद्यार्थी-जीवन में उसकी उत्तरपुस्तिकाओं का परीक्षण कर यह अभिशंसा की गई हो, 'परीक्षार्थी परीक्षक से अधिक योग्य है', तो वे हैं आदर्श कुशाग्रबुद्धि राजेंद्रबाबू ही।

राजेंद्रबाबू अपने विद्यार्थी-जीवन से ही राजनीति में भाग लेने लगे थे। कलकत्ता में, 1906 ई॰ में इन्होंने बिहारी छात्रों को संगठित करने के लिए 'बिहार क्लब' स्थापित किया। 1905-06 में बंगभंग की घटना ने इन्हें पीड़ित किया और इनके मन में अँगरेजी शासकों से लोहा लेने का संकल्प दृढ़ होने लगा। काँग्रेस के लखनऊ-अधिवेशन में महात्मा गाँधी की दृष्टि उनपर पड़ी। 1917 ई॰ में जब महात्मा गाँधी चंपारण-आंदोलन के सिलसिले में बिहार आए, तब इन्होंने पूरा सहयोग दिया। लोग इन्हें 'बिहार का गाँधी' कहकर पुकारने लगे।

1919 ई॰ में पंजाब में जालियाँवाला बाग-कांड हुआ। इस कांड से द्रवित होकर अँगरेजों से जूझने के लिए राजेंद्रबाबू ने बिहारी स्वयंसेवकों की एक विशाल वाहिनी बनाई। पटना में जब 'सदाकत आश्रम' की स्थापना हुई, तब इन्होंने उसमें पूरा योग दिया। 1923 ई॰ में इनके गुणों से प्रभावित होकर नेताओं ने इन्हें कांग्रेस का महामंत्री बनाया। 1942 ई॰ की अगस्त-क्रांति में ये तीन वर्ष के लिए कारागार में धकेल दिए गए। जैसे सोना तपने पर कुंदन बन जाता है, वैसे ही तपकर ये दमक उठे।

1945 ई॰ में इन्होंने शिमला-कॉन्फ्रेंस में भाग लिया। इसमें इन्होंने अत्यधिक कार्यकुशलता दिखाई। अब स्वतंत्रता की लालिमा छिटकने ही वाली थी। राष्ट्र-संचालन के निमित्त विधाननिर्मात्री सभा का आयोजन हुआ। उसके ये अध्यक्ष चुने गए। 1946 ई॰ में केंद्रीय मंत्रिमंडल में इन्होंने खाद्यमंत्री का पदभार सँभाला।

भारत में गणतंत्र का सूरज चमका, तो सारे राष्ट्र ने इनकी त्याग-तपस्या के वशीभूत होकर 1950 ई॰ में इन्हें भारत के प्रथम स्वतंत्र राष्ट्रपति-पद पर आसीन किया। शताब्दियों से परतंत्रता की चक्की में पिसता हुआ राष्ट्र इनकी वरद छत्रच्छाया में फूला न समाया। तबसे 1962 ई॰ की 14 मई तक ये भारत के गौरवगढ़ के सर्वमान्य अधिपति बने रहे। उन दिनों राष्ट्रपति का मासिक वेतन दस हजार रुपये था; किंतु इसे घटाकर इन्होंने स्वेच्छा से ढाई हजार कर दिया था। एक निर्धन देश का राष्ट्रपति इतनी मोटी रकम ले—यह इन्हें स्वीकार्य नहीं था। त्याग से भी अहंकार उत्पन्न होने का खतरा बना रहता है, किंतु राजेंद्रबाबू में कभी ऐसा नहीं हुआ। राष्ट्रपति होने के पश्चात राजेंद्रबाबू जनता के उतने ही निकट रहे, जितने उसके पहले थे। इन्होंने राष्ट्रपति भवन का द्वार सबके लिए उन्मुक्त कर दिया था। राष्ट्र के महत्तम व्यक्ति से देश का लघुतम व्यक्ति समभाव से मिल सकता है, यह तो इनके हृदय की विशालता थी। जनता और राजकीय निवास के बीच जो दूरी थी, उसे इन्होंने बारह वर्षों के कार्यकाल में समाप्त कर दिया था। राजेंद्रबाबू ने गाँधी-धर्म को पूर्णतः आत्मसात कर लिया था। इन्होंने अपने राष्ट्रपति-पद पर अनेक कार्य किए। इनका सहयोग पाकर प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू सारे संसार में पंचशील का पांचजन्य फूँकते रहे।

1962 ई॰ में इनकी उम्र 78 वर्ष की हो चुकी थी। (जन्म 3 दिसंबर, 1884)। इनका स्वास्थ्य बहुत गिरने लगा और सर्वपल्ली डॉ॰ राधाकृष्णन को अपने पद पर सुशोभित कर, दिल्ली के भव्य प्रासाद को छोड़, सदाकत आश्रम, पटना की अपनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुरानी कुटिया में आ बिराजे, जहाँ से इन्होंने राजनीतिक जीवन और तूफानी कार्यक्रम का आरंभ किया था। यहीं रहकर इन्होंने अपना शेष जीवन बिताने का विचार किया। किंतु, परमात्मा ने इन्हें बहुत दिनों तक हमारे बीच रहने नहीं दिया। 28 फ़रवरी, 1963 को इन्होंने पटना के सदाकत आश्रम में अंतिम साँस ली। इनके प्राण-पखेरू उड़ते ही लगा कि प्रेरणा का स्रोत सूख गया, प्रकाश का पर्वत ही जैसे उखड़ गया। इनकी शवयात्रा में लाखों की भीड़ उमड़ चली थी। जिस पथ पर खड़े होकर लोगों ने कभी चंद्रगुप्त, अशोक, बुद्ध और महावीर की अंतिम विदाई सही होगी, उसी पथ पर दौड़-दौड़कर, अश्रुओं का अर्घ्यदान कर लोगों ने अपने राष्ट्रदेवता देशरत्न को अंतिम विदाई दी।

पंडित जवाहरलाल नेहरू

[प्रारंभ, बाल्यकाल, राजनीति, महत्ता, उपसंहार]

देती रही रत्न धन-जन के तू मुझको चिरकाल से
देती आज प्रसाद-रूप क्या प्रभु-पूजा के थाल से ?
पुण्यभूमि यह सुन जगती से बोली वचन रसाल-से
मेरा-सा तेरा आँचल भी भरे जवाहरलाल से॥

—मैथिलीशरण गुप्त

भारतभूमि ने अपने जिन स्फटिकचरित्रों को जन्म देकर मानवता का कल्याण-केतु फ़हराया है, उनमें पं० जवाहरलाल नेहरू अन्यतम हैं। मातृभूमि के आह्वान पर अपने समस्त सुखसाम्राज्य को स्वाहा करनेवाले, रेशमी पाँवड़ों का परित्याग कर कुलिश की नोक पर मचलनेवाले लोकदेव नेहरू भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के महारथियों की प्रथम शक्ति में परिगण्य हैं—इसमें संदेह नहीं।

हमारे लोकनायक नेहरू का जन्म 14 नवंबर, 1889 को इलाहाबाद में हुआ। उनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू बड़े नामी बैरिस्टर थे। ऐसे प्रतिभाशाली समृद्ध पिता के इकलौते पुत्र होने का सौभाग्य पं० नेहरू को प्राप्त हुआ था।

पं० जवाहरलाल नेहरू की शिक्षा का श्रीगणेश घर पर ही हुआ। 15 वर्ष की उम्र में वे इंगलैंड के सुप्रसिद्ध स्कूल 'हैरो' भेजे गए। दो वर्षों के बाद उन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश कर तीन वर्षों तक विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। वकालत की परीक्षा लंदन-स्थित विद्यालय से पास कर 1912 ई० में वे स्वदेश लौट आए।

पंडित नेहरू अत्युच्च शिक्षा प्राप्त कर विदेश से लौटे थे। उन्हें अच्छी-से-अच्छी नौकरी मिल सकती थी, किंतु वे सरकारी नौकरियों को लात मारकर वकालत करने लगे। वकालत से अर्थोपार्जन में समय की अधिक बरबादी होती थी, अतः देशसेवा के लिए उन्होंने वकालत को भी त्याग दिया। उन्होंने अपना सारा जीवन ही राष्ट्रसेवा के लिए अर्पित कर दिया। ऐसे समय में उन्हें एक सुयोग्य पथप्रदर्शक की आवश्यकता थी। उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का नेतृत्व प्राप्त किया। गाँधीजी ऐसा व्यक्ति चाहते थे, जो मनसा, वाचा, कर्मणा देशसेवा में अपना उत्सर्ग कर दे। उन्हें नेहरू के रूप में मनोनुकूल व्यक्ति प्राप्त हुआ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गाँधीजी ने 'रॉलेट ऐक्ट' के विरोध में सत्याग्रह करने का संकल्प किया। जवाहरलालजी भी उसमें सम्मिलित होना चाहते थे, परंतु उनके पिता नहीं चाहते थे। पंडित मोतीलाल नेहरू ने गाँधीजी से सिफारिश कराई कि जवाहर जेल न जाएँ। गाँधीजी की आज्ञा से जवाहरलालजी ने जेल जाना स्थगित कर दिया।

कुछ दिनों बाद देश में जालियाँवालाबाग-कांड हुआ। निर्दोष भारतवासी संगीन की नोक पर डायर द्वारा तड़पा-तड़पाकर मारे गए। अँगरेजों के इस राक्षसी दुर्व्यवहार ने जवाहरलालजी के हृदय पर बड़ा ही गहरा आघात किया। विदेशी सरकार ने इस खूनी कांड के कारण भारतीयों के हृदय की धधकती ज्वाला को शांत करने के लिए प्रिंस ऑफ वेल्स को भारत बुलाकर उसके प्रति भारतीयों से भक्ति-प्रदर्शन कराने की चेष्टा की। किंतु, प्रिंस का आना तो आग में और भी घी डालना था। गाँधीजी ने इसका विरोध किया और ऐलान किया कि प्रिंस का स्वागत काले झंडे से किया जाए। इलाहाबाद में पं॰ मोतीलाल नेहरू तथा जवाहरलाल ने यह काम किया। बस क्या था, अँगरेजी सरकार ने पिता-पुत्र को जेल की चहारदीवारी के अंदर बंद कर दिया। जेल में जवाहरलालजी ने श्रवणकुमार की भाँति पितृभक्ति दिखाई। वे स्वयं कमरे में झाड़ू लगाते थे, पिता के कपड़े साफ करते थे तथा इसी प्रकार के अनेक सेवाकार्य खुशी-खुशी करते थे। तब से जवाहरलाल अनेक बार जेल गए, तरह-तरह की विपत्तियाँ झेलीं और तभी दम लिया, जब अँगरेज-रावण का विनाश किया।

1947 ई॰ में राष्ट्र स्वतंत्र हुआ। शताब्दियों से परतंत्र भारतीयों ने मुक्ति की साँस ली। जनता ने अपने जनप्रिय नेता को अपना प्रधानमंत्री चुना। खुशहाली का सूरज चमका। 1952 ई॰, 1957 ई॰ और 1962 ई॰ में जब-जब निर्वाचन होता रहा, नेहरूजी एकमत से देश के प्रधानमंत्री होते रहे। उन्होंने इस देश को धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रीय और आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने के लिए कुछ उठा नहीं रखा।

नेहरूजी केवल भारत के ही नहीं, विश्व के नेता थे। सारे संसार में जब कोई तूफान आता था, लोगों की दृष्टि उनकी ओर टँग जाती थी। उन्होंने समग्र संसार को पंचशील की अमोघ औषधि प्रदान की। जब नेहरूजी 1961 ई॰ के नवंबर में अमेरिका गए थे, वहाँ के प्रेसीडेंट केनेडी ने उनका स्वागत करते हुए कहा था—"आपका स्वागत करते हुए हमारे देश को प्रसन्नता होती है। इस देश का निर्माण उन लोगों ने किया है, जिनकी कीर्तिपताका समुद्र की तरंगों पर फहराती दिखाई देती है। आप और आपके महान नेता गाँधीजी विश्वनेता हैं। संसार आपकी नीति का मान-आदर और सत्कार करने के लिए लालायित है।"

सारा संसार अपनी ज्वलंत समस्याओं के समाधान के लिए उनकी ओर आँख लगाए ही था कि एकाएक 27 मई, 1964 को उनका पांचभौतिक शरीर उठ गया। उनके निधन पर किसी कवि ने बड़े ही हृदयद्रावक शब्दों में लिखा था—

> धरती काँपी, आकाश हिला, सागर में उठा उबाल रे,
> रो रही विकल भारतमाता, चल बसा जवाहरलाल रे।
> गंगा रोई, यमुना रोई, लो, रोने लगा प्रयाग रे,
> आ गए हिमालय के आँसू, सागर में आए झाग रे॥

आज हम दर्पण की तरह स्वच्छ राजनीतिज्ञ, अनासक्त कर्मयोगी, महान मुक्तिदाता, भारत के निर्माता, शांति के अग्रदूत तथा मानवता के महान हितैषी पंडित जवाहरलाल नेहरू के पदचिह्नों पर चल पाएँ, तो हमारी स्वतंत्रता ही सुरक्षित नहीं रहेगी, वरन मानव-कल्याण के कितने ही राजमार्ग खुल सकेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लालबहादुर शास्त्री

[प्रारंभ, बाल्यकाल, राजनीति, महत्ता, उपसंहार]

वह अशोक की आत्मा, रण का विजयी योद्धा,
शांति-चक्र का धर्म-प्रवर्तक, शक्ति-पुरोधा,
उठा धरा से, पहुँच शिखर, आकाश बन गया,
धरा देखती रही, पुत्र इतिहास बन गया।

—सोहनलाल द्विवेदी

एक समय ऐसा भी आता है जब आकाश सहसा काले बादलों से आच्छन्न हो जाता है, चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दिखाई पड़ने लगता है, न कोई राह सूझती है, न कहीं कोई ठिकाना दीखता और निराशा की ऐसी घड़ी में सहसा एक प्रकाश-किरण हमें राह दिखाती है। लोकनायक पंडित नेहरू के निधन की संकटापन्न घड़ी में बिजली की भाँति कौंधकर जिन्होंने हमारा पथ-प्रदर्शन किया था, वे थे महाचेता लालबहादुर शास्त्री।

बालक लालबहादुर का जन्म 2 अक्टूबर, 1904 को बनारस के निकट मुगलसराय नामक स्थान में एक अतिसाधारण कायस्थ-परिवार में हुआ था। उनके पिता शारदाप्रसादजी एक साधारण शिक्षक थे। डेढ़ वर्ष की अबोध आयु में ही उनके ऊपर से पिता की स्नेहवत्सल छाया हट गई। इसके पश्चात् तो उनकी धर्मपरायणा माताजी श्रीमती रामदुलारी देवी का स्नेहसलिल ही नवजात बिरवे को सींचता रहा। इसके बाद संकट के कितने झंझावात उस बिरवे की जड़ उखाड़ने के लिए उठते रहे, किंतु अदम्य जीवनशक्तिवाला यह लघुपादप आकाश की ओर कलगी उठाए बढ़ता ही रहा, मचलता-मुसकराता ही रहा।

लालबहादुरजी बचपन में अपने गाँव से बनारस पढ़ने के लिए जाते थे। उतराई के पैसे न रहने के कारण सबल मन, पर दुर्बल तनवाले लालबहादुर गंगा तैर जाते थे। लगता है, माँ गंगा ने लालबहादुर को बचपन में ही आत्मबल एवं आत्मविश्वास से इस प्रकार परिपूरित कर दिया था कि वे जीवनभर कभी साहसशून्य नहीं हुए। एक बार 1921 ई० में महात्मा गाँधी बनारस आए। वे असहयोग-यज्ञ का श्रीगणेश कर रहे थे। उन्हें ऊर्जा से उबलते नवयुवकों की आहुतियों की आवश्यकता थी। लालबहादुर ने सोल्लास उनकी स्रुवा पर प्रथम स्वाहा के निमित्त चढ़ जाने के लिए अपने को समर्पित किया। उस समय लालबहादुरजी की आयु केवल सत्रह साल की थी और वे वाराणसी के हरिश्चंद्र विद्यालय के छात्र थे। ढाई वर्ष तक बंदीगृह की यातना झेलकर वे पुनः अध्ययन का दीप जलाने के लिए काशी विद्यापीठ चले आए। वहाँ भारतविख्यात दार्शनिक भारतरत्न डॉ० भगवानदास, कुंदन की तरह दमकनेवाले आचार्य जे० बी० कृपलानी, वैदिक साहित्य के प्रकांड पंडित डॉ० संपूर्णानंद तथा स्वनामधन्य चिंतक श्रीप्रकाश के सान्निध्य में रहकर चार वर्षों तक उन्होंने जो ज्ञानज्योति जलाई, उससे आजीवन उनका पथ प्रकाशित होता रहा।

दर्शन और संस्कृत-साहित्य के अध्ययन के पश्चात शास्त्रीजी सक्रिय राजनीति में कूद पड़े। उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र इलाहाबाद चुना। वे इलाहाबाद-इंप्रूवमेंट ट्रस्ट के सक्रिय सदस्य रहे। वहाँ की कांग्रेस कमिटी के महासचिव के दायित्वपूर्ण कार्य को वे बड़ी तत्परतापूर्वक करते रहे। 1937 ई० में वे उत्तरप्रदेश की विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। 1941 ई० में वे दूसरी बार जेल गए। उनके जीवन के नौ महत्त्वपूर्ण वर्ष कारावास की चहारदीवारी में बीते। इस बीच उनके सामने अनेक बार विपत्तियाँ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुरसा की तरह मुँह फैलाती आईं, किंतु वे पवनपुत्र हनुमान की तरह विपत्तियों का दलन करते हुए आगे बढ़ते गए। उनकी साधना और तपस्या से उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री पं० गोविंदवल्लभ पंत बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने 1947 ई० में उन्हें अपने मंत्रिमंडल में गृहमंत्री बनाया।

अब लालबहादुरजी के जीवन का लाल सितारा चमका। पं० जवाहरलाल नेहरू का ध्यान भी इस राष्ट्रभक्त एवं साधना के भगीरथ की ओर गया। उन्होंने शास्त्रीजी को दिल्ली बुलाकर काँग्रेस-संगठन का कार्यभार सौंपा। शास्त्रीजी बड़ी कुशलता से संगठन का कार्य करते रहे। जब 1952 ई० में पं० नेहरू के नेतृत्व में पहली बार भारतीय गणतंत्र का नवनिर्वाचित मंत्रिमंडल बना, पंडितजी ने शास्त्रीजी को रेल तथा परिवहन मंत्री बनाया। शास्त्रीजी जानते थे कि जिस गाड़ी में सभी श्रेणियों के डिब्बे रहते हैं, उनमें तृतीय श्रेणी के यात्रियों को कितना कष्ट होता है। सामान्य जनता की सुविधा के लिए उन्होंने 'जनता गाड़ी' चलाई। इससे उन्होंने सामान्य लोगों का यात्राकष्ट ही नहीं कम किया, वरन् ऊँच-नीच, गरीब-अमीर के भेदभाव को भी दूर किया। किंतु, इसी बीच अरियालुर में भयानक रेल-दुर्घटना हुई। सैकड़ों आदमी मरे। यद्यपि इस दुर्घटना से शास्त्रीजी का कोई संबंध नहीं था, तथापि उस विभाग में बने रहना उन्होंने उचित नहीं समझा, जिस विभाग के कर्मचारी असावधान हों। 1957 ई० में इलाहाबाद से वे लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और फिर संचार तथा परिवहन मंत्री बनाए गए। 1961 ई० में उन्हें स्वराष्ट्र-मंत्रालय का कार्य सौंपा गया। कामराज-योजना में 1963 ई० में उन्होंने स्वराष्ट्र-मंत्री से त्यागपत्र दे दिया, किंतु पंडित नेहरू के पाँव उनकी लकुटिया के बिना डगमगाने लगे। जब वे 26 जनवरी, 1964 को नेहरू-मंत्रिमंडल में निर्विभागीय मंत्री बनाए गए, तब कामराज-योजना से प्रभावित एक व्यक्ति ने मजाक में कहा था—"अरे वाह, वह तो कैरम का स्ट्राइकर निकला! बोर्ड से गिरा था हमलोगों के साथ, मगर अकेला बोर्ड पर फिर वापस आ गया।"

नेहरूजी के समय जब-जब संकट का झंझावात उठता रहा, तब-तब शास्त्रीजी कुशल नाविक की तरह उनकी डगमग नैया को किनारे लगाते रहे। असम के भाषा-विवाद, भारत-नेपाल-संबंध तथा कश्मीर के हजरतबल-दरगाह से पवित्र बाल की चोरी के अवसर पर उन्होंने अपनी जिस राजनीतिक सूझ एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय दिया, वह किसी से छिपा नहीं है।

27 मई, 1964 को दो बजे दिन में हमारे बीच से पं० नेहरू उठ गए, तो 'नेहरू के बाद कौन' की विकट समस्या तत्काल समाधान माँगने लगी। किंतु, यह बेचैनी बहुत देर नहीं रही और काँग्रेस-दल ने सर्वसम्मति से 9 जून, 1964 को शास्त्रीजी को प्रधानमंत्री के उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने ज्योंही शासनभार सँभाला, त्योंही उनका ध्यान भारतवर्ष के चतुर्दिक विकास की ओर उन्मुख हुआ, किंतु सितंबर, 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया। पाकिस्तान के तत्कालीन सैनिक राष्ट्रपति अयूब खाँ को अपने पैटन टैंकों तथा अमेरिका द्वारा प्रशिक्षित सेनानियों पर बड़ा नाज था। जब शास्त्रीजी अपने रणबाँकुरों को 'का चुप साधि रह्यो बलवाना' कहकर उत्साह दिलाया, तो फिर क्या था, अमरीकी टैंक जापानी खिलौनों की तरह टूटने लगे। दिल्ली में हवा खाने के सपने का शीशमहल तो भहराकर चकनाचूर हुआ ही, अब लाहौर बचाने की चिंता-नागिन अयूब साहब के कलेजे पर लोटने लगी।

शास्त्रीजी ने उस समय 'जय जवान, जय किसान' का जो नारा दिया था, वह भारतीय प्रगति का सनातन नारा बन गया है। 1962 ई० में भारत ने चीन-युद्ध में जो पराजय झेली थी—उस कारण जब वे प्रधानमंत्री हुए थे, तब भारत का सर झुका

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हुआ था। उन्हें जो सेना मिली हुई थी, वह भी ग्लानि के भार से दबी जा रही थी। उसके अधिकांश फूल नेफा-चुशूल में न्योछावर हो चुके थे। उन्होंने उसी सेना में फिर से संजीवनी फूँकी और उसे चेतनावान किया। बहुत दिनों के बाद भारत को ऐसा महसूस हुआ कि हम भी वीर हैं, हम भी मरने-मारने में माहिर हो सकते हैं, हम भी देश के लिए कुर्बानियाँ दे सकते हैं और देश के भीतर यदि कोई शत्रु घुस आए, तो हम भी उसे धूल चटा सकते हैं। हम इतने सीधे नहीं कि जो चाहे चकमा दे जाए, न तो इतने विनम्र ही कि जो चाहे कमानी की तरह झुका दे। शास्त्रीजी चाहते थे, भारत और पाकिस्तान दोनों पड़ोसी देश शांति से रहें। इसी शांति की खोज में वे अपने देश से दूर ताशकंद गए और वहीं 1966 ई॰ की 11 जनवरी की मध्यरात्रि में सदा के लिए हमें छोड़ चले गए।

——

इंदिरा गाँधी

[प्रारंभ, बाल्यकाल, राजनीति, महत्ता, उपसंहार]

जिस देश की नारी श्रावणी पूर्णिमा के शुभ दिन अपने भाई के हाथ में राखी बाँधकर अपनी रक्षा के लिए आश्वस्त हो जाती है, हर क्षण जो पति को भगवान मानकर पूजन के पुष्प अर्पित करती है, उसी देश की सेवापरायणा नारी शासनसूत्र सँभालकर करोड़ों नर-नारियों को अभयदान भी दे सकती है—इसका ज्वलंत उदाहरण थीं श्रीमती इंदिरा गाँधी।

एक सुखद आश्चर्य की बात है कि जिस 19 नवंबर को रूस में जारशाही के विरुद्ध क्रांति का तूर्य बजा, उसी दिन 1917 ई॰ में तीर्थराज प्रयाग के राजनीतिक तीर्थस्थल 'आनंदभवन' में इंदिराजी का जन्म हुआ। सुकोमल स्निग्ध ज्योत्स्ना के समान शांत-मधुर व्यक्तित्व, अंतस् की गहराइयों में डूबी मुस्कान, भीतरी संवेदना दरसानेवाली स्वच्छ दर्पण-सी भावभंगी और जिज्ञासा जागरित करती हुई अपूर्व चेष्टा और सजग आस्थावाली कुशाग्रबुद्धि इंदिरा पं॰ नेहरू की लाडली बेटी तो थीं ही, देश की तरुणाई की प्रतीक भी थीं। संघर्ष के काँटे इनके पथ पर बिखरे रहे जरूर, पर इनसे छिद-बिंधकर भी इन्होंने साहस नहीं खोया। विपरीत परिस्थितियों के तूफान ने इन्हें झकझोरा अवश्य, फिर भी इनमें ऐसा अदम्य आवेग था कि ये रुक नहीं पाईं; पीड़ाओं को पीतीं, नए मार्ग बनातीं, दृढ़ कदमों से आगे बढ़ती रहीं।

जन्म की घड़ी से ही ये राजनीतिक बयार में पलीं और इनका व्यक्तित्व निर्मित हुआ। जब ये तीन साल की थीं, तब ऊँची मेज पर खड़ी होकर नौकरों के बीच जोर-जोर से भाषण देती थीं। इंदिराजी का सक्रिय राजनीतिक जीवन बारह वर्ष की आयु से आरंभ हो जाता है। 1929–30 में जब महात्मा गाँधी ने असहयोग-आंदोलन का बिगुल फूँका था, तब इंदिराजी ने अपनी उम्र के बच्चों का एक दल बनाया। इसका नाम था 'वानर सेना'। 'वानर-सेना' राजनीतिक कार्यकर्ताओं के संदेश एक-दूसरे के पास पहुँचाती थी। यह सेना यह भी खबर रखती थी कि किस कार्यकर्ता को कहाँ लाठियों-पत्थरों से पीटा गया तथा उसके उपचार की क्या व्यवस्था हो सकती है। आरंभ में इस सेना की संख्या छह सौ थी, किंतु इंदिराजी के मोहक एवं कर्मठ व्यक्तित्व के कारण इसकी संख्या दसगुनी हो गई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इंदिराजी की पढ़ाई का श्रीगणेश पूना के गुजराती-विद्यालय में हुआ। फिर ये शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के संपर्क में आईं। उसके बाद ये अध्ययन के लिए स्विट्जरलैंड गईं, किंतु क्रमबद्ध रूप से इनकी विश्वविद्यालयी शिक्षा नहीं हुई। ये पंडित जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभभाई पटेल और श्रीमती सरोजिनी नायडू के प्रत्यक्ष संपर्क के महाविद्यालय में ही शिक्षा-दीक्षा लेती रहीं। जिस परिवार की धुरी पर संपूर्ण भारतीय राजनीति ही चक्कर काटती रही, उस परिवार में जन्म लेने के कारण विरासत में ही इन्हें राजनीतिक क्रियात्मक ज्ञान की अक्षय निधि मिल गई।

इंदिराजी इतने समृद्ध परिवार में उत्पन्न हुई थीं कि वे अपना समय रँगरेलियों में अच्छी तरह बिता सकती थीं। किंतु, जब भारतमाता विदेशियों के अत्याचार के कारण कराह रही हो, तब उसकी बेटी मौज-मजे में दिन क्यों काटे? दुर्गाबाई और लक्ष्मीबाई की परंपरा की कड़ी क्या टूट सकती थी? नहीं, कदापि नहीं। इंदिराजी स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़ीं। महज 22 वर्ष की इनकी उम्र थी, जब 1939 ई० में पहली बार तेरह महीनों के लिए इन्हें जेल की सजा दी गई।

26 मार्च, 1942 के दिन इनका विवाह फिरोज गाँधी के साथ हुआ। किंतु, कुछ ही महीनों के बाद अगस्त में 'अँगरेजो, भारत छोड़ो' का आंदोलन चला। अभी ये विवाह की गुड़िया-बहू ही थीं कि फिर कारागृह की कालकोठरी में बंद कर दी गईं। इन्होंने देश को स्वतंत्र कराने के लिए अपने वैयक्तिक सुखों का होलिका-दहन किया और इनका कोमल तन राष्ट्रोत्सर्ग की आग में कुंदन बनता रहा।

जब देश स्वतंत्र हुआ तब त्यागी नेताओं ने राजभोग किया, किंतु इंदिराजी सब कुछ ठुकराती रहीं। पं० जवाहरलाल नेहरू—जो भारतीयों की आकांक्षाओं के मंगलदीप रहे—की लौ को चिरकाल तक बुझने न देने के लिए ये स्वयं स्नेह बन ढलती रहीं। पंडितजी ने बहुत निश्चिंत होकर राष्ट्रहित के लिए जो किया, उसकी आधारभूमि थीं इंदिराजी ही। इंदिराजी पंडितजी के साथ विश्वभ्रमण में जाती रहीं। उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान तो वे रखती ही थीं, साथ-ही-साथ संसार के राजनीतिक घटनाचक्र को भी ठिकाने से समझने की चेष्टा करती थीं।

1959 ई० में इंदिराजी देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित हुईं। 1964 ई० में जब पं० जवाहरलाल का निधन हुआ, तब ये लालबहादुर शास्त्री के अनुरोध पर सूचना और प्रसारण-मंत्री बनीं। देशवासियों का मानसबल बढ़ाने तथा विश्व में भारतीय मर्यादा को फिर से प्रतिष्ठित करने के लिए इनका कार्य सराहनीय रहा। जब दुर्भाग्य से 11 जनवरी, 1966 को लालबहादुर शास्त्री का निधन हुआ, तब 19 जनवरी, 1966 को ये प्रधानमंत्री चुनी गईं।

इंदिराजी ने जब से शासनभार सँभाला, तब से एक-से-एक क्रांतिकारी कदम उठाती चली गईं। बड़े-बड़े दिग्गज विरोधियों के रहते हुए भी इन्होंने 20 अगस्त, 1969 को वराहगिरि वेंकटगिरि को भारत के राष्ट्रपति-चुनाव में विजयी बनाया। कांग्रेस भले दो दलों में विभक्त हो गई, किंतु ये झुकीं नहीं। संसद में अब नई कांग्रेस की स्थिति पूर्ववत् नहीं रही। 1971 ई० में नियत समय से पहले इन्होंने संसद का चुनाव कराया। इनके व्यक्तित्व का ही आकर्षण था कि इनकी पार्टी—सत्ता-कांग्रेस—अजेय बहुमत से विजयी हुई और ये सर्वसम्मति से पुनः देश की प्रधानमंत्री बनाई गईं।

1977 ई० के प्रारंभ में ही इन्होंने लोकसभा के लिए चुनाव कराने की घोषणा की और इस बार के चुनाव में ये हार गईं। 27 मार्च, 1977 की सुबह श्रीमती गाँधी ने प्रधानमंत्री-पद से त्यागपत्र दे दिया। जनता-सरकार एवं परवर्ती लोकदल-सरकार के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शासनकाल में इन्हें सब ओर से लांछित और उत्पीड़ित करने के प्रयास हुए। लेकिन, ये अपने दृढ़ निश्चय और इच्छाशक्ति के सहारे जनमत अनुकूल करती रहीं। फलतः, 1980 ई० का पहला सप्ताह इनकी सेवा में एक बार फिर प्रधानमंत्रित्व लेकर उपस्थित हुआ। मध्यावधि चुनाव में एक बार फिर श्रीमती गाँधी के नेतृत्व के प्रति विशाल जनास्था व्यक्त हुई। अपने अप्रतिम गत्यात्मक व्यक्तित्व के कारण श्रीमती गाँधी ने निरंतर सफलताएँ अर्जित कीं। इनके ही निर्देशन में, 1982 ई० में एशियाई खेलों का आयोजन दिल्ली में हो सका। ये 102 देशों के गुटनिरपेक्ष सम्मेलन की अध्यक्ष भी बनीं।

31 अक्टूबर, 1984 का प्रातःकाल, 9 बजकर 30 मिनट, मानवता के इतिहास का अत्यंत क्रूर, बर्बर एवं काला पृष्ठ ! उस दिन भारत की प्रधानमंत्री विश्व की महान नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी ज्योंही अपने आवास 1, सफदरजंग रोड, नई दिल्ली से बाहर निकलीं, इनके दो अंगरक्षकों ने इन्हें गोलियों से छलनी कर दिया और इनके प्राण-पखेरू उड़ गए। इस लौह-महिला ने अपने शरीर की अंतिम बूँद तक अर्पित कर दी, किंतु भारत की अखंडता एवं धर्मनिरपेक्षता के विरोधी उग्रवादियों के समक्ष घुटने नहीं टेके।

राजीव गाँधी

[आरंभ, जीवन, उपलब्धियाँ, उपसंहार]

इक्कीसवीं शताब्दी में भारत के अनुप्रवेश के संकल्पक, भविष्य के भारत की आधारशिला, युवा-राजनीति के ध्रुवनक्षत्र राजीव गाँधी संसार के इस सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश के प्रधानमंत्री उस दिन हुए जिस दिन उनकी माता यानी भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी का निधन हुआ। राजनीति के दलदल में उनकी छवि मानस-सरोवर में खिले कमल जैसी शुभ्र-शोभन है। उनके नेतृत्व में भारत आधुनिकीकरण, विज्ञानीकरण और खुशहाली के नए युग में प्रवेश कर रहा था। राजीव गाँधी न केवल इस देश के करोड़ों लोगों के हृदय-सम्राट रहे, अपितु तीसरी दुनिया की सारी आशाओं के केंद्र में अवस्थित विश्वचर्चित राजनेता भी। अपने सौम्य व्यक्तित्व, निडर आचरण, स्पष्ट भाषण और उदात्त संस्कारों के सहारे राजीव गाँधी ने भारत के प्रधानमंत्री-पद को नया आयाम प्रदान किया।

भारतीय राजनीति के सबसे ताजे और भास्वर प्रकाशपुंज राजीव गाँधी का जीवन स्वाधीनता-संग्रामियों की छत्रच्छाया एवं प्रधानमंत्री-परिवार की गरिमा के बीच बीता है। स्वभावतः देशनिष्ठा और अभिजात संस्कार के गुण उनके व्यक्तित्व के अविभाज्य अंग बन गए हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के नाती और भारत की पहली महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के ज्येष्ठ पुत्र राजीव गाँधी का जन्म 20 अगस्त, 1944 को बंबई में हुआ था। उनके पिता फीरोज गाँधी भी स्वाधीनता-संघर्ष में जूझ रहे थे। नाना, माँ और पिता द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ी जा रही लड़ाई के बीच राजीव गाँधी का बचपन बीता। 15 अगस्त, 1947 को भारत के स्वाधीन होने पर पं० नेहरू देश के प्रधानमंत्री बने, तो इंदिराजी के साथ उनके बच्चे भी दिल्ली के तीनमूर्ति-भवन में रहने आ गए। दिल्ली में राजीव और उनके छोटे भाई संजय की प्रारंभिक शिक्षा शिव-निकेतन में शुरू हुई। बाद में 1954 ई० में राजीव गाँधी देहरादून के बेलहाम विद्यालय में पढ़ने गए। वहाँ से आइ० एस-सी० की परीक्षा में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्तीर्ण होने के बाद राजीव गाँधी सीनियर कैंब्रिज की पढ़ाई के लिए इंगलैंड चले गए। जनवरी, 1966 में जब उनकी माँ श्रीमती इंदिरा गाँधी को भारत के तीसरे प्रधानमंत्री-पद की शपथ दिलाई गई, तब राजीव गाँधी कैंब्रिज में पढ़ रहे थे। पढ़ाई पूरी कर उन्होंने विमान-संचालन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। अपने कैंब्रिज-प्रवास के दिनों में ही उनकी मुलाकात इटली की कुमारी सोनिया माइनो से हुई थी। 1968 ई० में राजीव और सोनिया का विवाह हो गया। 1970 ई० में राजीव गाँधी को इंडियन एयरलाइंस में विमानचालक की नौकरी मिल गई। उन दिनों राजनीति के साथ उनका सीधा संबंध नहीं था, लेकिन 23 जून, 1980 को अनुज संजय गाँधी के विमान-दुर्घटना में असामयिक निधन के बाद वे धीरे-धीरे राजनीति में आए। जून, 1981 में वे अमेठी से भारतीय संसद के सदस्य निर्वाचित हुए। वे अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति के महासचिव भी बनाए गए। राजनीति और लोकप्रियता के आकाश में ज्योतिर्मय शुक्र नक्षत्र की तरह छा रहे राजीव गाँधी को अचानक 1984 ई० के उत्तरार्द्ध में संसार के इस महत्तम देश की बागडोर सँभालनी पड़ी। उनकी माँ विश्वनेता श्रीमती इंदिरा गाँधी 31 अक्टूबर, 1984 को अपने ही अंगरक्षकों की गोलियों का निशाना बन गईं और अत्यंत संकटपूर्ण एवं अस्तव्यस्त परिस्थितियों में उसी दिन राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री-पद की शपथ दिलाई गई। कई लोगों को आशंका थी कि वे अनुभवहीन होने के कारण शायद असफल हों, लेकिन जितने कौशल के साथ राजीव गाँधी ने देश का संचालन प्रारंभ किया, उससे दिग्गज अनुभवी राजनीतिज्ञों-प्रशासकों की आँखें चौंधिया गईं। दिसंबर, 1984 में उन्होंने लोकसभा के चुनाव कराए और समूचे देश से अपने दल को अभूतपूर्व विजय दिलाई। चुनाव में राजीव गाँधी का हाथ मजबूत कर देश ने उसी प्रकार का आचरण किया, जिस प्रकार एक सहायतापेक्षी पिता अपने जवान बेटे को परिवार की सारी बागडोर सौंप देता है। 31 दिसंबर, 1984 को राजीव गाँधी ने नई लोकसभा के सदस्यों के नेता के रूप में नए सिरे से प्रधानमंत्री का पद सँभाला। अगली शताब्दी और भावी भारत के बारे में हमारे युवा प्रधानमंत्री के मन में स्पष्ट कल्पनाएँ थीं। वे भारत को कंप्यूटर-युग में ले जाना चाहते थे और संसार के अन्य देशों के बीच इस देश की विशिष्ट छवि बनाने को वचनबद्ध थे। उन्होंने शिक्षा की नई नीति की प्रस्तावना की, नए भारत के निर्माण का संकल्प किया।

अपने प्रधानमंत्रित्व-काल के एक वर्ष के भीतर ही उन्होंने अनेक उल्लेखनीय कार्य किए। बेतरह उलझी हुई पंजाब-समस्या का समाधान उन्होंने 24 जुलाई, 1985 को 5 बजकर 45 मिनट पर शिरोमणि अकालीदल के अध्यक्ष संत हरचंद सिंह लोंगोवाल के साथ एक सम्मानपूर्ण समझौते के द्वारा किया। फिर, उसके बाद उन्होंने पंजाब में लोकसभा और विधानसभा का चुनाव कराकर जनतंत्र की नींव मजबूत की। इसके बाद उन्होंने आसाम की गुत्थियों को सुलझाया और वहाँ 16 दिसंबर, 1985 में चुनाव कराया। अपने प्रधानमंत्रित्व-काल के एक वर्ष के अंदर ही उन्होंने चार बार विदेश की यात्राएँ कीं। जिन देशों की उन्होंने यात्राएँ कीं, उनमें प्रमुख देश हैं—रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, अल्जीरिया, मिस्र, स्विट्जरलैंड आदि। उन्होंने 7 दिसंबर, 1985 को ढाका (बँगलादेश) में आयोजित दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग (सार्क) के सात देशों के द्विदिवसीय शिखर-सम्मेलन में भारत का प्रभावकारी प्रतिनिधित्व किया। इन यात्राओं के द्वारा उन्होंने विभिन्न देशों के साथ भारत के सुंदरतर संबंध बनाने की दिशा में श्लाघ्य कार्य किए। 24 अक्टूबर, 1985 को उन्होंने राष्ट्रसंघ की चालीसवीं वर्षगाँठ के अवसर पर भाषण किया। उनके विचारगर्भ भाषण को सुनकर संसार के अनेक नेताओं ने एक स्वर से कहा कि राजीव गाँधी ने निःसंदेह अपने को तीसरे विश्व के नेता के रूप में स्थापित कर लिया है। लेकिन, 1989 ई० के अंत में संपन्न नौवीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोकसभा के आम चुनाव में राजीव गाँधी का राष्ट्रीय कांग्रेस दल बहुमत नहीं प्राप्त कर सका। इसके बाद राजीव गाँधी ने 1 नवंबर, 1989 को प्रधानमंत्री-पद से त्यागपत्र दे दिया और वे संसद में विपक्ष के सर्वसम्मत नेता बन गए।

मगर विधि की विडम्बना देखिए कि जनता से उनकी करीबी ही उनकी जान ले बैठी। 21 मई, 1991 को मद्रास से 50 किलोमीटर दूर स्थित श्री पेरुम्बुदूर में एक चुनाव सभा में लोगों से हार लेते समय श्री गाँधी एक भयंकर बम विस्फोट का शिकार हो गए।

रवींद्रनाथ ठाकुर

[आरंभ, जीवनवृत्त, साहित्य-साधना, उपसंहार]

अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं सतत सारस्वत साधना के बल पर विश्वसाहित्य में छतनार बरगद की तरह छा जानेवाले महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर को कौन नहीं जानता? महाकवि ने न केवल पहली बार नोबेल-पुरस्कार का द्वार भारतीयों के लिए उन्मुक्त किया, वरन् उस विश्वविख्यात पुरस्कार को भी पहली बार पुरस्कृत किया, इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं।

सरस्वती के इस वरद पुत्र ने लक्ष्मी की गोद में भारत की महानगरी कलकत्ता में 7 मई, 1861 को जन्मग्रहण किया। इनके पिता महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर ब्रह्मसमाज के संस्थापकों में अग्रणण्य थे। बड़े घर के लड़कों की तरह इनका बचपन नौकरों के कठोर एवं दुःखद नियंत्रण में बीता। इन्होंने अपने बचपन के बारे में स्वयं लिखा है—"जिस प्रकार हिंदुस्तान के इतिहास में गुलाम घराने का शासन सुखदायी नहीं था, उसी प्रकार मेरे जीवन के इतिहास में नौकरों के शासनकाल का समय भी सानंद नहीं बीता। जब मुझपर मार पड़ती, मैं चिल्लाता। मेरे इस दुर्व्यवहार को दंड की व्यवस्था करनेवाले अपने शासन के खिलाफ विद्रोह मानते और उसे शांत करने के लिए मेरा सिर पानी से भरे नादों में किस तरह डुबाया जाता, यह मैं नहीं भूल सकता।

नौकरों की बात कौन कहे, शिक्षकों ने भी इन्हें कम यातना नहीं दी थी। कभी-कभी तो इन्हें चिलचिलाती धूप में घंटों खड़ा रहना पड़ता था। बचपन में ही इनकी माँ परलोक सिधार गईं, इसलिए उनका स्नेहांचल इन्हें उपलब्ध नहीं हो सका। इन सारी घटनाओं एवं नियंत्रित जीवन ने इन्हें प्रकृति की ओर उन्मुख कर दिया। जब ये नीले आकाश के मैदान में बादलों की घुड़दौड़ देखते, तब इनके हृदय में आनंद की लहरें हिलोरें लेने लगतीं। जब शरद की गुलाबी धूप होती, तब ये बागों की ओर दौड़ जाते। ओस से नहाए फूलों की सुरभि इनका आलिंगन करती, तालपत्रों के झरोखे से झाँकती प्रातःकालीन किरणें अभिनंदन करतीं और तब इन्हें ऐसा लगता कि प्रकृति से बढ़कर दूसरी सहचरी की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रकृति के भरे-पूरे रूप ने इनके जीवन में रिक्तता का लेश भी नहीं रहने दिया।

इन्होंने कलकत्ता के ओरियंटल सेमिनरी, नॉर्मल स्कूल, बंगाल अकादमी तथा सेंट जेवियर्स कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की। घर पर भी इनके लिए विभिन्न विषयों के सुयोग्य शिक्षकों की व्यवस्था की गई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

1878 ई० में ये उच्च शिक्षा के लिए इंगलैंड भेजे गए। पहले तो इनकी शिक्षा ब्राइटन के पब्लिक स्कूल में हुई, फिर ये लंदन-विश्वविद्यालय में भरती हुए। इंगलैंड में ये दो वर्ष रहे। उपाधि-प्राप्ति की दृष्टि से यह प्रवास महत्त्वपूर्ण नहीं है, किंतु कवि की अनुभवकोष-वृद्धि की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है।

बचपन से इनका झुकाव कविता की ओर था। इनकी सबसे पहली कविता 'अभिलाष' शीर्षक से 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका में छपी। इस समय ये केवल तेरह वर्ष के थे। आरंभ में रविबाबू चंडीदास और विद्यापति जैसे वैष्णव कवियों का अनुकरण करते थे, किंतु बाद में इनकी मौलिक रचनाएँ प्रकाश में आने लगीं। अठारह वर्ष की उम्र के बाद इनकी रचनाओं की झड़ी लग गई। शायद ही ऐसा कोई वर्ष हो, जिसमें इनकी कोई जोरदार मौलिक रचना न आई हो।

23 वर्ष की उम्र में इनके जीवन का दूसरा अध्याय खुलता है। इनका विवाह मृणालिनी देवी के साथ हुआ और साथ-ही-साथ अपने पिता की जमींदारी की देखरेख के लिए इन्हें सियालदह जाना पड़ा। सियालदह में इन्होंने सामान्य मनुष्य के जीवन को बड़े ही निकट से देखा। इसी काल में इन्होंने 'चित्रांगदा', 'राजा ओ रानी' जैसी रचनाएँ प्रस्तुत कीं; 'साधना' नामक पत्रिका का भी संपादन किया। इतनी कम उम्र में ही रविबाबू बंगाल की पत्र-पत्रिकाओं पर छा गए। वह पत्र क्या, जिसमें रविबाबू की कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध कुछ-न-कुछ न हो!

40 वर्ष की उम्र में इनके जीवन में अमावस्या आई। पत्नी का देहांत, पुत्री का निधन, कनिष्ठ पुत्र की मृत्यु। दुर्दैव एक के बाद एक वज्रप्रहार करता रहा, किंतु महाकवि अविचल भाव से अपनी साहित्य-साधना में लगे रहे।

रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपने जीवन में शिक्षा का बड़ा ही कटु अनुभव किया था। स्कूलों को ये कारखाने जैसा समझते थे। जैसे घंटी बजाकर साढ़े दस बजे कारखाना खुलता है और कलों का चलना आरंभ हो जाता है, वैसे ही दस बजे घंटी बजाकर स्कूल खुलता है और मास्टरों के मुँह चलने लगते हैं। चार बजे कारखाने बंद हो जाते हैं और मास्टररूपी पुर्जे भी मुँह बंद कर लेते हैं। वहाँ शिक्षकों से जिस प्रकार की विद्या प्राप्त होती थी, उसका जीवन और समाज के साथ मेल नहीं हो पाता था। अतः, वह शिक्षा-प्राणहीन होती थी।

इसलिए, ये प्राचीन ऋषियों की परंपरा के विद्यालय की स्थापना करना चाहते थे, जहाँ मृगछौने मृगदावों में कैद नहीं किए जाते, जहाँ शिक्षार्थी चहारदीवारियों में बंद नहीं किए जाते। महाकवि का यह स्वप्न तब साकार हुआ, जब इन्होंने 1901 ई० में 'शांतिनिकेतन' की स्थापना की। 'शांतिनिकेतन' इस हिंसा-विद्वेष से जर्जर सागर में एक ऐसा आलोकस्तंभ है, जिससे रक्तसिंधु में डूबती-तैरती मानव-जाति को सुरक्षा की आशा-किरणें प्राप्त होती हैं। आरंभ में तो वहाँ केवल दो-तीन छात्र थे, लेकिन धीरे-धीरे छात्रों की संख्या सैकड़ों तक पहुँच गई। आज शांतिनिकेतन 'विश्वभारती विश्वविद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध है। 'विश्वभारती' सचमुच विश्वभारती है। यहाँ आ कर राष्ट्रीयता के तंग घेरे समाप्त हो जाते हैं और मानव विश्वबंधुत्व के दिव्यमंत्र से दीक्षित हो जाता है। यह शिक्षा, शांति एवं स्नेह का पावन प्रयाग है, कला-साधना की तपोभूमि है, नालंदा एवं विक्रमशिला जैसे प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों की स्फूर्तिदायिनी जागृति है।

कवि की कीर्तिपताका सात समुद्रों की उत्तल तरंगों पर फहराने लगी, जब 1913 ई० में इनकी 'गीतांजलि' नोबेल-पुरस्कार से विभूषित की गई। 'गीतांजलि' की उपमा उस ज्योत्स्नास्नात सौध से दी जा सकती है, जिसका निर्माण दिव्य उपकरणों से हुआ है। 'गीतांजलि' वह दिव्यांबर है, जिसमें कवि की दिव्य दृष्टि के मूल्यवान तारे जड़े हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन गीतों में कवि ने अपनी आत्मा का अमृतासव ही मानो पीड़ित पाठकों के लिए उपस्थित किया है। गीतांजलि का एक-एक गीत भावों से लबालब और संगीत की माधुरी से सिक्त मधुचक्र है।

जब-जब देश पर संकट के बादल घिरते थे, कवींद्र बहुत व्यथित हो उठते थे और उसके प्रतिकार-हेतु विचार देते थे। गाँधीजी इनसे इतने प्रभावित थे कि इन्हें 'गुरुदेव' कहकर अपनी भक्ति समर्पित करते थे। आज स्वतंत्र भारत में इनका गीत 'जन-गण-मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्यविधाता' राष्ट्रीय गान का गौरव पाकर हमारे हृदय में एकता एवं स्वातंत्र्य की गंगा-यमुना बहा रहा है।

महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर प्रतिभा की विपुलता एवं भास्वरता के द्वारा लगभग पाँच युगों तक साहित्य के आकाश पर जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति परिदीप्त होते रहे। कलामय अभिव्यक्ति का शायद ही कोई कोना हो, जो इनके लिए अनदेखा रह गया हो। इनकी प्रतिभा जिस दिशा में भी गई, नवीन मार्ग बनाकर फूलों की फसल उगाती गई। इनके पारस-परस से साहित्य की सारी विधाएँ स्वर्ण बन गईं। ये केवल बँगला-साहित्य के पुरोधा नहीं थे, वरन् विश्वसाहित्य के मार्गदर्शक भी हुए। संगीत और नृत्य पर लगे कलंक के धब्बे का इन्होंने मार्जन किया और बंगाल के संभ्रांत गृहों को नृत्य-संगीत का प्रतिष्ठित रंगमंच बना दिया। अपने वार्द्धक्य में इन्होंने कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ खीचीं और चित्रकला की नई सरणि बना दी। आज इनके बनाए चित्र ऊँचे दामों पर बिकते हैं।

'गीतांजलि', 'माली', 'बलाका' इत्यादि काव्यपुस्तकों के अतिरिक्त इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं—'आँख की किरकिरी', 'नौका-डूबी', 'राजर्षि', 'गोरा', 'घर और बाहर', 'तीन पुरुष', 'शेषेर कविता' (उपन्यास); 'वाल्मीकिप्रतिभा', 'प्रकृति का प्रतिशोध', 'माया का खेल' (गीतिनाट्य); 'चित्रांगदा', 'विसर्जन', 'मालिनी', 'फाल्गुनी', 'रक्तधारा', 'डाकघर' (नाटक); 'घर-वापसी', 'पोस्टमास्टर', 'काबुलीवाला' (कहानियाँ); 'प्राचीन साहित्य', 'शिक्षा', 'मानव-धर्म' (निबंध)।

जीवन के अस्सी वसंतों की रंगीनियों की सौगात लुटाकर ये ऋतुराज (निधन 7 अगस्त, 1941, 12 बजकर 13 मिनट दिन में) हमारी आँखों से सदा के लिए तिरोहित हो गए। सदेह ज्योति-निर्झर, भले ही हमारे बीच से उठ गया हो, किंतु इनके साहित्य का जो अक्षय मधुनिर्झर है, वह हमें संतृप्त करने के लिए सदा झरता रहेगा, इनके शक्तिस्रोत से हम अपने में नित्य नई शक्ति भरकर आगे बढ़ते रहेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर्व-त्योहार-संबंधी निबंध

होली

[प्रारंभ, पौराणिकता, उल्लास की अभिव्यक्ति, साहित्य में वर्णन, उपसंहार]

जिसका स्मरण करते ही कण-कण में बिजली का स्पंदन हो जाता है, नस-नस में लालसा की लहर दौड़ जाती है, मन-प्राणों पर भावों का सम्मोहक इंद्रधनुष छा जाता है, उसका नाम है होली। मौज और मस्ती, रवानी और जवानी, रंगीनी और अलमस्ती की एक बहुत ही खूबसूरत यादगारी का नाम है होली।

माघ की पंचमी की प्रकृतिरानी ऋतुराज के पास आमंत्रण भेजती है। ऋतुराज जब अपने आगमन की सूचना देता है, तब प्रकृति रानी के अंग-अंग में छवियों के कदंब खिल उठते हैं। वस्तुतः, होली ऋतुराज वसंत की आगमन-तिथि फाल्गुनी पूर्णिमा पर आनंद और उल्लास का महोत्सव है। यह जीर्ण-शीर्ण पुरातन के स्थान पर नित्यनूतन की स्थापना का मंगलपर्व है। पुराना वर्ष बीता रीता-रीता, सूना-सूना, नया वर्ष भरा-पूरा हो, इसी शुभकामना की आराधना है होली।

होली से संबद्ध अनेक पौराणिक कथाओं का उल्लेख किया जाता है। एक कथा के अनुसार, जब हिरण्यकशिपु अपने ईश्वरभक्त पुत्र प्रह्लाद को किसी उपाय से मार न सका, तब उसने अंतिम रामबाण छोड़ा। उसकी बहन होलिका थी। उसे वरदान मिला था कि उसकी गोद में जो कोई बैठेगा, वह खाक हो जाएगा। प्रह्लाद होलिका की गोद में बैठाए गए, किंतु उनका बाल बाँका न हो सका। बाद में प्रभु ने नृसिंहावतार धारण कर उनके पिता हिरण्यकशिपु का नाश किया। अतः, होलिकादहन और होलिकोत्सव अधर्म के ऊपर धर्म, बुराई के ऊपर भलाई, दुराग्रह के ऊपर सत्याग्रह और दानवत्व के ऊपर देवत्व का स्मारक है।

एक कथा के अनुसार, होली या मदनोत्सव भगवान शिव के कामदहन का साक्षी है, तो दूसरी कथा के अनुसार, जब भगवान श्रीकृष्ण ने दुष्टों का दलन कर गोपबालाओं के साथ रास रचाया, तब होली का प्रचलन हुआ।

वस्तुतः मनुष्य के जीवन का अधिकांश कष्टों से भरा है। यदि वह दिन-रात तिल-तंडुल की ही चिंता में घुलता रहे, यदि वह आशा और निराशा के दो पाटों के बीच ही पिसता रहे, तो उसके जीवन और जानवर के जीवन में कोई अंतर नहीं रहेगा। उसका जीवन नरक का खौलता हुआ कड़ाह बन जाएगा। अतः, संसार के प्रायः सभी देशों में कुछ उल्लास और उन्मुक्ति के त्योहार मनाए जाने लगे, जो वर्ष की यात्रा के ऐसे पड़ाव हैं, जहाँ तरह-तरह के मनोरंजन हैं, विविध आनंद हैं, अनेक प्रकार के क्रीड़ास्थल हैं। और, उनमें सर्वोत्तम है होली। रोम-राज्य के फेस्टम स्टलटोरम, मेट्रोनालिया, फेस्टा आदि ऐसे ही पर्व थे। जर्मनी में भी ऐसा रंगपर्व मनाया जाता था, जिसमें लोग खुशी और मस्ती की एक-एक बूँद उलीच देना चाहते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमारे देश में वसंतागमन का यह पर्व जिस धूमधाम से मनाया जाता रहा है, उसका क्या कहना ! द्वापर में कालिंदी-कूल पर कन्हैया और गोपबालाओं की होली की बात तो छोड़िए, आज भी वृंदावन की कुंजगलियों में जब सुनहली पिचकारियों से रंग के फव्वारे छूटते हैं और सुगंधित अबीर और गुलाल का छिड़काव होता है, तब स्वयं देवेश इंद्र भी इस भारतभूमि में जन्म लेने के लिए लालायित हो उठते हैं। भारतवर्ष के कोने-कोने में यह उत्सव मनाया जाता है। अमीरों की अट्टालिकाओं में तो नित्यप्रति पूनो ही रहती है, किंतु सामान्य व्यक्तियों के दुःखियारे जीवन के गलियारे में तो इसी दिन चाँदनी झाँक पाती है। आम्रवृक्षों पर जैसे भौरें की बरात मौज मनाती है, वैसे जौ-गेहूँ और चने की गदराई फसलों को देखकर किसानों का मन तितलियों की तरह नाचने लगता है। फाग की मस्ती में उनके मन-प्राणों पर एक अजब सुरूर छा जाता है, आँखों के प्यालों में फाल्गुनी मस्ती की मदिरा गजब ढाने लगती है। यही दिन है, जब धनी-निर्धन, सुखिया-दुःखिया, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध के बीच की भेदक दीवार टूट जाती है और मनुष्य केवल मनुष्य रह जाता है।

होली का वर्णन हमारे साहित्य में बड़ा ही चित्ताकर्षक हुआ है। क्या कबीरदास, क्या सूरदास, क्या तुलसीदास, क्या रसखान, क्या पद्माकर और क्या निराला—सभी ने होली का बड़ा मनोरम वर्णन किया है। चाहे सगुण ब्रह्म हो या निर्गुण, चाहे राम हों या कृष्ण, चाहे बड़े लोग हों या छोटे—सभी होली के रंग में रँग दिए गए हैं। महाकवि सूरदास ने नंदनंदन श्रीकृष्ण और वृषभानुकिशोरी राधा के होली खेलने का बड़ा ही चित्ताकर्षक वर्णन अनेक पदों में किया है।

जब से फागुन आया है, तब से ब्रजमंडल में धूम मच गई है। ऐसी कोई नवेली नारी नहीं, जो प्रेमरंग में न रँग गई हो। साँझ-सकारे रंग-गुलाल का खेल चलता है, ऐसी कोई रमणी नहीं, जिसका लज्जा-वसन न मसका हो, ऐसा कोई पुरुष नहीं, जिसका मान-गुमान न दरका हो। कोई सखी यमुना की ओर न निकले तो अच्छा; क्योंकि मार्ग में नंदलाल खड़े हैं, वे नैन नचाकर प्रेम का भाला चला रहे हैं। जो एक सखी बाहर निकली, तो नटनागर ने उसकी बुरी गति कर दी। होली क्या हुई, हरि तो लाल हो ही गए, ब्रजबाला भी लाल गुलाल में पग गई। रसखान की पंक्तियाँ हैं—

जाहु न कोऊ सखी जमुनाजल रोके खड़ो मग नंद को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै रसखानि चलावत प्रेम को भाला।
मैं जु गई हुती बैरन बाहर मेरी करी गति टूटि गौ माला।
होरी भई कै हरी भए लाल कै लाल गुलाल पगी ब्रजबाला।

किंतु, कुछ अबोध जन इस दिन दूसरों पर सड़ा कीचड़ उछालते हैं, पत्थर फेंकते हैं, ताड़ी और दारू डकारकर, गाँजा-भाँग और चरस पीकर शर्मनाक गाने और गाली-गलौज करते हैं। कुछ लोग इस अवसर पर पुरानी अदावत का बदला लेना चाहते हैं; वर्गगत, जातिगत तथा संप्रदायगत विद्वेष का विष फैलाना चाहते हैं। वे भूल जाते हैं कि होली शत्रुता के विरुद्ध मित्रता, गंदगी के विरुद्ध स्वच्छता एवं अनेकता के विरुद्ध एकता का अभियान है। प्रेम-मिलन एवं विरोध-विस्मरण के मधुमय आमंत्रण का पर्याय है होली। उपर्युक्त विकृतियाँ यदि शीघ्र-से-शीघ्र दूर हों, तभी हमें अपनी संस्कृति पर गर्व करने का अधिकार होगा, होली की मिलनसारी समझने का हक होगा।

यदि दीपावली ज्योति-पर्व है, तो होली प्रीति का; यदि दुर्गापूजा शक्ति की उपासना है, तो होली में शक्ति और प्रेम की अवतारणा। होली का लाल रंग प्रेम और त्याग—दोनों का प्रतीक है। होली जन-जन को एक तार में गूँथ देनेवाली है। होली सचमुच हो-ली है !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दीपावली

[भूमिका, परंपरा, महत्त्व, उपसंहार]

कार्तिक अमावस्या की काली कसौटी-सी अँधेरी रात। चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार। हाथ को हाथ नहीं सूझता। मानो, मनुपुत्र घनघोर ध्वांत में तिमिंगल-सा तिलमिला उठा। उसने मंत्रवाणी में पुकारा—'तमसो मा ज्योतिर्गमय', हम अंधकार से प्रकाश की ओर चलें; उसने वेदवाणी में गुहार मचाई—'स नो ज्योतिः' हमें प्रकाश दीजिए; उसने बाइबिल की भाषा में संकल्प व्यक्त किया—Let there be light and there was light. बस, क्या था, जल उठे मिट्टी के अनगिनत दिए—बिलकुल निर्वात, पूर्ण निष्कंप। सज गईं दीपमालाएँ और स्मरण दिलाने लगीं उस ज्ञानालोक के अभिनव अंकुर की, जिसने मनुष्य की कातर प्रार्थना को दृढ़ संकल्प का रूप दिया था—अंधकार से जूझना है, विघ्न-बाधाओं के वक्षःस्थल पर अंगदचरण रोपना है, संकटों के तूफान का सामना करना है। परिणाम हुआ, ज्योति के सिंहशावक के भय से भाग उठी तमिस्रा की कोटि-कोटि गजवाहिनी, बिंध उठे आलोकशर से उनके अंग-प्रत्यंग। धरती का प्रकाश स्वर्ग के सोपान को भी प्रकाशित करने लगा। खिल उठा खुशियों का सहस्रदल कमल, बज उठे आनंद के अनगिनत सितार।

कहते हैं, जिस दिन पुरुषोत्तम राम लोकपीड़क रावण का संहार कर अयोध्यापुरी लौटे थे, उस दिन भारत की सांस्कृतिक एकता के अभिनव अभियान का अध्याय खुला था। इसे चिरस्मरणीय बनाने के लिए परस्पर, नगर-नगर दीप जलाकर ज्योतिपर्व मनाया गया था। कहते हैं, तभी से दीपावली का शुभारंभ हुआ।

यह भी कहा जाता है कि जब श्रीकृष्ण ने नरकासुर जैसे आततायी का वध किया था, तब से यह प्रकाशपर्व मनाया जाने लगा दीपों की आवली सजाकर और तभी से इस त्योहार का श्रीगणेश माना जाता है। कभी वामनविराट ने दैत्यराज बलि की दानशीलता की परीक्षा ली थी, उसका दर्पदलन किया था और तभी से उसकी स्मृति में यह आलोकोत्सव मनाया जाता है। जैनधर्म के महान तीर्थंकर वर्धमान महावीर इसी दिन पृथ्वी पर अपनी ज्योति फैलाकर महाज्योति में विलीन हो गए थे—इसलिए भी इसका महत्त्व है। महान महर्षि स्वामी रामतीर्थ की भी यही जन्म एवं निर्वाण की तिथि है। आधुनिक भारतीय समाज के निर्माता और आर्यजगत के मंत्रद्रष्टा स्वामी दयानंद का भी यही निर्वाण-दिवस है। इस प्रकार, दीपावली पौराणिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आधुनिक क़थादीपों की संवाहिका है।

दीपावली जब आती है, तब सांस्कृतिक त्योहारों की एक स्वर्णशृंखला ले आती है, एक के पीछे एक आनेवाले पाँच त्योहारों का सम्मेलन उपस्थित कर देती है। त्रयोदशी को 'धनतेरस' का यमदीप जलाया जाता है, अकालमृत्यु से बचने के लिए यमराज का आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। इसी दिन धन्वंतरि-जयंती भी मनाई जाती है। दीर्घायुष्य एवं अकालपरिहार के लिए इसे राष्ट्रव्यापी त्योहार का रूप देना कितना आवश्यक है, यह हम भलीभाँति समझ सकते हैं। चतुर्दशी को 'नरकचौदस' या 'नरकचतुर्दशी' का त्योहार मनाया जाता है। नरक तो 'नरकासुर' की याद दिलाता ही है, साथ ही नरक गंदगी को भी कहते हैं। जहाँ गंदगी है वहाँ रोग है; जहाँ रोग है, वहाँ मृत्यु है—यमराज है। अतः, नरक अर्थात गंदगी को दूर भगाने के लिए सफाई का अभियान जरूरी है। यही कारण है कि दीपावली के समय घर की सफाई, लिपाई-पोताई, रँगाई इत्यादि की जाती है। किंतु, हमारे देश में जितनी स्वच्छता अपेक्षित है, वह अब भी नहीं हो पाई है। क्या ही अच्छा हो यदि हम इस दिन पूरे राष्ट्र की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वच्छता का व्रत लें। दीपावली तो पाप और पुण्य की विजयगाथा कहती है। दीपावली के दूसरे दिन, अर्थात प्रतिपदा को 'गोवर्धनपूजा' की जाती है; क्योंकि इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी छिगुनी पर गोवर्धन धारण कर ब्रजवासियों को मृत्युत्रास से मुक्त किया था। द्वितीया के दिन 'भ्रातृद्वितीया' या 'भाईदूज' का त्योहार मनाया जाता है, जो यमराज और उनकी बहन यमी के पावन प्रेम के साथ-साथ सभी भाई-बहनों के पवित्र एवं व्यापक प्रेम की याद दिलाता है। इस प्रकार, 'धनतेरस' से 'भाईदूज' तक—ये पाँच त्योहार एक के पीछे एक आते हैं और इनमें सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के तत्त्व भरे पड़े हैं। इन सभी त्योहारों पर कालपुरुष सार्वभौम स्वामी यमराज का आशीर्वाद फैला हुआ है।

'दीवाली' यद्यपि भारतीय संस्कृति की गौरवगरिमा की कहानी कहती है, तथापि इसमें संकीर्णता एवं सांप्रदायिकता की बू नहीं है। दीपोत्सव के त्योहारपंचक को सब धर्मों का, सब जातियों का पंचायतन राष्ट्रीय त्योहार बना सकें, तो हम राष्ट्रीय एकता का नेतृत्व कर सकेंगे।

'वसंतपंचमी' यदि ज्ञान की आराधना का पर्व है, तो 'दीपावली' अर्थ की 'आराधना' का त्योहार; क्योंकि हमारे चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—में अर्थ का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। 'होली' यदि रंगों का त्योहार है, तो 'दीपावली' प्रकाश का। मथुरा-वृंदावन की होली मशहूर है। मैसूर और कलकत्ता की दुर्गापूजा विख्यात है, तो अमृतसर और लखनऊ की दीपावली। इस दिन दीपों, मोमबत्तियों तथा बल्बों की ऐसी सजावट होती है कि लगता है, सौ-सौ राका-रजनियाँ निष्प्रभ हो गई हैं, आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र जैसे अवनि की गोद में विराज रहे हैं। लगता है, चारों ओर ज्योति के निर्झर झर रहे हों, प्रकाश के फव्वारे छूट पड़े हों !

दीपावली के अवसर पर दीवारों पर 'लाभ-शुभ' लिखा जाता है, दरवाजों पर दीर्घायुष्य और कल्याण के प्रतीक 'स्वस्तिक' के चिह्न बनाए जाते हैं तथा अष्टदल कमल पर आसीन धर्म, संपत्ति और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी की पूजा की जाती है। लक्ष्मी-पूजा के साथ हम अपनी राष्ट्रलक्ष्मी का आवाहन करते हैं, ताकि हमारा राष्ट्र श्री-संपत्ति में विश्व के किसी राष्ट्र से कम न रहे। किंतु, आज हमारे राष्ट्र के अर्थतंत्र का प्रमुख कर्णधार हमारा व्यापारी-वर्ग है, जो अनुचित तरीके से धन कमाता है और उसे राष्ट्रहित में लगाने के बजाए स्वार्थलिप्सा की तिजोरी में, बलि की कैद में पड़ी लक्ष्मी की तरह बंद कर छोड़ता है। छिपा हुआ यह समस्त धन समाज के लिए वैसा ही हो जाता है, जैसा हाथ या पाँव में बहता हुआ रक्त रुक जाए। शरीर में कहीं रुका हुआ रक्त जिस प्रकार बुढ़ापा लाता है, पक्षाघातग्रस्त करता है, उसी प्रकार इस भाँति अवितरित धन भी राष्ट्र में वार्धक्य ला रहा है, लकवा पैदा कर रहा है। हमें इस दिन ध्यान रखना चाहिए कि 'लक्ष्मी' केवल एक वर्ग की वशंगता न हो जाए, दासी न बन जाए, वरन वह राष्ट्र के सभी लोगों की हो सके।

हम 'दीपावली' का त्योहार बहुत सोच-समझकर मनाएँ। यह हमारे लिए एक महान ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पर्व है। एक ओर यह हमारे महान पूर्वपुरुषों की गौरवमयी विजयगाथाओं से संबद्ध है, तो दूसरी ओर समग्र संसार के लिए प्रकाश-कामना का प्रतीक है। हम मानवजाति को अंधकार से प्रकाश, असत् से सत् तथा मृत्यु से अमृत की ओर ले जाएँ—'तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सद्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय'— हमारी इसी मंगलकामना की स्मारिका है दीपावली। हम मानव-समाज को समृद्धि के शिखर पर ले जाएँ, हम सभी सुविधाओं के संभव द्वार खोलने में समर्थ हो सकें—इसकी साक्षी है दीपावली। दीपों का पर्व हमारे बाहर के अंधकार को भगाने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का ही नहीं, वरन् अंतस के अंधकार को भी दूर करने के संकल्प का दिवस है। 'एक दीप ऐसा भी बालो, अंधकार भागे अंतस का!' यह केवल एक राष्ट्र को मुक्त रखने की सौगंध-रजनी नहीं; वरन् समग्र संसार के राष्ट्रों को मुक्त रखने की मधुरात्रि है, सुखरात्रि है—

आज आओ मुक्ति के प्रज्वलित दीपक जलाएँ।
और मानव-दासता की श्रृंखलाएँ टूट जाएँ॥

सरस्वती-पूजा

[प्रारंभ, पर्याय, उत्सव, माहात्म्य]

माँ सरस्वती विद्या की सर्वमान्य देवी हैं, उस विद्या की, जो कामधेनु है, जो अखिल कामनाओं की पूर्ति करनेवाली है, जो अमृतत्व प्राप्त कराती है—'विद्या मृत मश्नुते' तथा जो मुक्ति प्रदान करती है—'सा विद्या या विमुक्तये'। वे साहित्य और संगीत की अधिष्ठात्री देवी हैं। साहित्य, जो हमारे मुरझाते हृदय को हरा-भरा कर देता है, जो हमारा अनुरंजन-मनोरंजन ही नहीं करता, वरन् हमारी चित्तवृत्तियों का परिष्कार करता है, जो हमें भौतिक आनंद ही नहीं, वरन् ब्रह्मानंद-सहोदर आनंद की उपलब्धि कराती है और जो टूटे हुए हृदय की महौषधि है, जो देवदूतों की भाषा है, जो आत्मा के ताप को शांत करता है तथा जिसका अनुगमन स्वयं परमात्मा करता है। जिस साहित्य और संगीत के बिना मानव पुच्छ-विषाणहीन पशुतुल्य है, उसी वरद साहित्य और संगीत की वरदायिनी वागीश्वरी का नाम है—सरस्वती। अतः, जो जितना बड़ा कवि, साहित्यकार, पंडित, ज्ञानी एवं वक्ता है, उसपर माता सरस्वती की अनुकंपा का मेह उतना ही बरसा है।

परमेश्वर की तीन महान शक्तियाँ हैं—महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती। शक्ति के लिए काली, धन के लिए लक्ष्मी तथा विद्या के लिए सरस्वती की समाराधना होती है।

'सरस्वती' का सरलार्थ है 'गतिमती'। वाग्देवी या सरस्वती आध्यात्मिक दृष्टि से निष्क्रिय ब्रह्म को सक्रियता प्रदान करनेवाली हैं। इन्हें आद्या, गिरा, श्री, ईश्वरी, भारती, ब्राह्मी, भाषा, महाश्वेता, वाक्, वाणी, वागीशा, विधात्री, वागीश्वरी, वीणापाणि, शारदा, पुस्तकधारिणी, जगद्व्यापिनी, हरिहरदयिता, ब्रह्मविचारसारपरमा आदि नामों से पुकारा गया है। इससे ज्ञात होता है कि इनकी महिमा अपरंपार एवं अकथनीय है।

इनका स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है—

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

(मैं, शुक्ल वर्णवाली, ब्रह्मविद्या के अंतिम सार, आद्याशक्ति, जगत में व्याप्त, वीणा और पुस्तक धारण करनेवाली, अभय देनेवाली, जड़ता-रूपी अंधकार का नाश करनेवाली, हाथ में स्फटिक की माला धारण करनेवाली, .ासन पर बैठी हुई, बुद्धि देनेवाली उस परमेश्वरी शारदा की वंदना करता हूँ।)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा माम्पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

(जो कुंद, चंद्रमा, हिम और मुक्ताहार जैसी उज्ज्वल वर्ण की हैं; जो उजले वस्त्रों से आवृत हैं; सुंदर वीणा से जिनका हाथ अलंकृत है; जो श्वेत कमल पर बैठी हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता सर्वदा जिनकी स्तुति करते रहते हैं; जो सभी प्रकार की जड़ताओं का विनाश करनेवाली हैं—वही भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें।)

इस श्लोक में भगवती के बड़े ही दिव्य रूप की झाँकी प्रस्तुत की गई है। प्रायः इसी स्वरूप में इनकी मूर्तियाँ बनाई जाती हैं, चित्र निर्मित होते हैं। सरस्वती का उज्ज्वल वर्ण ज्योतिर्मय ब्रह्मा का प्रतीक है। इनकी चार भुजाएँ हैं, ये चारों दिशाओं की प्रतीक हैं, जो सर्वव्यापित्व का लक्षण है। इनके एक हाथ में पुस्तक है। स्थूल रूप से यह ज्ञान-प्राप्ति का प्रधान साधन है और आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वज्ञानमय वेद का स्वरूप। दूसरे हाथ में माला है। स्थूल रूप से यह एकाग्रता का चिह्न है। किंतु, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह विष्णु की वैजयंती और काली की मुंडमाला तथा विश्वजननी मातृका की वर्णशक्ति की माला है। ये अपने दो हाथों से वीणा धारण किए हुई हैं। वीणा स्थूल रूप से जीवन-संगीत का प्रतीत है। हमारी जितनी क्रियाएँ और विचार हैं, उनका सर्जनात्मक नादरूप पुंजीभूत होकर महाविश्वसंगीत में परिणत हो जाता है।

सरस्वती कमल के आसन पर ज्ञानमुद्रा में बैठती हैं। कमल सृष्टि का प्रतीक है। इससे यही अभीष्ट है कि आद्याशक्ति सारी सृष्टि में व्याप्त हैं। कमल से निर्लिप्तता का भाव भी व्यक्त होता है। सृष्टि में रहकर भी सृष्टि के प्रभाव से मुक्त रहने की ओर सरोजासना का संकेतार्थ है। सरस्वती का वाहन राजहंस है। इनका निष्कलंक श्वेत वर्ण और नीरक्षीरविवेक से संपन्न वाहन हंस इनके आराधक के निष्कलंक चरित्र तथा गुणदोषविवेचन-सामर्थ्य के प्रतीक हैं। सरस्वती का उज्ज्वल वर्ण ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रतीक है। ज्ञान की देवी होने के ही कारण इनका और इनके वाहन का वर्ण उज्ज्वल है।

सरस्वती-पूजन को केवल पोंगापंथीपन या रूढ़िवादिता की निशानी मानना उचित नहीं। संसार का शायद ही ऐसा कोई देश है, जिसमें किसी-न-किसी रूप में विद्यादेवी की उपासना न होती हो। वाणी के आलोक से अज्ञान की कुहेलिका दूर करने के लिए इनकी पूजा-पर्युपासना तो होनी ही चाहिए।

ऐसे मंगल-अवसर पर ध्वनिविस्तारक यंत्रों से भद्दे गीतों का प्रचलन बिलकुल रोक देना चाहिए; क्योंकि माता अंतस की सात्त्विक मूक श्रद्धा से रीझती हैं, भावों के तपःपूत पुष्प से प्रसन्न होती हैं, कर्णकटु कोलाहल, अर्थापव्यय और बहुवर्णी विद्युत्-प्रदीपों के प्रदर्शन से नहीं। छात्रों के बीच यह भी गलतफहमी है कि इन दो दिनों में पुस्तक छूने से विद्यादेवी रुष्ट हो जाती हैं। जो सरस्वती किसी क्षम अपने हाथ से पुस्तक अलग नहीं करतीं, वही भला पुस्तक-स्पर्श से रूठ जाएँगी, यह संभव नहीं। इन्हें खुश करने के लिए ऐसे समय में तो डटकर पढ़ना चाहिए। यदि इनकी कृपा हुई, तो हम कालिदास की तरह विश्ववंद्य हो सकते हैं। यदि ये मति फेर दें, तो हम कैकेयी की भाँति 'अजस पिटारी' बन जाएँ। गोस्वामी तुलसीदास के अक्षय कीर्तिभाजन होने तथा उनके 'रामचरितमानस' की सफलता का यही रहस्य था कि उन्होंने वाणी-वंदना से ही अपने महाकाव्य का शुभारंभ किया, वाग्देवी के प्रारंभिक अमृताक्षर 'व' से ही अपने रामचरित के मणि-माणिक्य को संपुटित किया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रक्षाबंधन

[प्रारंभ, महत्त्व, पौराणिक कथाएँ, उपसंहार]

श्रावणी की रसवंती झड़ी में जिस प्रकार कृषकों के नयनों में उल्लास छाया रहता है, उसी प्रकार श्रावणी पूर्णिमा के दिन उन बहनों के आनंद का कूल-किनारा नहीं दीखता, जिनके भाई रक्षासूत्र बँधवाने के लिए उपस्थित हों। किंतु,सूखे के मौसम में जिस तरह कृषकों के भोले चेहरे पर उदासी की पूरी वर्णमाला अंकित हो जाती है, उसी तरह उन बहनों की मायूसी को कौन माप सकता है, जिनके भाई नहीं हों या उस दिन कहीं चले गए हों।

वस्तुतः, रक्षाबंधन भाई-बहन के परम पवित्र प्रेम का स्मारक पर्व है। वे दो नाजुक धागे त्याग और प्रेम के प्रतीक हैं। इन रेशमी धागों में इतनी शक्ति है, जितनी लोहे की जंजीरों में भी नहीं। लौहशृंखला को झटक देना आसान है, किंतु जो भी बहन के इस प्रेमबंधन में बँध गया, उसके लिए इसे तोड़कर निकल जाना असंभव है। भाई-बहन के इस दिव्य प्रेम की अनेकानेक विस्मयकारिणी कहानियाँ सुनी जाती हैं। लुटेरे-हत्यारे तक ने अपने गिरोह के सरदार के आदेश की अवज्ञा कर उस रमणी की रक्षा की, जिसने कभी उसकी कलाई में राखी बाँधी थी। इस प्रकार, न मालूम कितने भाइयों ने अपनी बहनों की राखियों की लाज रखने के लिए अपने को तलवार की धार से भिड़ा दिया, विपत्तियों के व्यूह का भेदन बड़ी ही वीरता के साथ किया। इसका बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन स्वर्गीय वृंदावनलाल वर्मा ने अपने 'राखी की लाज' नामक नाटक में किया है।

पुराणों में रक्षाबंधन की कथा मिलती है। एक बार युधिष्ठिर ने सांसारिक संकटों से मुक्ति का उपाय श्रीकृष्ण से पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा कि वही उपाय बताता हूँ, जो उपाय इंद्र की रक्षा के लिए इंद्राणी ने किया था। प्राचीन काल में एक बार बड़ा भीषण देवासुर-संग्राम छिड़ा। देवता पराजित तथा असुर विजयी हो रहे थे। स्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि देवेंद्र भी पराजित हो गए। वे अब अपनी राजधानी छोड़कर भागने को उद्यत हो गए। इंद्राणी ने श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन विधिपूर्वक तैयार किए रक्षाकवच को इंद्र के दाहिने हाथ में बाँधा। इसका बड़ा ही अद्भुत परिणाम हुआ। देवेंद्र का मस्तक विजयतिलक से विभूषित हुआ और दानवेंद्र राजा बलि बाँध लिए गए। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि उपर्युक्त पद्धति से जो मनुष्य रक्षाबंधन पाते हैं, उनके पास सालभर न तो रोग आता है और न कोई अशुभ व्यापता है—

सर्वरोगोपशमनं सर्वाशुभविनाशनम्।
सकृत्कृतेनाब्दमेकं येन रक्षाकृतो भवेत्॥

इस रक्षाबंधन के दिन ब्राह्मणों का समुदाय रंग-बिरंगे रक्षासूत्र यजमानों के हाथों में बाँधने निकल जाता है। अनेक छोटे-छोटे बच्चे भी गाँवों-नगरों में अनजाने अपरिचित लोगों को रोककर उनके हाथों में रक्षासूत्र बाँधते हैं।

रक्षासूत्र बाँधते हुए ये पंडित श्लोक पढ़ते हैं—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥

इस प्रकार, यह त्योहार भाई-बहन के दिव्य प्रेम एवं पुरोहित-यजमान के सद्भाव की याद दिलाने के लिए उपस्थित होता है। रक्षाकवच द्वारा राष्ट्र की भगिनीशक्ति यदि एक ओर अपने भ्राताओं पर शुभकामनाओं एवं आशीर्वादों की अमृतवर्षा करती है, तो दूसरी ओर सबल भ्रातृगण अपने राष्ट्र के अबला-समुदाय के अभयदान के लिए

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कृतसंकल्प हो जाते हैं। इसी दिन ब्राह्मणवर्ग, अर्थात ज्ञान का आराधकवर्ग अवशिष्ट जनता पर अपनी मंगलकामनाओं का मंदाकिनी-वारि छिड़कता है। आएँ, हम सभी कुंकुम, मिष्टान्न एवं राखियों में सजी थालियाँ लिए बहनों तथा आशीर्वादों की झोली लिए पूज्य गुरुओं के समक्ष अपने कर्म के प्रतीक दाहिने हाथ को राखियों से सुसज्जित होने के लिए बढ़ा दें—हमारी कर्मशक्ति इतनी अनंतगुणित हो जाएगी कि हमारी वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय विजय निश्चित है।

स्वतंत्रता-दिवस

[प्रारंभ, इतिहास, आयोजन, उपसंहार]

धन्य आज का मुक्ति-दिवस, गाओ जनमंगल,
भारतलक्ष्मी से शोभित फिर भारत-शतदल !
तुमुल जयध्वनि करो, महात्मा गाँधी की जय,
नवभारत के सुज्ञ सारथी वह निःसंशय।
राष्ट्रनायकों का हे, पुनः करो अभिवादन,
जीर्ण जाति में भरा जिन्होंने नूतन जीवन !

—स्वतंत्रता-दिवस : सुमित्रानंदन पंत

15 अगस्त, 1947 का दिन भारतीय इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है, जहाँ से उन्मुक्त भारत का अभिनव अध्याय खुलता है। इसी 15 अगस्त को विदेशी शासन के काले बादल छँटे थे, विदेशियों के अत्याचारों का करकापात बंद हुआ था, उनके शोषण का शोणितस्राव रुका था। उस दिन की उषा बंदिनी नहीं थी, उस दिन की सुहावनी किरणों पर दासता की कोई परछाईं नहीं थी। उस दिन कहीं भी गुलामी की वह दुर्गंध नहीं थी। उस दिन का सिंदूरी सबेरा पक्षियों की चहचहाहट और देशवासियों की खिलखिलाहट से अनुगुंजित हो रहा था। जनजीवन ने मुद्दत के बाद नई अँगड़ाई ली थी। एक नई ताजगी का ज्वार सर्वत्र लहरा रहा था।

1292 ई० में ही तराइन के मैदान में पृथ्वीराज की पराजय के साथ-साथ हमारे स्वातंत्र्य-सूर्य को ग्रहण लग गया था, किंतु 1757 ई० के पलासी-युद्ध में तो उसे अँगरेज-असुर ने पूरी तरह ग्रस लिया। परिणामतः, भारतमाता पूरी बंदिनी हो गई और हम उनकी संतान पूर्णतः लौह-शृंखलित। हम जानते हैं कि जब स्वतंत्रता चली जाती है, तब जीवन निस्तेज होता है, उसमें कोई उत्साह नहीं रहता। स्वतंत्रता यदि स्वर्ग है, तो परतंत्रता साक्षात नरक। परतंत्रता संसार का सबसे घृणित पाप है। सुप्रसिद्ध चिंतक सुकरात ने कभी कहा था कि परतंत्रता अत्याचार और डकैती की अमानुषी प्रणाली है। आर० जी० इगरसोल ने कहा था कि नेत्रों के लिए जैसे प्रकाश है, फेफड़ों के लिए जैसे वायु है, हृदय के लिए जैसे प्यार है, उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा के लिए स्वतंत्रता है। इस खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए हमारे अनगिनत नौजवान फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते झूल गए, कितनी माताओं ने अपने नौनिहालों को ममता की गोद से उछालकर भाले की नोकों पर टँग जाने के लिए हृदय पर पत्थर रख लिया, कितनी बहनों ने अपने माथे में सिंदूर के बदले राख का टीका लगाना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वीकार किया। आजादी का इतिहास लिखने में काली स्याही कभी सक्षम नहीं हो पाती, उसे लिखने के लिए खून की धारा बहानी पड़ती है।

वीर भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, खुदीराम, सुभाषचंद्र बोस जैसे वीरबाँकुरों की शहादत पर, गोखले-तिलक-गाँधी की तपस्या पर, वीर सुभाष और सावरकर के दुर्दांत साहस पर, जलियाँवाला बाग की रक्तसिंचित भूमि की बयार पर स्वतंत्रता का सूरज दमका था—इसी 15 अगस्त, 1947 के दिन। अँगरेज-शासकों ने अपना बोरिया-बिस्तर गोल किया था और भागे थे सात समुंदर पार।

15 अगस्त, 1947 को सारे भारतवर्ष में यह स्वतंत्रता-दिवस किस धूमधाम, किस शान-शौकत से मनाया गया था—इसे वे ही जानते हैं, जिन्होंने अपनी आँखों देखा होगा। लगता था, हमारी धरती के भाग्य फिर से जाग उठे हैं। क्या गाँव, क्या नगर, क्या खेत, क्या पहाड़, क्या रेगिस्तान—सर्वत्र आनंद का पारावार लहरा उठा था। गली-गली में उमंगों के कुंकुम उड़ रहे थे—खुशियों के हिंडोले पर जनमत हिल्लोलित हो रहा था। बहुत दिनों की बीमारी से मुक्त व्यक्ति को जिस प्रकार भोजन अच्छा लगता है, बहुत दिनों तक अँधेरे बंद कमरे में कैद रहने के बाद खुली हवा जितनी मनभावनी लगती है, वही स्थिति उस दिन भारत में बच्चे-बच्चे की थी। हमारे मन-प्राणों में एक रागिनी बज रही थी—

नहीं चाहते हम धन-वैभव, नहीं चाहते हम अधिकार।
बस स्वतंत्र रहने दो हमको और स्वतंत्र कहे संसार॥

—मैथिलीशरण गुप्त

तब से हर वर्ष यह 15 अगस्त हमारे समक्ष एक राष्ट्रीय पर्व की भाँति आता है, खुशियों की बहार लुटा जाता है। इस दिन देशभर में जन-अवकाश (Public holiday) रहता है। कचहरी, कार्यालय, न्यायालय, राजकीय भवन, विद्यालय-महाविद्यालय—सब पर तिरंगा झंडा फहराया जाता है; 'जन-गण-मन-अधिनायक जय हे भारत भाग्यविधाता'—यह राष्ट्रगीत गाया जाता है, स्वतंत्रता के महत्त्व को समझानेवाले भाषण दिए जाते हैं। मिठाइयाँ खिलाई और खाई जाती हैं, नाच-गाने, कविगोष्ठी, मुशायरे आदि के विशेष कार्यक्रम रहते हैं। रात में घर-बाहर दीपमालिकाओं से सजाया जाता है। नगर के मुख्य द्वारों पर विशेष सजावट रहती है। लगता है, एक बार पुनः समय से पूर्व ही दीपावली आ गई हो। होटलों में गजब बहार होती है। पत्रिकाएँ तो रंग-बिरंगे चित्रों, तरह-तरह की कहानियों और निबंधों से सज जाती हैं।

15 अगस्त आनंद और त्याग का मंगलपर्व तो है ही, साथ ही हमारी वेदना और कचोट, हमारे आत्मदर्शन एवं आत्मपरीक्षण का स्मारक-दिवस भी है। यदि हम अपने इस कर्दममय वर्तमान से सचेत नहीं हुए, तो हमारी आजादी की नैया इसी में फँस जाएगी, जिससे उबर पाना बहुत ही मुश्किल है। यदि हमने समय रहते समस्याओं की अंध घाटियों को पार नहीं किया, तो हमारी स्वतंत्रता का सूरज डूब जाएगा और तब पता नहीं, कितनी लंबी रातों के बाद पुनः नया सबेरा दमकेगा।

हमें स्मरण रखना चाहिए कि शताब्दियों की साधना का यह पौधा अक्षयवट तभी बन सकता है, जब हम अपने स्वार्थों के कुत्सित घेरे मिटा दें, राष्ट्रप्रेम का दिव्य उत्स हमारे रोम-रोम से फूटे, इसके संरक्षण और संवर्द्धन के लिए हम त्याग और तपस्या के अग्निपथ की यात्रा निरंतर जारी रखें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गणतंत्र-दिवस

[भूमिका, इतिहास, महत्त्व, राष्ट्रीय पर्व, रक्षा, उपसंहार]

महाप्रलय की प्रतिध्वनियों में भी जो जनता सोती है,
यह छब्बीस जनवरी आज उनको दे रही चुनौती है।
नहीं जगे तो नहीं जगे ये किस्मत पर रोनेवाले,
नहीं जगे तो नहीं जगे घर फूँक हवन करनेवाले।
जिन बेशर्मों पर शर्मिंदा शर्म स्वयं भी होती है,
यह छब्बीस जनवरी आज उनको दे रही चुनौती है।

—डॉ॰ शिवमंगल सिंह 'सुमन'

26 जनवरी, 1950 जिसे हम गणतंत्र-दिवस के नाम से जानते हैं, भारतीय इतिहास का सर्वोज्ज्वल पृष्ठ है। आज के दिन शताब्दियों की दासता की श्रृंखला पूरी तरह टूटी थी और पराधीनता की पिशाचिन पूतना का वध हुआ था। आज के दिन ही हमारा देश संपूर्णप्रभुत्वसंपन्न गणतंत्र घोषित हुआ था। आज के ही दिन हमारा अपना संविधान लागू हुआ था। आज के ही दिन राजतंत्र की शीराजा बिखरा था और प्रजातंत्र का पौधा लहराया था। आज के ही दिन मानव-मानव के मध्य की दुर्भेद्य दीवार ध्वस्त हुई थी और समान अधिकार पाकर, सीना तानकर हम कह उठे थे—

मेरा देश, देश का मैं, देश मेरा जीवन-प्राण
मेरा सम्मान मेरे देश की बड़ाई में। **—गिरधर शर्मा**

गणतंत्र-दिवस क्या आता है, स्मृतियों का सैलाब उमड़ पड़ता है, हमारे स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास स्मृति के वातायन से झाँकने लगता है। कभी यह 26 जनवरी 'प्रतिज्ञा-दिवस' के रूप में मनाई जाती थी। 1929 ई॰ को लाहौर के रावी-तट पर कांग्रेस का एक अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन में पं॰ जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में देशभक्तों ने सौगंध खाई थी कि जबतक अपने देश को विदेशी शासन के जुए से मुक्त कर 'पूर्ण स्वराज्य' नहीं लेंगे, तबतक हम चैन की साँस नहीं लेंगे। महात्मा गाँधी, सुभाषचंद्र बोस, राजेंद्रबाबू जैसे अनेक बलिदानी नेता तथा हजारों स्वाधीनता के दीवाने सर से कफन बाँधे, जान हथेली पर लिए अँगरेजों से जूझते रहे और अंत में मंगलप्रभात 15 अगस्त, 1947 को आया, जब अँगरेजों ने अपना बोरिया-बिस्तर गोल किया और भागे सात समुंदर पार। 15 अगस्त को हमें औपनिवेशिक स्वराज्य मिला था, किंतु 26 जनवरी, 1950 को पूरी स्वतंत्रता मिली, रावी-तट का प्रण अक्षरशः पूरा हुआ। तब से भारतवर्ष एक धर्मनिरपेक्ष लोककल्याणकारी राज्य उद्घोषित हुआ। अब प्रत्येक भारतवासी को समान अवसर प्राप्त है—यहाँ धर्म, जाति अथवा लिंग के आधार पर अब कोई भेदभाव नहीं बरता जाता।

अतः, 26 जनवरी हमारा सबसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पर्व है। यह हमारी स्वतंत्रता की अविस्मरणीय स्वर्णिम वर्षगाँठ है। यह हमारी प्रतिज्ञाओं और तपस्याओं का स्मृति-दिवस है। यह हमारे महान अमर शहीदों का तर्पण-त्योहार है। यह किसी जाति, वर्ग, वर्ण या संप्रदाय का पर्व नहीं है। होली, दीवाली, नागपंचमी, रक्षाबंधन, दशहरा यदि हिंदुओं के प्रिय पर्व हैं, तो ईद, बकरीद, मुहर्रम मुसलमानों के। क्रिसमस, ईस्टर यदि ईसाइयों के पर्व हैं, तो सरहुल, सोहराय आदिवासियों के। रथयात्रा यदि उत्कलवासियों का महत्त्वपूर्ण पर्व है, तो ओणम् केरलवासियों का। किंतु, गणतंत्र-दिवस ही एक पर्व है, जो हिमालय के हिममंडित शिखरों से मातृचरण पखारनेवाली कन्याकुमारी की उत्कट लहरों तक, एलिफेंटा की गुफाओं से असम की दुर्गम पहाड़ियों तक बिना किसी भेदभाव के पूरे धूमधाम से मनाया जाता है। यही वह पर्व है, जिसमें अखिल भारत की अंतरात्मा का सितार आनंदमयी रागिनी में बज उठता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस दिन दिल्ली ही नहीं, वरन् देश के नगर-नगर, गाँव-गाँव में यह महोत्सव मनाया जाता है। इस देश का शायद ही कोई विद्यालय या महाविद्यालय हो, जहाँ भरदिन मनोमोहक कार्यक्रम न चलते हों। इस दिन आबालवृद्ध नर-नारी सभी का मन उमंगों-उछाहों के झूलों पर झूलता रहता है। सूरज की सोना बरसानेवाली पहली किरण से चाँद की सुधा सरसानेवाली अंतिम रश्मि तक खाना-पीना, नाचना-गाना, उछलना-कूदना आदि चलते रहते हैं। कहीं सिनेमा है, तो कहीं नाटक, कहीं कव्वाली है तो कहीं कॉनसर्ट, कहीं कवि-सम्मेलन है तो कहीं हास्य-गोष्ठी।

इस दिन ही मालूम पड़ता है कि देश में तरुणाई ने अँगड़ाई ली है, उसकी मस्ती की मदिरा छलक पड़ी है। सारा राष्ट्र दीपों की रत्नमालाएँ धारण कर जगमग हो उठता है।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि 26 जनवरी गणतंत्र-दिवस है। गणतंत्र, अर्थात प्रजातंत्र का अर्थ है जनता के लिए, जनता द्वारा, जनता का शासन (Democracy means government of the people, by the people and for the people)—जैसा कि अब्राहम लिंकन ने कहा था। महात्मा गाँधी ने गणतंत्र का अर्थ बताया है, जिसमें निम्न-से-निम्न और उच्च-से-उच्च व्यक्ति को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलता है। हम सभी भारतवासी अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचें कि राष्ट्रपिता गाँधी की धारणा के निकष पर हमारा गणतंत्र खरा उतर रहा है या नहीं।

स्वतंत्रता हमारा केवल जन्मसिद्ध नहीं, वरन् कर्मसिद्ध अधिकार भी है। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने ठीक ही कहा था कि स्वतंत्रता के विजयनाद एक दिन में नहीं प्राप्त किए जाते, स्वतंत्रता की देवी बड़ी कठिनाई से संतुष्ट और तृप्त होती है। वह भक्तों की कठोर एवं दीर्घव्यापी तपस्या चाहती है और परीक्षा लेती है। उसका मूल्य निरंतर सावधानता है। उसकी प्राप्ति से भी कठिन है उसका संरक्षण। उसके संरक्षण के लिए हर क्षण तलवार की धार पर चलना पड़ता है। जिस राष्ट्र का बच्चा-बच्चा सचेष्ट नहीं रहता, उसकी आजादी क्षण में छिन जाती है।

आँधियाँ नहीं जिसमें उमंग भरती हैं,
छातियाँ जहाँ संगीनों से डरती हैं,
शोणित के बदले जहाँ अश्रु बहता है,
वह देश कभी स्वाधीन नहीं रहता है।

—दिनकर

अतः, यह दिन प्रेरणा और प्रतिज्ञा का दिवस है। हम मौज और मस्ती, रँगरेलियों और आनंदकेलियों में भी याद रखें कि जिस स्वतंत्रता को हमने रक्त की होली खेलकर अर्जित किया है, उसकी रक्षा हम फाँसी के तख्त पर चढ़कर तथा आग की दरिया तैरकर भी करेंगे। हमारा प्रजातंत्र केवल शाब्दिक नहीं, वास्तविक है। जबतक हम अपने देश से दारिद्र्य, अशिक्षा, अनैतिकता तथा आत्महीनता की कुज्झटिकाओं को दूर नहीं कर सकेंगे, तबतक जनतंत्र के अरुणोदय का सुंदर आलोक नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

दुर्गापूजा

[भूमिका, नाम, इतिहास, आयोजन, देश-विदेश, उपसंहार]

यदि हम विद्या-बुद्धि के लिए सरस्वती की समर्चना करते हैं, तो शक्ति-साहस के लिए दुर्गा की। हमें शास्त्रबल ही नहीं, शस्त्रबल भी चाहिए। किसी राष्ट्र की सर्वतोमुखी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रगति के लिए विद्यादायिनी और शक्तिदायिनी—दोनों की आराधना आवश्यक है। यही कारण है कि हम सदा से देवी सरस्वती और माँ दुर्गा की उपासना करते आ रहे हैं। इन शक्तिशालिनी माँ के निकट किसी दुष्ट दानव का पहुँचना बड़ा ही दुःसाध्य है (दुर्गा—दुःखेन गम्यते प्राप्यते वा)। ये सभी देवों के लिए दुर्जेय हैं तथा दुर्गतिनाशिनी हैं—इसलिए दुर्गा कहलाईं।

दुर्गापूजा विजयादशमी के नाम से भी विख्यात है। इसके कई कारण बताए गए हैं। इस दशमी तिथि को विजया, अर्थात महाशक्ति का विधिपूर्वक आराधन-अनुष्ठान किया जाता है—

अजितायै नमस्तुभ्यं विजयायै नमो नमः।

—शिवपुराण

यह भी कहा जाता है कि इसी तिथि को भगवान श्रीराम ने दुर्गा की पूजा कर आततायी रावण पर विजय पाई थी, इसलिए यह तिथि विजयादशमी के नाम से विख्यात हुई। यह भी कहा जाता है कि इस दशमी को यदि श्रद्धापूर्वक देवी की समाराधना की जाए, तो जीवन में जय अवश्यंभावी है। यह भी कहा जाता है कि महाविद्याओं एवं इंद्रियों की संख्या दस ही है। माता की आराधना से इन दसों महाविद्याओं एवं इंद्रियों पर अधिकार—विजय निश्चित ही समझिए। इसे 'दशहरा' के नाम से भी हम जानते हैं; क्योंकि इसी दिन दशमुख (रावण) का गर्वहरण किया गया। 'दशहरा' की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—'हरते दश पापानि तस्मात् दशहरा स्मृता'—अर्थात दस पापों को हरने के कारण दशहरा कहलाया। अनवधानता, असमर्थता, आत्मवंचकता, अकर्मण्यता, दीनता, भीरुता, परमुखापेक्षिता, शिथिलता, संकीर्णता तथा स्वार्थपरता—ये ही दस पाप हैं—'दशहरा' में ये सभी समाप्त हो जाते हैं।

दुर्गा दुर्गतिनाशिनी हैं एवं दारिद्र्यदुःखभयहारिणी हैं। ये साधारण देवी नहीं, वरन् विश्वेश्वरी हैं। इसीलिए इनके अवतरण-आराधन के बारे में अनेक कथाएँ कही जाती हैं।

इस समय कारे-कजरारे बादल शरद के मधुमय आगमन का संदेश देकर लौट जाते हैं और कीच-कर्दम के स्थान पर सर्वत्र स्वच्छता दृष्टिगत होने लगती है। इस अवसर पर माँ दुर्गा की रंग-बिरंगी भव्य मूर्तियाँ बनाई जाती हैं, किंतु उनका सिंहवाहिनी महिषमर्दिनी रूप ही अधिक जनप्रिय है। महिषासुर की छाती में बरछा धँसाए हुए उनका एक पैर महिषासुर के कंधे पर रहता है और दूसरा पैर सिंह की पीठ पर। उनके मस्तक पर रणक्रीड़ा में बिखरे केश हैं। उनका मुख इस रण में भी त्रासक नहीं, प्रत्युत निर्भय पूर्णेंदुसदृश है। उनके शरीर की आभा कुंदपुष्प-सी अवदात है। वे इस रण में भी अक्लांतयौवना तथा सर्वाभूषणभूषिता रहती हैं। उनके दस हाथ हैं। दाएँ पाँच हाथों में त्रिशूल, खड्ग, चक्र, बाण तथा शक्ति (साँग) हैं तथा बाएँ पाँच हाथों में गदा, धनुष, पाश, अंकुश (गजबाँक) तथा फरसा हैं। उनके दाएँ भाग में लक्ष्मी और बाएँ भाग में सरस्वती विराजती हैं। लक्ष्मी के दाएँ भाग में गणेश तथा सरस्वती के बाएँ भाग में कार्तिकेय विराजते हैं। दशमी के दिन तो समारोह अपनी पराकाष्ठा पर रहता है और प्रायः सारे भारतवर्ष के आबालवृद्ध नए वस्त्रों में सुसज्जित होकर माँ दुर्गा के दर्शन करते हैं, प्रसाद चढ़ाते हैं, जयजयकार करते हैं तथा मिष्टान्न से परितृप्त होते हैं। रात्रि में गाने-बजाने के साथ जुलूस निकाला जाता है, जिसमें भक्तजन माता को सुसज्जित रथासन पर चढ़ाकर घुमाते हैं और बाद में किसी सरोवर या नदी में प्रतिमा-विसर्जन करते हैं।

माता दुर्गा का पूजन बड़ा ही गूढ़ रहस्य रखता है। हम यदि मेवा-मिष्टान्न, भूषण-परिधान से ही केवल तुष्ट-तृप्त हो जाएँ, तो इसके मर्म को नहीं समझ सकेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वस्तुतः, दुर्गा की प्रतिमा संपूर्ण राष्ट्र की प्रतीक है। व्यक्ति या व्यक्तियों का सम्मिलित रूप राष्ट्र शारीरिक बल, संपत्तिबल और ज्ञानबल से सिंह के समान है। उस व्यक्ति और राष्ट्र पर शक्तिस्वरूपिणी दुर्गा प्रकट होती हैं। राष्ट्र को पशुबल (कार्तिकेय), संपत्तिबल (लक्ष्मी) और ज्ञानबल (सरस्वती) अवश्य चाहिए, किंतु बुद्धिविरहित बल, संपत्ति और ज्ञान निरर्थक ही नहीं, वरन् संहारक है। इसीलिए इनके साथ बुद्धि के महाकाय गणेश रहते हैं, जिनकी विशाल बुद्धि के भार से विघ्नों के चूहे दबे रहते हैं। सभी दिशाओं में फैली दुर्गा की दसों भुजाओं के अस्त्र-शस्त्र अमित राष्ट्रशक्ति की ओर संकेत करते हैं। कोई व्यक्ति और राष्ट्र ऐसा नहीं, जिसका विरोधी न हो। अतः, दुर्गा की उपासना और कुछ नहीं, वरन् अपराजेय महिमामयी भारतशक्ति की ही उपासना है।

मन के धरातल पर एक बात और स्मरण रखनी चाहिए कि मधुकैटभ, महिषासुर और शुंभ-निशुंभ महामोह या घोर अविद्या के ही प्रतीक हैं। यदि हम महामोह या घोर अविद्या का नाश चाहते हैं, तो हमें माता दुर्गा का अर्चन-आराधन करना ही होगा। शत्रुओं से पराजित राजा सुरथ तथा स्त्री-पुत्र से निष्कासित समाधि वैश्य ने इन्हीं देवी की आराधना कर भोग और मोक्ष की प्राप्ति की थी। दूसरे शब्दों में, सुरथ-रूपी कर्म और एकाग्रता-रूपी समाधि के समक्ष विघ्न आने पर भी माँ दुर्गा ही सहायिका सिद्ध होती हैं। यदि हम भी उनकी उपसना करें, तो केवल महारोग, महोत्पात, महासंकट, महादुःख और महाशोक से ही मुक्त नहीं हों, वरन् जीवन्मुक्त हो जा सकते हैं।

ईद

[प्रारंभ, प्रथा, विशेषता, उपसंहार]

ईद मुसलमानों के लिए महान आनंदपर्व है। हिंदुओं के लिए जिस प्रकार होली मौज और मस्ती की त्योहार है, उसी प्रकार मुसलमानों के लिए ईद। ईद शब्द का अर्थ होता है—सामयिक स्थिति-परिवर्तन। मुसलमानों का महीना हमारे चैत-वैशाख या अँगरेजों की जनवरी-फरवरी से भिन्न होता है। वे चांद्रमास मानते हैं। उनके बारह महीनों में एक महीने का नाम है 'रमजान'। 'रमजान' महीना बड़ा ही पवित्र माना गया है। इस महीने में मुसलमान रोजा रखते हैं, अर्थात दिनभर का उपवास करते हैं। इस्लाम की चार बुनियादी पाबंदियाँ (फराएज) हैं—1. नमाज, अर्थात प्रार्थना, 2. रोजा, अर्थात दिनभर उपवास, 3. जकात (जक्वात), अर्थात अपनी आय का अनिवार्य रूप में चालीसवाँ भाग कस्दान तथा 4. हज, अर्थात इस्लामधर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद की जन्मभूमि मक्का की यात्रा। जब रमजान महीने में तीस दिनों का उपवास पूरा कर लिया जाता है, तब उसके अगले महीने 'शव्वाल' की पहली तारीख को 'ईद' का त्योहार मनाया जाता है। इसे 'ईद-उल-फित्र' भी कहते हैं।

ईद के दिन दोपहर के पहले लोग शहर के बाहर ईदगाहों में जाते हैं। जहाँ खुली जगह, अर्थात जनसामान्य की प्रार्थना के उपयुक्त ईदगाह नहीं है, वहाँ मस्ज़िदों में भी नमाज पढ़ने की प्रथा है। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या जवान—सभी रंग-बिरंगे नए कपड़ों में वहाँ उत्साह के साथ पहुँचते हैं। वहाँ सभी दो रिकअत, यानी चार सिजदे में नमाज अदा करते हैं। नमाज के बाद इमाम—अर्थात धर्मोपदेशक—खुतबा (उपदेश) पढ़ता है, जिसमें वह मुसलमानों को 'फित्रा' (स्वेच्छा दान या खैरात) की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महत्ता समझाता है। खुतबा, अर्थात प्रवचंन समाप्त होने के बाद ईदगाह में एकत्र लोग आपस में गले मिलते हैं, एक-दूसरे पर अपना आंतरिक प्रेम प्रकट करते हैं। लगता है, मनुष्य-मनुष्य के बीच वैमनस्य की कोई दीवार, फूट की कोई खाई है ही नहीं। यदि किसी-किसी के बीच अदावत हो भी, पुरानी दुश्मनी हो भी, तो ईद की इस घड़ी में सभी शत्रुताएँ खत्म हो जाती हैं। लोगों के बीच नए रिश्ते, एक अभिनव प्रेम-संबंध का आरंभ हो जाता है।

इस दिन लोग अपने मित्रों, संबंधियों, परिचितों एवं पड़ोसियों को दावत देते हैं। जो जिससे मिलता है, बस 'ईद मुबारक', 'ईद मुबारक' कहकर एक-दूसरे को मुबारकबाद देता है। घर आए मेहमान का मुँह मीठा कराया जाता है—सेवई तथा मिठाइयों से। फिर अंगों पर और वस्त्रों पर इत्र लगाया जाता है। इत्र लगाना मुसलमानों के लिए 'सुन्नत' है। 'सुन्नत' वह कार्य है, जिसे पैगंबर हजरत मुहम्मद ने किया है। केवल मिठाइयों द्वारा मन की मिठास ही व्यक्त नहीं की जा सकती, वरन् इत्र से अंतःकरण की सुगंधि भी वितरित की जाती है। ईद का दिन मिहनत-मजदूरी का दिन नहीं, किनारे बैठकर आँसू बहाने का दिन नहीं, दोस्तों से मिलने, दोस्तों की खातिर करने तथा खुशियाँ मनाने का दिन है। यह चहल-पहल बड़ी रात तक चलती रहती है। नगरों में जिधर देखिए, आने-जानेवालों की भीड़ है, रिक्शों-ताँगों की आमदरफ्त है।

ईद आती है, खुशियों की बहार लुटा जाती है। किंतु, क्या हमने इसके राज को समझा है—इसके रहस्य को जाना है? यदि हम एक महीने रोजा की सख्तियाँ न भुगतते, तो भला ईद की ऐसी बेहिसाब खुशी कैसे मयस्सर होती? अतः, ठीक है, जो जाति साधना नहीं करती, तपस्या नहीं करती, उसे ईद जैसा आनंदोत्सव मनाने का अधिकार नहीं और न अवसर ही मिलता है।

मुबारक ईद का दिन, और खुशी की सारी तमहीदें,
तुम रहो सलामत, और मनाओ सैकड़ों ईदें।

मुहर्रम

[प्रारंभ, इतिहास, प्रथा, उपसंहार]

मुसलमानों के लिए ईद हर्ष का त्योहार है, तो मुहर्रम विषाद का। इस्लामधर्म के अनुयायी अपने शहीदों की याद तरोताजा रखने के लिए इस त्योहार को बड़ी श्रद्धा से मनाते हैं।

मुहर्रम इस्लामी इतिहास की सबसे दुःखद घटना की याद में वर्ष के पहले महीने मुहर्रम की पहली तारीख से दसवीं तारीख तक मनाया जाता है। इस घटना का संबंध इस्लामधर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद के नाती हजरत इमाम हुसैन के बलिदान से है।

हजरत हुसैन पैगंबर मुहम्मद के नाती तथा चौथे खलीफा (धर्मनेता) हजरत अली के बेटे थे। हजरत अली के बाद वे मक्का में खलीफा माने जाते थे, किंतु अरब के सुदूर कोने में यजीद अपने को खलीफा घोषित कर चुका था। एक बार कूफावालों ने हजरत हुसैन को संवाद भेजा कि यदि आप हमारे यहाँ आएँ, तो हम आपको खलीफा मान लेंगे। जब लंबी यात्रा करके हजरत हुसैन कूफा पहुँचे, तो वहाँ यजीद के अनुचरों ने उन्हें घेर लिया। जिन्होंने उन्हें कूफा बुलाया था, उन्होंने भी बड़ी गद्दारी की।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हजरत हुसैन केवल तीस-चालीस लोगों के साथ थे, जिनमें मासूम बच्चे एवं स्त्रियाँ भी थीं। कूफा में यजीद के गवर्नर अम्र-बिन-साद ने हजरत इमाम हुसैन के छोटे काफिले को आगे बढ़ने से रोक दिया। लाचार होकर उसी रेगिस्तानी इलाके में हजरत इमाम हुसैन को खेमा गाड़ना पड़ा।

यजीद के समर्थकों ने हजरत इमाम हुसैन के लोगों को अनेक प्रकार से तकलीफ पहुँचाई। उन लोगों ने नहर का पानी बंद कर दिया। बच्चे और स्त्रियाँ भूख और प्यास के मारे छटपटाने लगे। यह घटना मुहर्रम की तीसरी तारीख को हुई। पाँचवीं तारीख को दुश्मनों ने अपना जुल्म और तेज कर दिया। दसवीं तारीख को छोटे-छोटे बच्चे, औरतें और हजरत इमाम हुसैन के दो भाँजे शहीद हुए। ये उनकी बहन जैनब के बच्चे थे। इस तरह यजीद के सेनाध्यक्ष शिम्र ने सबके साथ बेरहमी की। हजरत हुसैन भी शहीद हुए। शहीद होने के बाद दुश्मनों ने हजरत हुसैन के सर को नेजा पर रखा।

यह घटना इस्लाम की तवारीख में सबसे बड़ी खूनी शहादत की है। इसी के चालीसवें दिन 'चेहल्लुम' (चेहल्लुम का अर्थ है चालीसवाँ) मनाते हैं। यह पर्व मानो श्राद्ध या श्रद्धापर्व है।

इसी शहादत की यादगारी में इस्लाम माननेवाले मुहर्रम की पहली तारीख से दसवीं तारीख तक दस दिनों का मातम मनाते हैं। मुसलमानों में जो शिया हैं, उनके लिए तो यह घटना बहुत गमनाक-दर्दनाक है। वे जंजीर से अपने सीने और पीठ को पीट-पीटकर लहूलुहान कर लेते हैं। औरतें स्याह मातमी पोशाक में नजर आती हैं। वे अपने महापुरुषों की याद में छाती पीट-पीटकर रोती चिल्लाती हैं। इस अवसर पर मजलिसें होती हैं। इनमें खतीब (अभिभाषणकर्ता) कर्बला की घटना को क़विता या गद्य में पूरे वर्णन के साथ सुनाता है। सभा में सम्मिलित होनेवाले इस हृदयद्रावक घटना को सुनकर गर्म उच्छ्वास छोड़ते हैं, आँसू बहाते हैं, आहें भरते हैं, कराहते हैं और धीमे स्वर में गिरिया-व-जारी (रोना-पीटना) करते हैं।

इसी अवसर पर सिपर (ढाल), दुलदुल (घोड़ा), परचम (पताका) और ताजिए निकाले जाते हैं। ये सब इस भयानक युद्ध के स्मारक हैं। मुहर्रम की दसवीं तारीख को बहुत-से मुसलमान रोजा रखते हैं तथा अत्यंत पीड़ा से 'या हुसैन, या हुसैन' बोलते हैं। मुहर्रम की सातवीं से दसवीं तारीख तक दिन-रात निशान लेकर जुलूस निकाले जाते हैं, डंके बजाए जाते हैं तथा चौराहों-मोड़ों पर रुककर युद्धकौशल दिखाए जाते हैं। ये सब बताते हैं कि इमाम किस बहादुरी के साथ दुश्मनों से लड़े थे।

हजरत हुसैन यद्यपि बहुत कम लोगों के साथ कर्बला के मैदान में घिर गए थे, उनके पास बहुत कम हथियार थे, उनके पास भोजन और पानी का प्रबंध नहीं था, तथापि वे असत्य और अन्याय के विरुद्ध पूरी शक्ति के साथ युद्ध करते रहे। उन्होंने यजीद को कभी अपना खलीफा नहीं स्वीकार किया, भले ही उन्हें बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देनी पड़ी। इसलिए, यह पर्व उस आदर्श की याद दिलाता है—जिसमें मनुष्य के लिए उसके जीवन से बढ़कर उसके आदर्श की महत्ता है। मनुष्य पर चाहे विपत्तियों का पहाड़ ही क्यों न टूट पड़े, किंतु धर्म और सत्य के मार्ग से उसे विचलित नहीं होना चाहिए। अन्याय के सक्रिय विरोध का प्रतीक है—मुहर्रम! यही कारण है कि मुहर्रम इस्लाम के इतिहास में अविस्मरणीय पर्व बन गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ईस्टर

[प्रारंभ, महत्त्व, उपसंहार]

ईस्टर ईसाइयों का सबसे बड़ा पर्व है। महाप्रभु ईसा मसीह मृत्यु के तीन दिनों के बाद फिर जी उठे थे। उनके पुनरुत्थान की स्मृति में यह पर्व संपूर्ण ईसाई-जगत में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है।

ईसा मसीह को सलीब पर चढ़ाया गया था—इस दर्दनाक वृत्तांत को कौन नहीं जानता ? उनकी भयानक और हृदयद्रावक मृत्यु के पश्चात उनके अनुयायी पूर्णतः निराश हो उठे। उन्होंने अपनी सारी आशाएँ ईसा में लगा रखी थीं। उनकी मृत्यु के बाद तो अनुयायियों की उम्मीदों का महल ही भहरा उठा। उनकी जिंदगी के ऊपर खतरे की डरावनी तलवार लटक रही थी। मृत्यु के भय से उन्होंने अपने को उस ऊपर के कमरे में छिपा लिया, जिसमें उन्होंने महाप्रभु के साथ रात्रि-भोजन किया था। वे शिष्य ईसा के साथ लगातार तीन परमानंददायी वर्षों तक रहे थे। ईसा के शब्दों के मोती उन्होंने हंस की तरह चुगे थे। ईसा से उन्होंने आस्था और प्रेरणा की सुनहली किरणें पाई थीं। अब तो उनके प्रभु परलोक सिधार चुके थे। अमृतवाणी बरसानेवाला मुख आज मौन था, बिलकुल निःस्पंद। उन बेचारे मछुओं के लिए अब बचा ही क्या था। वे उदास-हताश बैठे थे, इतने उदास-हताश कि आपस में दो-चार शब्द बोलना भी उनके लिए संभव नहीं हो रहा था।

सहसा दरवाजे पर किसी ने जबर्दस्त दस्तक दी। एक व्यक्ति ने सावधानीपूर्वक द्वार खोला। उसने देखा, तो बाहर एक औरत थी। औरत भीतर आई और उसने अपनी वाणी से सभी को विस्मित कर दिया। उसने कहा, "मैं दो औरतों के साथ ईसा के शव को अभिषिक्त करने के लिए उनके समाधि के पास गई थी। देखा कि समाधि का पत्थर खिसका और समाधि रिक्त हो गई। ज्योंही समाधि के भीतर झाँका, तो हमने वहाँ दो देवदूतों को देखा। उनका मुखमंडल विद्युत के सदृश था। वस्त्र हिम के समान उज्ज्वल थे। उन्होंने विस्मयकारी शब्दों में कहा—"तुम नाजरेथ के ईसा को ढूँढ़ती हो, वे यहाँ नहीं हैं। वे तो अब जी उठे हैं। मृतकों के बीच जीवित को क्यों खोजती हो ? जाओ और यह शुभ समाचार उनके शिष्यों को सुनाओ।"

स्त्रियाँ बड़ी आश्चर्यचकित हुई थीं। कमरे में एकत्र ईसा के शिष्य इस समाचार को सुनकर और भी चकित हुए। कुछ ने विश्वास नहीं किया। उन्हें लगा कि किसी ने शव को चुरा लिया है। इसी बीच तीन स्त्रियों में से एक मग्दलेना समाधि के पास रोती रही थी। उसने भी विश्वास नहीं किया था। उसने अश्रुपूरित नेत्रों से देखा कि कोई चरण उसकी ओर बढ़ा आ रहा है। मग्दलेना ने उनसे कहा, "महाशय! यदि आपने उनका शव यहाँ से निकाल लिया है, तो कृपया बताएँ कि कहाँ रखा है।" उत्तर सुपरिचित शब्दों में था, 'मेरी !' कोई भी व्यक्ति मरियम मग्दलेना के विस्मय का अनुमान कर सकता है। सर्वप्रथम उसने ही पुनःजीवित हुए ईसा को देखा। उसने हाँफते हुए कहा, 'प्रभु !' महाप्रभु ने कहा कि तुम मेरे अनुयायियों को संदेश दे दो कि मैं उन्हें शीघ्र मिलूँगा। वह अत्यधिक आशा का संदेश लेकर वहाँ से विदा हुई। इसी नवीन शाश्वत जीवनसंदेश के लिए ईसाई इस 'ईस्टर' पर्व को मनाते हैं।

यद्यपि ईस्टर क्रिसमस की तरह धूमधाम और बाहरी तड़क-भड़क के साथ नहीं मनाया जाता, तथापि यह सभी ईसाई-पर्वों में महत्तम है। सेंट पॉल ने लिखा है, "यदि ईसा जीवित नहीं होते, तो हमारा विश्वास खंडित हो जाता।" ईसाई सभी पीड़ाओं को झेलने के लिए तैयार रहते हैं, सभी अन्याओं को सहने के लिए समुद्यत रहते हैं;

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्योंकि उनका विश्वास ईसा के पुनरुज्जीवन में है। पाप और पीड़ा पर यही अंतिम विजय है। ईसा का जी उठना उनका जीवनस्रोत है। ईसा का पुनरुज्जीवन निश्चित रूप से प्रमाणित करता है कि मानव के पापों के लिए ईसा का दुःख कारगर (फलोत्पादक) रहा।

ईसा का पुनरुज्जीवन या नवजीवन उनके शिष्यों के जीवन में शीघ्र ही फलीभूत देखा गया। वे उनके बीच प्रायः आते रहे और प्रत्येक बार उन्होंने इन्हीं शब्दों से अपना कथन आरंभ किया, "तुम्हें शांति मिले!" महाप्रभु उनके बीच चालीस दिनों तक रहे। वे उन्हें प्रोत्साहित करते रहे, उन्हें उपदेश देते रहे। उस समय तक उनके शिष्य बिलकुल परिवर्तित मनुष्य थे। भय उनके हृदय से भाग चुका था। वे अब ऊपरी कमरे में दुबके रहनेवाले नहीं थे। वे निर्भय होकर बाहर निकले और लोगों को ईसा के पुनरुत्थान के बारे में कहने लगे। इस आश्चर्यजनक परिवर्तन को स्वयं प्रभु के सिवा और कौन समझ सकता है? उन्होंने असंभव को संभव कर दिखाने का साहस दिया। ईसाइयों का विश्वास है कि महाप्रभु ईसा जीवित हैं और महिमाशाली हैं। वे उन्हें सतत आनंद, आशा और साहस प्रदान कर रहे हैं। जब एक ईसाई मरता है, तब उसके मित्र और संबंधी ईसा के पुनरुत्थान की याद करते हैं। ईसा की प्रतिज्ञा है कि जो उनमें विश्वास रखते हैं, वे सदा के लिए जीवित रहते हैं। यही कारण है कि 'ईस्टर' ईसाइयों का पुनःजीवन मनाने का आनंदपर्व है।

क्रिसमस

[प्रारंभ, जन्मकथा, महत्ता, उपसंहार]

क्रिसमस ईसाइयों का महान एवं पवित्र त्योहार है। यह प्रतिवर्ष 25 दिसंबर को मनाया जाता है। यही वह स्वर्णदिवस है, जब महाप्रभु ईसा इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे। न मालूम, कितनी शताब्दियों से यहूदी लोग एक ऐसे मसीहा—एक ऐसे आदर्श राजा—के लिए प्रार्थना कर रहे थे, जो उन्हें स्वतंत्रता का वरदान देता तथा संपूर्ण मानवजाति के ऊपर न्यायप्रियता एवं अच्छाई के कारण शासन करता। ईश्वर ने उनकी आकांक्षा पूरी की। उसने न उन्हें पूर्ण आदर्श राजा दिया, बल्कि अपना बेटा ही दिया; ऐसा बेटा, जिसे देश की, उस समय के संकुचित यहूदी-समाज की सीमाएँ बाँध नहीं पाईं, जिसका राज्य मनुष्य के हृदय और आत्मा के ऊपर हुआ। ईसा के मानवशरीर में जन्मग्रहण का लक्ष्य मानव को ईश्वर से पुनर्युक्त करना था। पाप ने मनुष्य को ईश्वर से अलग कर दिया है। ईसा मनुष्य को पाप से छुटकारा दिलाने आए थे। वे ही केवल ऐसा कर सकते थे। वे सचमुच मनुष्य थे—हमलोगों जैसे ही एक हाड़-मांस के बने मनुष्य थे—इसलिए वे मनुष्य को सुधारने में समर्थ थे। वे सचमुच ईश्वर के पुत्र थे, इसलिए वे मनुष्य से ईश्वर की मैत्री पूर्ववत् करा सकते थे। विश्वास का यही आनंदप्रद रहस्य है, जिसके कारण ईसाई लोग प्रतिवर्ष 25 दिसंबर को क्रिसमस का त्योहार मनाते हैं।

महाप्रभु ईसा की जन्मकथा से कौन परिचित नहीं है? यह इतनी सुज्ञात है कि इसे दुहराने की आवश्यकता नहीं। फिर भी, इसका सौंदर्य यह है कि यह प्रेरणा का अनंत स्रोत है। रोम के बादशाह के दंड के कारण यूसुफ को अपनी पत्नी मरिया के साथ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपने पुरखों के घर बेथेलहम जाना पड़ा। उन लोगों ने पाँव-पयादे लगभग नब्बे मील की लंबी यात्रा की। बेथेलहम की सभी सराएँ खचाखच भरी थीं। जब उन लोगों को वहाँ जगह न मिली, तब उन्होंने एक पहाड़ी गुफा में शरण ली। मरिया ने वहीं अपने ईश्वरीय पुत्र ईसा को जन्म दिया। कुछ गड़ेरियों के पास—जो पहाड़ी पर भेड़ें चरा रहे थे—एक देवदूत आया और उन लोगों से बोला, "दाऊद के इस नगर में एक मुक्तिदाता का जन्म हुआ है—ये मुक्तिदाता स्वयं भगवान ईसा हैं। ये चिह्न हैं, जिनसे तुम उन्हें जान पाओगे। अभी तुम कपड़ों में लिपटे एक शिशु को नाद में पड़ा देखोगे।" फिर देवदूतों का एक समूह आया, जो ईश्वर की कीर्ति तथा मानवशांति और सद्‌भावना के गीत गा रहा था। गड़ेरियों ने उनके कथन का अनुगमन किया और वे ही प्रथम विशेष सुविधाप्राप्त पुण्यात्मा थे, जिन्होंने मानव आकृति में ईश्वर-पुत्र को देखा। घुटने टेककर उन्होंने ईसा की स्तुति की। उनके पास उपहार देने को कुछ भी नहीं था। वे गरीब आदमी थे—वैसे ही, जैसे स्वयं ईसा। महाप्रभु ईसा के जीवन का सबसे महान संदेश है कि मनुष्य सत्ता या संपत्ति से महान नहीं होता, बल्कि आत्मिक स्वच्छता और ईश्वरीय निकटता से महान होता है। इस संदेश को हृदयंगम करते हुए युगों से लाखोंलाख ईसाइयों ने लौकिक संपत्ति का परित्याग इसलिए किया है कि वे शिशु ईसा की तरह निर्धन रह सकें।

एक बड़े प्रमुख ईसाई संत फ्रांसिस अपनी दीनता के लिए विख्यात हैं। उन्होंने अपना सारा स्वत्व और संपदा त्याग दी; क्योंकि दीन बनकर वे ईसा का अनुसरण कर सकें। उन्होंने ही 'क्रिसमस चरनी' का प्रचलन किया। यह उस ग्रामीण दृश्य की पुनःस्थापना है, जिसमें शिशु ईसा, मरिया, यूसुफ, गड़ेरियों और पशुओं के दृश्य उपस्थित किए जाते हैं। सारे संसार में यह प्रथा फैल गई है।

ईसा संभवतः 25 दिसंबर को नहीं जनमे थे। रोम-राज्य में 25 दिसंबर को एक महान त्योहार सूर्यदेव—डायनोसियस—की उपासना के हेतु मनाया जाता था। ईसा की प्रथम शताब्दी में ईसाई लोग उनका जन्मदिवस इसी समय मनाने लगे। तबसे इसी दिन यह त्योहार मनाया जाता है। तिथि बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण तो वह रहस्य और गूढ़ार्थ है, जिसका स्मरण इस दिन ईसाई करते हैं।

महाप्रभु ईसा का जीवन त्याग-तपस्या का जीवन था। वे प्रेम और घृणा को मन की संतान मानते थे। मानव को नैसर्गिक गुणों के विकास में प्रयत्नशील रहना चाहिए। धर्मस्थान में आने-जाने और माला फेरने-मात्र से धर्म का सर्जन नहीं होगा। उनके उपदेश इतने सुंदर हैं कि उनपर आचरण करने से कायापलट हो जाए। उनके पर्वतीय उपदेशों का सार है—"स्वर्ग का राज्य दीन-दुःखियों का है। नम्र व्यक्ति ही धन्य हैं। इस पृथ्वी के वे ही अधिकारी हैं। शुद्ध हृदयवाले ही ईश्वर को पा सकते हैं। धर्म और न्याय के निमित्त कष्ट सहनेवाले लोगों के लिए स्वर्ग की निधियाँ सुरक्षित हैं।"

प्रभु ईसा का उपदेश 'सुसमाचार' कहलाता है। आत्मत्याग से मनुष्य का हृदय परिवर्तित कर देनेवाली साधना ही सबसे बड़ी देन है। दीन-दुःखियों की सेवा ही भगवान की सेवा है। विश्व से निराशा का जीवन बुझा हुआ चिराग है, उसे आशा की ज्योति से जगमग करना चाहिए। गिरे हुए लोग भी मन की पवित्रता से ऊँचा उठ सकते हैं। ईसा पतितों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करनेवाले पतितपावन थे तथा शास्त्रियों के धार्मिक पाखंड के घोर निंदक। सहृदय और मिलनसार होते हुए भी वे नितांत अनासक्त और अलिप्त थे। वे पाप से घृणा करते थे, पापियों से नहीं। वे ईश्वरतनय तथा संसार के मुक्तिदाता होते हुए भी अहंकारशून्य तथा विनम्र थे। इस त्योहार के अवसर पर उपहार देने का भी प्रचलन हो गया है। क्यों न हो, इसी दिन मानवजाति ने ईसा के

3683

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रूप में भगवान का सर्वोत्तम उपहार पाया था। किंतु, आज बड़े-बड़े नगरों में व्यापारियों ने उपहार-विक्रय पर इतना बल देना प्रारंभ कर दिया है कि कहीं ऐसा न हो कि महाप्रभु ईसा के जन्मदिवस का आध्यात्मिक अर्थ ही उपेक्षित हो जाए।

अतः, आवश्यकता इस बात की है कि क्रिसमस के दिन हम केवल मोद न मनाएँ, केवल झंडियों से घर-बाजार न सजाएँ, केवल रंग-बिरंगे शुभकामनापत्र ही न भेजें, केवल कीमती उपहार ही न दें, बल्कि महाप्रभु ईसा के जन्म के दिव्य रहस्य को समझकर अपना आत्मिक विकास भी करें।

सरहुल

[परिचय, पद्धति, गीत, उपसंहार]

सरहुल उराँव नामक आदिवासी जाति का सबसे बड़ा त्योहार है। यह कृषि आरंभ करने का त्योहार है। इस त्योहार को 'सरना' के सम्मान में मनाया जाता है। सरना वह पवित्र कुंज है, जिसमें कुछ शालवृक्ष होते हैं। यह पूजनस्थान का कार्य करता है। इस त्योहार के लिए निश्चित दिन को गाँव का पुरोहित—जिसे पाहन कहते हैं—सरनापूजन करता है। इस अवसर पर मुर्गे की बलि दी जाती है तथा हँड़िया (चावल से बनाया गया मद्य) का अर्घ्य दिया जाता है।

आदिवासी—चाहे वे निकट के नगरों में, असम के चाय-बागानों में या बंगाल की जूटमिलों में काम करने गए हों—सरहुल के समय घर अवश्य आ जाते हैं। लड़कियाँ ससुराल से मायके लौट आती हैं। वे लोग अपने घरों की लिपाई-पुताई करते हैं। मकानों की सजावट के लिए दीवारों पर हाथी-घोड़े, फूल-फल आदि रंग-बिरंगे चित्र बनाते हैं। उनकी कलाप्रियता देखते ही बनती है। जिधर देखिए उधर ही चहल-पहल है, आनंद-उछाह है, मौज-मस्ती का आलम है। इस दिन खा-पीकर मस्त होकर घंटों तक उनका नाचना-गाना अविराम चलता है। लगाता है, जीवन में उल्लास-ही-उल्लास है, सुख-ही-सुख है। ऐसे अवसर पर गौतम बुद्ध इन लोगों के बीच आएँ, तो उन्हें लगे कि न जीवन में दुःख है, न शोक है, न रोग है, न बुढ़ापा है, न त्रास है न मृत्यु। जो कुछ सुख है, बस वह मिट्टी के जीवन में है और उस सुख की एक-एक बूँद निचोड़ लेना ही जैसे इनका लक्ष्य है। नाच-गाने से गाँव की गली-गली, डगर-डगर का वातावरण झमक उठता है। इस अवसर पर युवक-युवतियाँ नगाड़े, मृदंग और बाँसुरी की धुनों पर थिरक-थिरककर नाचते हैं और आनंदविभोर हो उठते हैं। नृत्य के इन मधुमय ताजा-टटके गीतों से एक की बानगी लें—

खद्दी चाँदी हियो रे नाद नौर
फागु चाँदी दुलम रे नाद नौर
भर चाँदो चाँद रे नाद नौर
मिरिम चाँदी हो-सोड ले-उना।
खैया से-डोय हियो रे नाद नौर
खेड़ोने-डोय हियो रे नाद नौर
भर चाँदो चाँद रे नाद नौर
मिरिम चाँदो हो-सोड ले-उना।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अर्थात, सरंहुल का चाँद आया है। फूल-फल लेता आया है। भर चाँद हम उसे सेते हैं, फिर त्याग देते हैं। भाभियों, बहुओं और स्वजनों को बुलाओ। बड़ी मुर्गी की बलि चढ़ाओ। टूटे घड़े से हँड़िया का अर्घ्य दो।

इस प्रकार, सरल नादात्मक शब्दों से निःसृत गीतों में उल्लास की रसभीनी बयार इठलाती रहती है। जितने ये सरल, निष्कपट, आनंदमूर्ति मनुष्य हैं, उतना ही इनका स्वभाव सरल, निश्छल तथा आनंदविह्वल है। जैसे हिंदुओं की होली है, मुसलमानों की ईद है, ईसाइयों का क्रिसमस है, वैसे ही उराँवों का सरहुल है।

आ जाए शीघ्र चैत्र मास कि सरहुल मनाने में मगन उराँव के दर्शन हम फिर करें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मनोभाव-संबंधी निबंध

देशभक्ति

[आरंभ, महत्ता, उपसंहार]

पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है।
खाके-वतन का मुझको हर जर्रा देवता है ॥

—इकबाल

जिस देश की धरती प्रतीक्षा के पलक-पाँवड़े बिछाए हुए मातृकुक्षि से अवतरण के पश्चात हमारे स्वागत-संभार के लिए आकुल-व्याकुल रहती है, अपनी स्वच्छ जलवायु से हममें नवजीवन का संचार करती है, अपने रजकणों का उबटन लगाकर हमारी पेशियों को सबल-सशक्त बनती है तथा अन्न-फल-दुग्ध आदि प्रदान कर हमारा पोषण-वर्द्धन करती है, वह हमारी जन्मदात्री माता से कम महत्त्व की अधिकारिणी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। माँ यदि जन्मदात्री है, तो देश की धरित्री जीवनदात्री। अतः, हमारे मन-प्राणों में उनके प्रति आदर के फूल न खिलें, पूजा के दीप न जलें, तो यही अस्वाभाविक है। यही कारण है कि हमारे तपःपूत वैदिक ऋषियों ने अथर्ववेद में मंत्रोच्चारण किया था—'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'—पृथ्वी हमारी माता है और इसके निवासी हम पुत्र।

ऐसी स्थिति में पृथ्वी केवल मिट्टी का ढेला नहीं रह जाती है, वरन वह एक महामहिमामयी पूजनीय देवी बन जाती है। उसके भूगोल की सारी तफसीलें इबादत से भर जाती हैं। नदी, जंगल, पहाड़, ऋतु, वनस्पति, सभी में उसके अनुराग की गंध मालूम पड़ने लगती है, मन में हर वक्त ऐसा भाव बना रहता है कि देश और हममें अविनाभावसंबंध है, हमारा जीवन और मरण देश के हित-अनहित पर आश्रित है।

विदेशी आक्रमणों से अपने देश को बचाने में सदा हमारे वीरों ने बलिदान किया है। मुगल-शासन की नींव हिला देने के लिए महाराणा प्रताप ने घास की रोटियाँ खाईं, चेतक की पीठ को बिछावन बनाया, शिवाजी और छत्रसाल वन-वन की खाक छानते रहे और गुरु गोविंदसिंह ने स्वयं अपने बच्चों का बलिदान किया। अँगरेज-शासन के खिलाफ रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, वीर कुँअरसिंह, सुभाषचंद्र बोस और महात्मा गाँधी ने जो कष्ट सहे हैं, क्या उनसे हम अपरिचित हैं? जलियाँवाला-बाग के जालिम डायर को मौत के घाट उतारनेवाले महान वीर ऊधमसिंह जैसों से ही मातृभूमि की कोख जुड़ाती है।

सच्चा देशभक्त अपना सर्वस्व अपनी मातृभूमि के पावन चरणों पर न्योछावर कर देता है। उसे अपनी मातृभूमि की रक्षा के बीच न तो वनिता की ममता सताती है, न सुत-स्नेह की जंजीर ही उसके पाँवों में उलझन बनती है। चाहे हिमालय की शिलीभूत कर देनेवाली चोटियाँ हों या हिंद महासागर की तूफानी लहरें—वह निर्लोभ भाव से अपनी जान हथेली पर लेकर मातृभूमि पर पहरा देता रहता है। उसे न राजभवन का सुख लुभाता है, न काँटों की चुभन सताती है। उसे न तो उपाधियों की मृगतृष्णा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मोहती है, न प्राणदंड का हलाहल ही भयभीत करता है। देशरक्षा के दीवाने तोपों के मुख पर पाँव रखे हुए, न मालूम कितने वेशों में कितने देशों की परिक्रमा किया करते हैं। स्वदेश को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए महान देशभक्त सुभाषचंद्र बोस की अंगारों पर लिखी जीवन-कहानी को जो जानते हैं, वे ही इस कथन की सत्यता पर विश्वास कर सकते हैं।

ऐसे देशभक्त मातृभूमि का अनादर कभी बर्दास्त नहीं कर सकते। यदि देश स्वाधीन हो, यदि देश में खुशहाली हो, तो उनके ओठों पर सौ-सौ वसंत मुस्कराते हैं, किंतु यदि उसकी ओर किसी की वक्रदृष्टि हुई, तो उनके प्राणों में तूफान मचलने लगता है, आँखों में अंगार दहकने लगता है। ऐसे क्षण में वे श्रीरामचरित उपाध्याय के स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं—

देश-प्रेमरस-छके हुए हम अग्निकुंड खेलेंगे
पराधीन हो किंतु नहीं अब विधि वेदना झेलेंगे।

ऐसे ही देशभक्तों से किसी देश का गौरव अक्षुण्ण रहता है। हमारे देश की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाने में जिन वीरों ने अपनी आहुतियाँ दीं, उनमें सरदार भगतसिंह, खुदीराम बोस, भूपेंद्रनाथ सान्याल, गणेशशंकर विद्यार्थी, बाघा यतीन, अशफाकउल्ला खाँ इत्यादि के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। ऐसे वीरों का शोणित स्वतंत्रता-वृक्ष के बीज का काम करता रहा है।

वस्तुतः, जब-जब देश पर संकट का इंद्रकोप होता है, तब-तब देशभक्त ही अपनी छिगुनी पर गोवर्धन धारण कर उसकी रक्षा करते हैं। जब अनाचारों का हलाहल बंहने लगता है, तब वे नीलकंठ की भाँति हँसते-हँसते उनका पान कर जाते हैं। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' को चरितार्थ करनेवाले देशभक्तों की उत्कट गंध तो मलयगिरिचंदन की ऐसी गंध है, जो पार्श्ववर्ती निर्गंध-निस्सार वेणुविटपों को भी गंधमय कर देती है। इतिहास में जहाँ-कहीं दपदप चाँदनी है, वस्तुतः इन्हीं देशभक्तों के बलिदानी चरित्रों से फूटनेवाली चाँदनी है। ऐसे ही देशभक्तों के चरणरज से कारागार अपने को सुरलोक समझ लेता है, देवता उनपर नंदनकानन से सुमन-वृष्टि कर अपने को धन्य मानते हैं, कलकल-छलछल करती सुरसरिता तथा तांडवनृत्य में रत रुद्र उनका जयजयकार करते हैं।

सचमुच, जो व्यक्ति देश के लिए अपने को सूली के तख्ते पर चढ़ा देता है, उसे देश भगवान की तरह पूजता है, उसकी आरती उतारता है, उसकी गाथाओं का पाठ करता है तथा उसकी स्मृति को ताजा रखने के लिए उत्सव मनाता है—

शहीदों की मजारों पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पे मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा॥

सत्यवादिता

[परिभाषा, महत्ता, उपसंहार]

सत्य ! कितना भोला-भाला, कितना सीधा-सादा ! जो कुछ अपनी आँखों से देखा, बखान कर दिया, जो कुछ जाना, बिना नमक-मिर्च लगाए बोल दिया—यही तो सत्य है न! इतना सरल! सत्य दृष्टि का प्रतिबिंब है, ज्ञान की प्रतिलिपि है, आत्मा की वाणी है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सत्यवादिता के लिए केवल निष्कपट मन चाहिए। एक झूठ के लिए हजारों झूठ बोलने पड़ते हैं, झूठ की लंबी श्रृंखला मन में बैठानी पड़ती है। और, कहीं तारतम्य न बैठा, पोल खुली, तो मुँह काला करना पड़ता है, अविश्वास का आघात सहना पड़ता है, अवमानना का कड़ुआ घूँट पीना पड़ता है। हाँ, सत्य बोलने और करने में किसी का अकारण बुरा करने का उद्देश्य न होना चाहिए। काने को 'काना' कहकर पुकारना या लँगड़े के समक्ष लँगड़े जैसी नकल कर दिखाना सच बोलना या करना नहीं हुआ। इसके पीछे सच का मंशा न होकर चिढ़ाने का इरादा है।

इस बात को शास्त्र में यों समझाया गया है—

सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

अर्थात्, सच बोलो, पर प्रिय यानी भले मंशे का सच बोलो, अप्रिय यानी बुरे मंशे का सच कभी न बोलो।

संसार में जितने महान व्यक्ति हुए हैं, सबने सत्य का सहारा लिया है—सत्य की उपासना की है। 'चंद्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत ब्यौहार' के उद्घोषक राजा हरिश्चंद्र की सत्यनिष्ठा जगद्विख्यात है। यह ठीक है कि उन्हें सत्य के मार्ग पर चलने में अनेक कठिनाइयों के दलदल में फँसना पड़ा, लेकिन उनकी कीर्ति आज चाँद की चाँदनी और सूरज की रोशनी से कम प्रकाशपूर्ण नहीं। राजा दशरथ ने सत्यवचन-निर्वाह के लिए अपना प्राणोत्सर्ग तक किया। महात्मा गाँधी ने सत्य की शक्ति से ही विदेशी शासन की जड़ें काट दीं। उनका कथन है—"सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है, त्यों-त्यों उसमें अनेक फल लगते नजर आते हैं। उनका अंत नहीं होता।" वस्तुतः, सत्यभाषण और सत्यपालन के अमित फल होते हैं। सत्य बोलने का अभ्यास बचपन से ही डालना चाहिए। कभी-कभी झूठ बोल देने से कुछ क्षणिक लाभ हो जाता है, बच्चे झूठ बोलकर माँ-बाप से पैसे झटक लेते हैं, पढ़ाई का बहाना करके सिनेमा चले जाते हैं। किंतु, यह क्षणिक लाभ उनके जीवन-विकास का मार्ग अवरुद्ध कर देता है। उनके चरित्र में छिद्र होने लगता है और रिसता हुआ चरित्र कभी महान हो नहीं सकता।

झूठ बोलनेवालों से लोगों का विश्वास उठ जाता है। उनकी उपेक्षा सर्वत्र होती है। उनकी उन्नति के द्वार बंद हो जाते हैं। कभी-कभी तो उन्हें अपनी बेशकीमती जिंदगी से भी हाथ धोना पड़ता है। क्या आपने उस चरवाहे लड़के की चर्चा नहीं सुनी है, जो 'भेड़िया आया—भेड़िया आया' कहकर लोगों को उल्लू बनाता था? जो झूठ की मूठ पकड़ दूसरों का शिकार करते हैं, वे खुद ही शिकार बन जाते हैं।

सत्य की महिमा अपार है। बाइबिल का कथन है—'यदि तुम सत्य मानते हो, तो सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा।' सत्य महान और परमशक्तिशाली है। संस्कृत की सूक्तियाँ हैं—'सत्यमेव जयते, नानृतम्', 'नहि सत्यात् परो धर्मः'—'सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं तथा 'सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।' जॉन मेन्सफील्ड की धारणा है कि सत्य की नाव से ही हम मृत्युसागर का संतरण कर सकते हैं। सत्य की एक चिनगारी से असत्य के फूस का अंबार एक क्षण में भस्मसात हो जाता है।

अतः, हर स्थिति में सत्यभाषण और सत्यपालन श्रेयस्कर है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वावलंबन

[प्रारंभ, महत्ता, उपसंहार]

पश्चिम की है एक कहावत
उसको घोखो उसको घोखो
राम सहायक उनके होते,
जो होते हैं आप सहायक ॥

—बच्चन

एक व्यक्ति बहुत दिनों तक बैसाखी के सहारे चला। ज्योंही उसकी बैसाखी छीन ली गई, उसकी गति रुक गई। ठीक यही स्थिति है, जो स्वावलंबी नहीं हैं। जो दूसरे के अवलंब या सहारे कुछ करने के अभ्यासी हैं, वे प्रगति की ऊँची पहाड़ी पर पहुँच नहीं पाते। आखिर उस लत्ती से हम क्या आशा रख सकते हैं, जिसका अलान के बिना अस्तित्व ही संभव नहीं ?

मानव की चतुर्दिक उन्नति के लिए कोई एक स्वर्णिम शास्त्रोपदेश नहीं है—'दस-सूत्री शास्त्रोपदेश' (ten commandments) ही नहीं, अनेक शास्त्रोपदेश हैं। उन शास्त्रोपदेश में एक उपदेश स्वावलंबन भी है। केवल अपने सुंदर दाहिने हाथ (good right hand) की शक्ति पर विश्वास रखकर अपनी बुद्धि से जो अपना मार्ग निर्धारित नहीं करते, वे जीवन के पहले ही मोड़ पर भटक जाएँ, तो आश्चर्य की बात नहीं। स्वावलंबन के दो पहलू हैं—अपना काम आप करना और साथ ही आत्मनिश्चय। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वावलंबन का ही पाठ पढ़ाते हुए कहा है—नादान, दूसरों से सीख न लेनेवाला और आत्मनिश्चय से हीन व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

संसार के महापुरुषों की जीवनकथाओं के पृष्ठों को उलटें। पता चलेगा कि जिस गुण ने उन्हें प्रगति के कनकाभ शिखर पर ला खड़ा किया, वह स्वावलंबन ही था।

महान नायक, महान नेता, महान व्यापारी, महान वैज्ञानिक—सबने अपना रास्ता स्वयं तय किया है। किसी की पीठ पर लदकर उन्होंने मंजिलें नहीं तय कीं। अपनी सशक्त भुजाओं पर आस्था रखकर ही वीरों ने बड़े-बड़े साम्राज्यों की सुदृढ़ आधारशिला रखी है तथा अक्षय कीर्ति अर्जित की है।

वनवासी श्रीराम की पत्नी का हरण रावण ने किया, तो उन्होंने अयोध्या की विशालवाहिनी का भरोसा न कर अपनी भुजाओं के बल पर ही उस महान शक्तिशाली रावण से वैर साधा और उसका विनाश किया। द्यूतक्रीड़ा में संपूर्ण राजपाट हारनेवाले पांडवों ने स्वावलंबन के बल पर ही पुनः अपना राज्य वापस पाया। स्वामी विवेकानंद का अमेरिका में कौन सहायक था? किंतु उनके स्वावलंबन ने ही उन्हें विश्व के विद्वानों में प्रथम पूज्य बना दिया। इधर हाल में, हम अपने चिकित्सक खुराना को जब एक मामूली नौकरी भी नहीं दे पाए, तो स्वावलंबन-मंत्र के साधक उस वैज्ञानिक ने नोबेल-पुरस्कार पाकर केवल अपना ही नहीं, वरन् भारत का सिर गौरव से ऊँचा किया। इतना ही नहीं, बेंजामिन फ्रेंकलिन के माँ-बाप इतने गरीब थे कि वे उन्हें ऊँची शिक्षा तक नहीं दे पाए, किंतु फ्रेंकलिन ने स्वावलंबन का पाठ पढ़कर ही विज्ञान और राजकौशल में नाम कमाया। माइकेल फैरेडे आल्व में जिल्दसाजी करते थे, किंतु आत्मनिर्भरता के बल पर ही वे संसार के महान वैज्ञानिक सिद्ध हुए। ईश्वरचंद्र विद्यासागर दीन ब्राह्मण की संतान थे, सड़क की बत्तियों में वे पढ़ते थे, किंतु उन्होंने जो यश अर्जित किया, उसका रहस्य स्वावलंबन ही है। इसी तरह नेपोलियन, बाबर, शेरशाह, महात्मा गाँधी, कारनेगी, अब्राहम लिंकन, न्यूटन, जेम्स वाट इत्यादि अनगिनत नाम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गिनाए जा सकते हैं, जिन्होंने स्वावलंबन के बल पर ही मानवता का त्राण किया तथा अक्षय कीर्ति पाई। इसलिए, जो व्यक्ति अपनी शक्ति पर विश्वास रखकर कार्य में अग्रसर नहीं होता, उसकी पराजय ध्रुव है। अँगरेजी के एक विचारक ने ठीक ही कहा है—"The supreme fall of falls in this, the first doubt of one's self." अर्थात् पतन से भी बड़ा पतन यह है कि किसी को सबसे पहले अपने पर ही भरोसा न हो।

इसी प्रकार, जो राष्ट्र परावलंबी होता है, उसकी स्थिति धोबी के कुत्ते की होती है—न घर का, न घाट का। परावलंबी राष्ट्र को दूसरे पर निर्भर रहते-रहते ऐसी आदत हो जाती है कि वह आत्मनिर्भरता सोचना तक भूल जाता है, हर मामले में एक गया-गुजरा भिखमंगा-सा हो जाता है। दाता राष्ट्रों के आगे वह हमेशा हाथ फैलाए रहता है, उनकी झिड़की खाता है और उनका ऐसा गुलाम हो जाता है कि युद्ध तक में घसीटा जाता है। दाता राष्ट्र हमेशा तरह-तरह से उसका उपहास करते हैं। उसे वे कठपुतली की तरह नचाते हैं, पेंडुलम की तरह दोलायमान रखते हैं। यदि हमें भी महान राष्ट्र के रूप में जीना है, तो हमें स्वावलंबी होना चाहिए। दूसरे के सामने भिक्षापात्र नहीं फैलाना होगा। यदि सहायता भी मिले, तो उसे ठुकराना पड़ेगा। तभी हम अपनी शक्ति एवं प्रतिभा का विकास एवं उपयोग कर सकते हैं और संसार में एक सच्चे स्वाधीन राष्ट्र की मर्यादा पा सकते हैं।

स्वावलंबन ही जीवन है, परावलंबन मृत्यु। स्वावलंबन पुण्य है, परावलंबन पाप। स्वावलंबन अमृत का स्रोत है, परावलंबन गरल का सागर। परावलंबी को भी भगवान ने हाथ, पाँव, आँख और मस्तिष्क सब कुछ दिया है, किंतु वह लूले, लँगड़े, अंधे तथा मस्तिष्कशून्य से भी गया-बीता है। वह मनुष्य नहीं, वरन् पशु है, पशु भी नहीं, वरन् मृतक पशु है। जिस देश में ऐसे मृतक रहते हैं, उसे हम देश कैसे कहेंगे, उसे तो कब्रिस्तान ही कहेंगे—ऐसा कब्रिस्तान, जहाँ मुर्दे कब्रों में दफनाए नहीं गए हैं, चलते-फिरते नजर आते हैं।

यह पापपूर्ण परावलंबन चूर्ण होकर दूर हो,
फिर स्वावलंबन का हमें प्रिय पुण्यपाठ पढ़ाइए।

—**मैथिलीशरण गुप्त**

अनुशासन

[भूमिका, महत्त्व, हानि, उपसंहार]

'अनुशासन' शब्द 'शासन' के साथ 'अनु' उपसर्ग जोड़ने से बना है, जिसका अर्थ है 'शासन के पीछे', अर्थात् 'शासन के पीछे चलना'। श्रेष्ठजनों के आदेशों पर चलना या स्वशासन के अंतर्गत रहना ही अनुशासन कहलाता है। इस प्रकार, अनुशासन कायिक एवं वैचारिक नियमों का पालन है।

प्रकृति के कण-कण अनुशासन की दास्तान कह रहे हैं। चाँद और सूरज अनुशासन में बँधकर ही रात-दिन की आँखमिचौनी खेल रहे हैं। ऋतुचक्र अनुशासन की कील पर घूमकर ही सुख, स्वास्थ्य एवं समृद्धि की सृष्टि करता है। मामूली-से-मामूली प्राणी भी जब अनुशासन की डगर पर चलते हैं, तब उनका जीवन आदर्श और अनुकरणीय बन जाता है। एक बार जब किसी ने प्रिंस बिस्मार्क से पूछा था कि आप मनुष्य को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छोड़कर किस योनि में जन्म लेना पसंद करेंगे, तो उन्होंने धड़ल्ले से कहा था—चींटी, क्योंकि उसका जीवन सर्वाधिक अनुशासनबद्ध होता है। चीटियों का जीवन अनुशासन की एक अनमोल दस्तावेज़ है। काश, हम वैसा जीवन अपना पाते।

अनुशासन हमारे जीवन की केंद्रस्थ धूरी है। रथ का एक चक्र यदि पूरब की ओर तथा दूसरा पश्चिम की ओर जाए, तो रथ की क्या गति हो सकती है? इसी प्रकार, मनरूपी सेनापति की अवज्ञा कर यदि दोनों पाँव दो ओर चलें, दोनों हाथ दो ओर उठें, दोनों कान दो ओर सुनें तथा दोनों आँखें दो ओर देखें, तो उस मनुष्य की क्या स्थिति हो सकती है? इसीलिए, यह आवश्यक है कि हम जीवन के कदम-कदम पर अनुशासित होना सीखें।

युद्ध के मैदान में विजयी होने का रहस्य है—सेनापति के एक इशारे पर बिना कुछ सोचे-विचारें जूझ पड़ना। खेल के मैदान में भी वे ही प्रशंसा के पात्र होते हैं, जो कैप्टन के आदेश का पालन तत्परतापूर्वक करते हैं। शिक्षाप्राप्ति की भी स्वर्णिम कुंजी है—अनुशासन। जो व्यक्ति अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करता है, उनके द्वारा बताए मार्ग का अनुगमन नहीं करता, वह शिक्षित नहीं हो सकता। वह अपने जीवन में पद, प्रतिष्ठा एवं धन—सभी से वंचित रहता है। कक्षाओं में सियार की बोली बोलनेवाले छात्र जीवन में सियार की तरह ही भूँकते-भटकते चलते हैं। परीक्षा-भवन में छुरे की नोक पर कमाल दिखानेवाले छात्र आजीवन छूरे की नोंक पर ही चलते रहते हैं—कहाँ है उनके जीवन में फूलों की सेज, कीर्ति की कुसुममाला एवं आदर का तिलक! परिवार में ऊधम मचानेवाले, माता-पिता की बातों की परवाह न करनेवाले, बड़े-बूढ़ों के वचन पर कान न देनेवाले स्वेच्छाचारी व्यक्तियों पर जीवन भर उपहास की धूलि पड़ती है, उन्हें अपमान का गरल पीना पड़ता है।

अनुशासन जीवन की चतुर्दिक सफलता का महामंत्र है। जैसे—पुष्प सूई और धागे का अनुशासन मानकर हार बन जाता है, वैसे ही जीवन नियमों एवं नीतियों का अनुशासन मानकर वरेण्य बन जाता है। हम महापुरुषों के जीवन पर किंचित दृष्टिपात करें, तो अनुशासन के लाभ से परिचित हो जाएँगे। महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक इत्यादि का जीवन अनुशासन का अडिग प्रकाशस्तंभ था।

यदि हम अपने समाज और राष्ट्र की उन्नति चाहते हैं, तो इसके लिए आवश्यक है कि हम परिवार, गुरुजन, समाज और राष्ट्र के प्रति स्वयं अनुशासित हों, ऐसे अनुशासित लोगों को ही चुनाव आदि द्वारा पंचायतों में या सरकार में जाने दें, और तब जहाँ भी जिसका अन्याय या अत्याचार हो, उसका कानून और कायदे से प्रतिरोध करें। जब हम स्वयं अनुशासित होंगे, तभी दूसरे को अनुशासित रख सकेंगे—Example is better than precept; उपदेश से उदाहरण अच्छा है।

एकता

[भूमिका, इतिहास, हानि, उपसंहार]

एक होने का भाव 'एकता' कहलाता है। यदि मानव परस्पर पृथक् होकर कार्य तथा विचार करे, तो मानवसमाज की प्रगति संभव नहीं। इसलिए, मनुष्य का मन, वचन और कर्म से यथासंभव एक होना आवश्यक है। यदि हम एकजुट होकर काम करते हैं, तो हमारी उन्नति निश्चित है, यदि हम बँटकर, बिखरकर काम करते हैं, तो हमारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अवनति होकर रहेगी। जॉन डिकिन्सन की उक्ति ठीक है, United we stand, divided we fall' (हम संगठित रहें, तो टिकेंगे; असंगठित हुए, तो गिरेंगे)। भारतीय नीतिकार भी कहते हैं, 'सङ्घे शक्तिः कलौयुगे।' अर्थात् कलियुग में संघटन या एकता में ही बल है।

कहा गया है, 'एकता ही बल है'—Union is strength ! अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। एक मामूली तिनके की क्या बिसात ! किंतु, जब वही संगठित हो जाता है, तब उससे बनी रस्सी द्वारा बड़े-बड़े उन्मत गजराज भी बाँध दिए जाते हैं। इसी पर संस्कृत की एक सुप्रसिद्ध सूक्ति है—

बहूनामल्पसाराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुः बध्यन्ते तेन दन्तिनः॥

(बहुत-से क्षुद्र और कमजोर लोगों की एकता भी अजेय बन जाती है। कमजोर तिनकों से बनाई गई रस्सी बड़े-बड़े हाथियों को बाँध लेती है।)

एक नन्हीं-मुन्नी बूँद की क्या हस्ती! किंतु, उन्हीं बूँदों का समुदाय जब महान नद बन जाता है, तब उसके सामने बड़े-बड़े भूधर भी काँपने लगते हैं। एक छोटी-सी ईंट तो किसी ठोकर या चोट से फोड़ी जा सकती है, किंतु जब वही मिलकर दीवार बनती है, तब बड़े-बड़े वीरों के पथ अवरुद्ध हो जाते हैं। जो चींटी छोटी और दुबली मालूम पड़ती है, वही जब एक साथ हो जाती है, तब विषधर भुजंगों को भी चट कर जाती है। शेख सादी का कहना है—यदि चिड़ियाँ एकता कर लें, तो शेर की खाल खींच सकती हैं। इन दूर के दृष्टांतों तक जाने की आवश्यकता नहीं। यदि हम अपने शरीर की ओर ही देखें, तो एकता का महत्त्व स्पष्ट हो जाएगा। आचार्य विनोबा ने लिखा है—"सबको हाथ की पाँच उँगलियों की तरह रहना चाहिए।" हाथ की पाँचों उँगलियाँ समान थोड़े ही हैं? कोई छोटी है, कोई बड़ी, लेकिन हाथ से किसी चीज को उठाना होता है, तब पाँचों इकट्ठा होकर उठाती हैं। हैं तो पाँच, लेकिन काम हजारों का कर लेती हैं, क्योंकि उनमें एकता है।

इतिहास के पृष्ठ साक्षी हैं कि एकता के अभाव का दुष्परिणाम कितना भयानक होता है। कौरव और पांडव की आपसी फूट के कारण इतना बड़ा महाभारत हुआ जिसे सारा संसार जानता है। अनाचारी रावण भी शायद ही पराजित होता, यदि अपने छोटे भाई विभीषण को लात मारकर वह अपने से विलग नहीं करता। पृथ्वीराज और जयचंद की फूट ने हमें विदेशी आक्रमणकारियों का गुलाम बनाया तथा मीरजाफर का हमसे छिटक जाना अँगरेजों की दासता का कारण बना। जब हम हिंदू-मुसलमान एक रहे, तो हमने अँगरेज जैसे राजनीतिक धुरंधरों के छक्के छुड़ाए और जब आपस में लड़ने लगे, तब हमने भारतमाता की छाती के दो टुकड़े कर दिए। मुट्ठी-भर जापानियों और जर्मनों के सामने बड़ी-बड़ी शक्तियाँ साक्षात् दंडवत करती रहीं—इसका एकमात्र कारण है, उन देशों के लोगों में दृढ़ एकता।

अतः, आवश्यक है कि हम यदि परिवार में सुख, शांति, समृद्धि की त्रिवेणी लहराती हुई देखना चाहते हैं, तो परिवार के सदस्यों को एकता के दिव्यमंत्र से दीक्षित करें। यदि घर फूटेगा तो गँवार लूटेगा—इसमें कोई संदेह नहीं। यदि समाज में फूट हो, तो समाज कभी नहीं फूले-फलेगा। इसी प्रकार, देशवासियों में एकता खंडित हुई, तो देश पराजित एवं पदमर्दित होगा। हम भाषा, संप्रदाय, जाति, धर्म इत्यादि के नाम पर लड़ते हैं, अपनी शक्ति का विनाश करते हैं—यह राष्ट्र को अगति के गर्त में गिरा डालेगा। अब तो आवश्यक हो गया है कि हम समग्र संसार में एकता का शंख फूँकें और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में बँध जाएँ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परोपकार

[भूमिका, प्रेरणा, कर्तव्य और लाभ, उपसंहार]

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

अठारहों पुराणों में महाभारतकार महाकवि व्यास के दो ही सारवचन हैं—परोपकार से पुण्य होता है और परपीड़न से पाप। गोस्वामी तुलसीदास ने इसे ही इस प्रकार कहा—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

सचमुच भगवान व्यास के वचन बड़े ही मूल्यवान और विलक्षण हैं। परोपकार, अर्थात दूसरों की निःस्वार्थ भलाई से बढ़कर मनुष्य-जीवन की और कोई सार्थकता क्या हो सकती है? केवल अपने लिए तो नालियों के कीड़े-मकोड़े भी जी लेते हैं, किंतु मनुष्य वही है, जो मनुष्य के लिए जीता और मरता है। खाने-पीने और श्वास लेने का काम तो कुत्ते, मेढ़क और हाथी के द्वारा भी संपन्न होता है, किंतु वही नररत्न है, जो गोवर्द्धन-धारण द्वारा विपत्ति के प्रलयमेघ से दूसरों को बचा लेता है।

यदि हम आँखें खोलकर देखें, तो प्रकृति के स्वर्णपत्रों पर परोपकार की अनगिनत आकर्षक कहानियाँ अंकित पाएँगे। सर्वंसहा वसुंधरा स्वयं कष्ट सहती है और हमारे लिए चंदन का पालना ही नहीं बनती, वरन् माता की भाँति पालन-पोषण भी करती है। सूरज स्वयं दिनभर तपता रहता है और सारे संसार में ऊष्मा, प्रकाश एवं नवजीवन का संचार करता है। चाँद रातभर जागता है और हमें चाँदनी-की सौगात देता है। बादल अपने प्राणों में न मालूम कितनी बिजलियों की तड़प छिपाए रहता है, फिर भी संसार को जलदान के द्वारा संतृप्त एवं संजीवित करता है। हाँफती-दौड़ती सरिताएँ प्रियतम सागर से मिलने जाती हैं, लेकिन फिर भी वे मुक्तहस्त आमंत्रण लुटाती चलती हैं—'आओ, हमलोगों का जीवन तुम्हारे लिए, केवल तुम्हारे लिए है।' रसाल-पादप रसीले फलों से जब लद जाता है, तब वह झुककर उन्हें लुटाने के लिए लालायित रहता है। हरसिंगार जब फूलों से सज जाता है, तब हर दिशा को गंधपूरित कर देता है। इसलिए संत कबीर ने कहा है—

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर॥

मानव का गौरव मानव के भारवहन के सिवा और कुछ नहीं। दूसरों के दुःख सहने से बढ़कर मानवजीवन का और कोई सुख नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—

गौरव क्या है, जनभार वहन करना ही।
सुख क्या है, बढ़कर दुःख सहन करना ही॥

इसलिए प्रसादजी ने 'कामायनी' में श्रद्धा के मुख से मनु को उपदेश दिलवाया है—

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ॥

परोपकारी मनुष्य स्वार्थ के संकुचित घेरे से नहीं घिरता। वह कभी दूसरों को दुःख नहीं देना चाहेगा। उसका तन-मन हर क्षण दूसरों की चिंता में रमा रहेगा। ऐसे मनुष्यों के हृदय से विकारों की काई मिट जाती है, उसकी दुर्गंध समाप्त हो जाती है और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चरणामृत बाँटता चलता है। कोई जागरूक चाहे तो अपनी मूल्यवान मणि-माणिक्य से भर ले, कोई चाहे तो वरदानों के गंगाजल से अपने को अभिषिक्त कर ले।

'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम' का मंत्रजाप करनेवाले मलूकदास की तरह जो समयदेव के स्वागत के लिए तैयार नहीं रहते, उनका जीवन अभिशापों से भर जाता है, सुख-सुविधाओं से वंचित, नरक का कारागार हो जाता है।

आखिर यह जीवन है क्या? कुछ क्षणों का संघात ही न! प्रत्येक क्षण मानव को परमात्मा द्वारा दी गई सबसे बड़ी पूँजी है। एक-एक क्षण की पूँजी यदि हमने गँवा दी, तो जीवन का कारोबार ही चौपट हो जाएगा। यदि हमने समय का मधुर रस ठिकाने से नहीं पीया, तो समय ही सारा रस पीकर हमें चूसी हुई नारंगी की तरह एक किनारे फेंक देगा। कहावत है कि "लेने योग्य, देने योग्य तथा करने योग्य कार्यों का संपादन जब शीघ्रता से नहीं होता, तब उनका रस काल पी जाता है।" समय का कारवाँ सामने से गुजर जाने पर लाख गुहार मचाने पर भी लौटता नहीं। समय चूककर पछताने से क्या लाभ, जब काल की चिड़िया ही हमारे जीवन का खेत चुग गई।

का बरखा जब कृषी सुखाने।
समय चूकि पुनि का पछताने॥

—तुलसी

इसलिए महात्मा कबीर ने ठीक ही कहा है कि जो कल करना है, उसे आज करो, जिसे आज करना है उसे अभी, बिलकुल अभी करो—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होइगा, बहुरि करेगा कब्ब॥

पता नहीं, अगले क्षण कौन दैवी प्रकोप हमें निष्क्रिय बना जाए! अतः, एक-एक क्षण के सदुपयोग से हम अपने वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय जीवन की गगनचुंबी अट्टालिका का निर्माण कर सकते हैं। टालमटोल या आलस्य तो समय का सबसे बड़ा शत्रु है। कहा भी गया है, 'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः'। अर्थात, शारीरिक आलस्य मनुष्यों का सबसे बड़ा शत्रु है। मनबहलाव में भी ऐसे खेलकूद होने चाहिए, जिनसे हममें सहयोग और शारीरिक-मानसिक शक्ति का विकास हो। किंतु, गप-शप, ताश-शतरंज आदि तो मनबहलाव के नाम पर मीठे-धीमे जहर हैं, जिनमें हमारे समय और स्वास्थ्य का नाश होता है, हममें निठल्लेपन की आदत आती है।

अतः, वैयक्तिक जीवन हो अथवा सामाजिक, उसकी सफलता की एकमात्र कनक-कुंजी है—समय का सदुपयोग, एक-एक क्षण को अशर्फी की तरह न गँवाना। सोना ऐसे फेंक नहीं देते। समय ही सोना है (Time is money), अतः उसका दुरुपयोग हमें कंगाल बना देगा।

एक अँगरेज लेखक मेसन ने कहा है—जिस प्रकार सोने का प्रत्येक धागा मूल्यवान होता है, उसी प्रकार समय का प्रत्येक क्षण (As every thread of gold is valuable, so is every moment of time)। जो छात्र अपना समय गँवाते हैं, उनका परीक्षाफल उत्तम नहीं होता और फिर वे अपने जीवन में भी उत्तम न होकर निठल्ले होने के कारण उपेक्षा का कड़वा घूँट पीते रहते हैं। जो शिक्षक देर कर कक्षा में प्रविष्ट होते हैं, वे अपना समय तो नष्ट करते ही हैं, अपने छात्रों का भी समय नष्ट करते हैं और उन्हें दीर्घसूत्रता या लेट-लतीफी सिखाते हैं। जो नेता एक लाख की भीड़ में एक घंटा देर से आते हैं, वे राष्ट्र के एक लाख घंटे नष्ट करते हैं। उतने समय में देश में एक बड़ा कारखाना निर्मित हो सकता है, जिसके उत्पादन से पर्याप्त समृद्धि बरस सकती है। एक मिनट की मुस्तैदी से विजय का सेहरा सिर बँधता है और एक मिनट की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चूक से पराजय की कालिख लगती है। पाँच मिनट की कीमत न जाननेवाले ऑस्ट्रियन नेपोलियन से पराजित हुए और वही अपराजेय नेपोलियन अपने साथी ग्रूशी के पाँच मिनट देर करने के कारण बंदी बनकर अपमान की मृत्यु मरा। हम राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की पूजा करते हैं। हमने उनकी कमर में लटकती घड़ी चित्रों में देखी है। यही घड़ी उनकी जीवनसंगिनी थी—वे घड़ी-घड़ी की कीमत इसी से आँकते थे, क्षण का काम उसी क्षण पूरा करते थे।

गया धन, गया जन और गया स्वास्थ्य किसी प्रकार लौट भी सकता है, किंतु जो समय-प्रवाह एक बार गुजर गया, वह कभी नहीं लौटता। इसलिए किसी ने तो यहाँ तक कह डाला है कि समय सबसे महान है, परमात्मा से भी। भक्ति आदि साधनों से परमात्मा को तो बुलाया जा सकता है, किंतु कोटि उपाय करने पर भी बीता हुआ समय नहीं बुलाया जा सकता। जो व्यक्ति कठिनाइयों की छाती चीरते हुए, आलस्य की दीवार तोड़ते हुए, तेजी से छलांग मारते हुए समय की रेलगाड़ी पर सवार हो जाते हैं, वे अपने गंतव्य पर पहुँच ही जाते हैं, अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर ही लेते हैं। क्या आपने यह कहावत नहीं सुनी कि समय और सागर की लहरें किसी की प्रतीक्षा नहीं करतीं (Time and tide wait for no man)। जिस तरह वैयक्तिक जीवन समय की मर्यादा-रक्षा से बनता है, उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन भी समय-महिमा की अभिज्ञा से बनता है। समय की महत्ता को जाननेवाले जर्मनों और जापानियों ने एक-एक क्षण का सदुपयोग कर अपने देश को कुबेरपुरी बना लिया है।

अतः, वैयक्तिक और सामूहिक सफलता का एकमात्र रहस्य है—समय की पूजा, अर्थात, एक-एक पल का सदुपयोग। हम यदि एक-एक पल को साधना का दीप बना सकें, पूजा का पुष्प बना सकें, तो हमारा जीवन मंगलमय हो जाए, प्रभापूरित हो जाए, आनंद-गंध विह्वल हो जाए, इसमें कोई संदेह नहीं।

मित्रता

[प्रारंभ, सच्चे मित्र से लाभ, बुरे मित्र से हानि, उपसंहार]

भर्तृहरि ने कहा है कि जो सुख तथा दुःख में साथ दे तथा समान क्रियावाला हो, उसे मित्र कहते हैं। वस्तुतः, मित्रता दो हृदयों को बाँधनेवाली प्रेम की डोर है। मनुष्य जीवन के पथ पर एकाकी चलने में कठिनाई का अनुभव करता है, उसे वैसे व्यक्ति की खोज रहती है, जो उसके हर्ष और विषाद में साथ देनेवाला हो, जिसके समक्ष वह मनप्राणों की कोई लिपि गुप्त न रहने दे, जिसपर अपने विश्वास की दीवार खड़ी कर सके। अतः, मित्रता मन की प्यास है, जिसके लिए मनुष्य तड़पता रहता है और वह बड़ा ही भाग्यवान है, जिसकी प्यास बुझ जाती है। इसलिए, मित्रता का बड़ा ही गुणगान किया गया है। कवि दिनकर ने कहा है—

मित्रता बड़ा अनमोल रतन
कब इसे तोल सकता है धन ?

बाइबिल का कहना है, 'एक विश्वासी मित्र जीवन के लिए महौषध है' (A faithful friend is the medicine of life)। सच्चे मित्र जीवन में आनंद की वर्षा करते हैं। सन्मित्र जीवन के निराधार सागर में सुदृढ़ कर्णधार की भाँति प्रेम-नाव खेकर उस पार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लगा देते हैं। डिजराइली का कहना है कि एक सच्चा मित्र दैवी उपहार है। सैम्युल जॉनसन का कहना है कि मित्रता विचित्र स्वर्गीय वरदान है, भद्र मानस का आनंद और अभिमान है—यह विभूति केवल मनुष्यों और देवताओं को ही मिली है, अधोजगत् के प्राणी तो इससे वंचित ही रहे हैं।

यदि मित्रता असली हो, तो वह स्वर्गीय प्रकाश है, और नकली हो, तो नारकीय अंधकार। सच्ची मित्रता फॉसफोरस की तरह ज्योति फैलाकर मित्र के संकट के अंधकार को क्षणभर में दूर कर देती है। सज्जनों से मित्रता की छाया दोपहर के बाद की छाया की तरह बढ़ती जाती है। इसके विपरीत, दुष्टों से मित्रता सुबह की छाया की तरह पहले तो काफी बड़ी लगती है, लेकिन बीच दोपहर में ही छोटी हो जाती है। अतः, यह आवश्यक है कि हम मित्र के चयन में सावधान रहें।

वही सच्चा मित्र है, जो सदा मित्र की भलाई चाहता है, उसके लिए अपने प्राणों की आहुति देने के लिए भी तैयार रहता है। वह अपने मित्र से केवल धन ऐंठने के फिराक में नहीं रहता। वह बराबर अपने मित्र को बुरे मार्ग पर जाने से रोक कर सुपथ पर चलाने का प्रयास करता है। 'मानस' में गोस्वामीजी ने इस प्रकार कहा है—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
कुपथ निबारि सुपंथ चलावा। गुन प्रकटै अवगुनहि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सत मन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

—रामचरितमानस : किष्किंधा कांड

ठीक इसके विपरीत, कपटी मित्र बड़े घातक होते हैं। उनकी मित्रता केवल शब्दों की मित्रता होती है। ऐसे दगाबाज मित्रों के भावों में धोखा होता है, किंतु भाषा में सरलता रहती है। ये बिडालव्रती मित्र गोबर की बर्फी पर सोने का वरक लगाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। ये मित्र को ललकार कर आगे बढ़ा देते हैं, किंतु पीछे से लंगी मारने में इन्हें न संकोच होता है और न लाज ही लगती है। धन की वर्षा करते रहने पर ये बरसाती मेढक की तरह अनर्गल प्रशंसा तो करते रहते हैं, किंतु ज्योंहि संपत्ति का प्लावन अवरुद्ध हुआ, फिर ये कहाँ छिप जाते हैं, पता भी नहीं चलता। तात्पर्य यह कि मित्रों के पास ये तभी तक मँडराते रहते हैं, जब तक उनके पास लुटाने को पैसे होते हैं, किंतु दीनता और संकट में साथ छोड़ देते हैं। ये तो मीठे-धीमे जहर हैं, जो कभी मित्र की जान ले सकते हैं। शत्रुओं से रक्षा पा लेना आसान है, किंतु ऐसे कपटी कालनेमि मित्रों से तो बड़े सावधान व्यक्ति ही उबर सकते हैं। ऐसे मित्र सागर की तह में छिपी हुई चट्टान हैं, जो किसी समय जीवन के जलयान को जलमग्न कर दे सकते हैं। गोस्वामीजी ने ऐसे कपटी मित्र के बारे में कहा है—

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जा कर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥

—रामचरितमानस : किष्किंधा कांड

इसलिए 'हितोपदेश' में कहा गया है कि ऐसे मित्रों को उस कुंभ के समान छोड़ देना चाहिए, जिसके मुख पर तो दूध हो और नीचे विष भरा हो—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

इस प्रकार, हीरे-सोने की पहचान उतनी कठिन नहीं, जितनी किसी मनुष्य की। इसलिए बहुत परीक्षा कर, सोच-समझकर किसी को मित्र बनाना चाहिए। वे सचमुच

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ईश्वर की ओर से भाग्यशाली हैं, जिन्हें कोई सच्चा मित्र मिल जाता है। राम-सुग्रीव और कृष्ण-सुदामा की मिताई संपन्न से साधारण पुरुष की मिताई थी, फिर भी उसमें असाधारणता थी। समान पुरुषों की मिताई हो जाए, तो अच्छा, किंतु यदि असमान स्थितिवाले सहृदय लोगों में वह मित्रता हो, तो और भी अच्छा !

अध्यवसाय

[परिभाषा, महत्ता, उपसंहार]

'अध्यवसाय' शब्द 'अधि' और 'अव' उपसर्ग के पश्चात् 'सो' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के लगने से बना है—अध्यवसाय=अधि+अव+सो+धञ्। 'सो' धातु का अर्थ है—'समाप्त करना', 'अंत तक पहुँचना', 'लगातार चेष्टा करना', 'संकल्प करना' इत्यादि। इस प्रकार, 'अध्यवसाय' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—सतत यत्न अथवा निरंतर उद्योग। 'पुनः-पुनः चेष्टा करो', Try, try again का ही बीजमंत्र है—अध्यवसाय। कविवर वृंद ने इसलिए कहा है—

> चलै जु पंथ पिपीलिका, समुद्र पार ह्वै जाय।
> जो न चलै तौ गरुड़ हू, पैड़हु चलै न पाय॥

मनुष्य में प्रतिभा हो, परिस्थिति की अनुकूलता हो, आर्थिक संपन्नता हो, सुंदर स्वास्थ्य हो, किंतु उसमें अध्यवसाय—सतत प्रयत्नशीलता न हो, तो वह कदापि अपना लक्ष्यवेध नहीं कर सकेगा, वह सफलता की सुनहली मंजिल प्राप्त नहीं कर सकेगा। अतः, सफलता की जादुई कुंजी है—अध्यवसाय। स्वामी विवेकानंद ने ठीक कहा है—पवित्रता, धैर्य और अध्यवसाय—ये ही तीन सफलता के खंभे हैं। हर्डर का कथन है—जो अध्यवसायी है, वही राजमुकुट से सुशोभित किया जाता है। नेपोलियन की उक्ति है—विजयश्री उसकी दासी है, जो अध्यवसायी है। एक चिंतक ने कहा है कि अगर तूने स्वर्ग और नरक नहीं देखा है, तो समझ लो कि उद्यम ही स्वर्ग है और आलस्य नरक।

कहा गया है कि रोम एक दिन में नहीं बना था (Rome was not built in a day.)। इसी तरह, हमारे यहाँ का ताजमहल, मिस्र का पिरामिड तथा चीन की दीवार अनेक वर्षों के सतत परिश्रम के परिणाम हैं। उत्तरी ध्रुव का अन्वेषण या चाँद का सैर कोई एक घड़ी के कार्य नहीं हैं। सारे कार्य उद्योग-अध्यवसाय से ही सिद्ध होते हैं। सोते हुए सिंह के मुख में मृग आप-से-आप नहीं चला जाता—चाणक्य का ऐसा वचन है। अध्यवसायी मनुष्य के लिए सुमेरु की चोटी भी ऊँची नहीं है और उसके लिए रसातल भी अधिक गहरा नहीं है। अध्यवसायी मनुष्य समुद्र को भी अथाह नहीं मानता।

अध्यवसायी दुर्बल को शक्ति प्रदान करता है, दरिद्र को विश्वसंपत्ति प्रदान करता है, बंजर धरती को उपजाऊ बनाता है तथा काँटों से भरी रेगिस्तानी धरती को मनचाही वासंतिक सुषमा का उपहार देता है। संसार में जिन मनुष्यों के मस्तक यशस्तिलक से विभूषित हुए हैं, वे विफलता से कभी निराश नहीं हुए। नेपोलियन, गोखले, महात्मा गाँधी इत्यादि के जीवन में इसके अनेक दृष्टांत मिलते हैं। यदि महमूद गजनवी एक-दो बार की असफलता से उदास हो जाता, तो क्या वह भारतविजय कर सकता था? उसने सत्रहवीं बार चढ़ाई की—खंभे पर बार-बार चींटी द्वारा चढ़ने की चेष्टा से सबक लेकर। स्कॉटलैंड का राजा रॉबर्ट ब्रूस क्या कभी खोया हुआ राज्य प्राप्त कर सकता था,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यदि वह एक-दो बार की पराजय से ही हतोत्साह हो जाता? उसने सातवीं बार प्रयास किया और सफल हुआ। उसने एक मकड़े से, जो अपनी लार से बने धागे के सहारे वृक्ष पर चढ़ने की बार-बार चेष्टा कर रहा था, नसीहत पाई थी। आज मनुष्य की चिकित्सा, यात्रा, उत्पादन इत्यादि के जितने मशीनी या वैज्ञानिक साधन हैं, वे वैज्ञानिकों के अध्यवसाय की ही देन हैं। क्या कभी वायुयान पर चढ़कर गगनविहार किया जा सकता था, संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक विहंग की तरह उड़ा जा सकता था, यदि उड़ान भरने के सपने को सच करने की पहली ही चेष्टा में मानव टूट जाता, हार मान लेता? क्या चंद्रलोक कभी वास्तविकता के धरातल पर आ सकता था, यदि मानव ने अध्यवसाय न किया होता ?

अतः, यदि हम अपना वैयक्तिक विकास चाहते हैं, सामाजिक उन्नयन चाहते हैं, राष्ट्र की समृद्धि चाहते हैं या विश्व की प्रगति चाहते हैं, तो हमें अध्यवसाय को ही आधारस्तंभ बनाना पड़ेगा—उसे ही मूलमंत्र जानकर जाप करना पड़ेगा। कहा भी गया है—'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः' अर्थात् अध्यवसायी पुरुषसिंह ही संसार में किसी कल्याणकारी वस्तु को पा सकता है, उसका आविष्कार और निर्माण कर सकता है।

संगति

[प्रारंभ, सुसंगति से लाभ, कुसंगति से हानि, उपसंहार]

'संगति' का अर्थ है—'साथ'। मनुष्य का जीवन नीरस हो जाए, सूना हो जाए, यदि उसे किसी का साथ न मिले, उसे किसी की संगति न मिले। किंतु, हम किसकी संगति करें, किसकी संगति न करें—यह गंभीरतापूर्वक विचारणीय है।

उत्तम मनुष्यों की संगति से हमारा जीवन सुधर जाता है और हमारे जीवन में समृद्धि और सम्मान के सारे वातायन खुल जाते हैं। जैसे, खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, उसी प्रकार अच्छे मनुष्यों की संगति में हमारा रंग बदल जाता है, आचरण सुधर जाता है। काँच भी सूर्य की सुनहली किरणों का संस्पर्श पाकर मरकतद्युति प्राप्त कर लेता है, कीट भी सुमन की संगति से सुरों के सिर पर चढ़ता है। काला-कलूटा सस्ता लोहा जिस प्रकार पारस की संगति पाकर मूल्यवान दमकता सोना बन जाता है, उसी प्रकार एक साधारण मनुष्य भी महापुरुषों, ज्ञानियों, विचारवानों एवं महात्माओं के संग से बहुत ऊँचा उठ जाता है। कबीर ने ठीक ही लिखा है—

कबिरा संगति साधु की, हरै और की व्याधि।
संगति बुरी असाधु की, आठौं पहर उपाधि॥

गोस्वामी तुलसीदास ने सुसंगति को स्वर्ग और अपवर्ग से भी महत्त्वपूर्ण माना है। सत्संग तो पारसमणि है, जिसके कारण बुरे व्यक्ति भी कंचन की तरह मूल्यवान हो जाते हैं—

तात स्वर्ग, अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई॥

भर्तृहरि का कथन है—सत्संगति बुद्धि की जड़ता नष्ट करती है, वाणी को सत्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से सींचती है, मान बढ़ाती है, पाप मिटाती है, चित्त को प्रसन्नता देती है, संसार में यश फैलाती है। सत्संगति मनुष्य के लिए क्या नहीं करती?

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्॥

वानर-भालुओं को कौन स्मरण रखता है? किंतु हनुमान, सुग्रीव, अंगद, जांबवान—सभी अविस्मरणीय बन गए हैं, क्योंकि उन्होंने श्रीराम की संगति की थी। इसी तरह गौतम बुद्ध, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गाँधी इत्यादि के संपर्क में आकर कितनों के जीवन की गतिविधियाँ बदल गईं, कितने जीवन के मैदान में विजयी हुए तथा संसार के इतिहास में अमर हो गए।

इसी प्रकार, यदि मनुष्य कुसंगति में पड़ जाए, तो उसका सर्वनाश सुनिश्चित है। काजल की कोठरी में चाहे कैसा भी सयाना क्यों न चला जाए, उसे काजल की रेख अवश्य लग जाएगी। दूध जैसा पवित्र पदार्थ भी कलारिन के हाथ हो, तो मद समझा जाता है। रहीम ने ठीक ही लिखा है—

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि॥

अतः, कभी बुरे मनुष्य की संगति नहीं करनी चाहिए। एक लैटिन लोकोक्ति है—'यदि तुम सदैव उनके साथ रहोगे, जो लँगड़े हैं, तो तुम स्वयं लँगड़ाना सीख जाओगे।' जर्मन लोकोक्ति है—'जब फाख्ते का कौओं से संयोग होता है, तब उसके पैर श्वेत रह जाते हैं, किंतु हृदय काला हो जाता है।' इसलिए, महाकवियों ने कुसंगति के विरोध में जी खोलकर लिखा—

बरु भल बास नरक कर ताता, दुष्ट संग जनि देइ विधाता॥ —तुलसी

बसि कुसंग चाहत कुशल, यह रहीम अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बसा परोस॥ —रहीम

दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिए, कागा हंस न होय॥ —कबीर

अतः, हमारी सर्वतोमुखी प्रगति की स्वर्णिम कुंजियों में एक यह भी है—सुसंगति। 'संसर्गजाः दोषगुणाः भवन्ति'—संसर्ग से ही दोष-गुण होते हैं। बहुत प्रौढ़ हो जाने पर महात्माओं को भले ही कुसंगति का विष न व्यापे—'चंदन बिष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग', किंतु बच्चों एवं सामान्य मनुष्यों को सुसंगति बनाती है और कुसंगति बिगाड़ती है—इसमें कोई संदेह नहीं।

अतः, यदि हम लौकिक और पारलौकिक उन्नति चाहते हैं, तो संगति के महत्त्व को समझें—सुसंगति का मूल्यांकन करें। यह सुसंगति सचमुच सम्यक गमन, ज्ञानप्राप्ति, मोक्ष इत्यादि सभी अर्थों में हमें गति प्रदान करती है—यह बिलकुल सच है। अतः, हम जीवन के क्षण-क्षण को सुसंगति में ही बिताएँ।

एक घड़ी, आधौ घड़ी, आधौ में पुनि आध।
तुलसी संगति साधु की, हरै कोटि अपराध॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छात्र-शिक्षा-संबंधी निबंध

आदर्श छात्र

[आरंभ, गुरुसेवा, समाजसेवा, उपसंहार]

'छात्र' शब्द का अर्थ है—छत्र की तरह शीलवाला। छत्र, अर्थात् छाता स्वयं गर्मी और वर्षा के दुःख झेलता है, किंतु दूसरे को सुख पहुँचाता है। इस प्रकार, जो स्वयं कष्ट सहकर समाज, राष्ट्र एवं विश्व का कल्याण करे, उसे छात्र कहेंगे। किंतु, आज 'छात्र' शब्द विद्यार्थी के अर्थ में प्रचलित है। अतः, आदर्श छात्र वही है, जो सुयोग्य बनकर माता-पिता की प्रतिष्ठा बढ़ाए। उसका यह भी कर्तव्य है कि अध्ययन में मन रमाए। आगे चलकर वह अपने गुरु से प्राप्त ज्ञानराशि में चक्रवृद्धि करे। 'गुरु' शब्द का अर्थ है, जो अज्ञान का निवारण करता हो, अर्थात् जिसने अज्ञान के अंधकार में ज्ञान की ज्योति फैलाई हो। अतः, छात्रों को गुरु के प्रति तो अटूट श्रद्धा रखनी ही चाहिए। अच्छा छात्र आरुणि और एकलव्य को अपना आदर्श मानता है तथा गुरु-पद-नख-रज को अपने मस्तक पर शिव की विभूति की तरह रमाता है। जिन गुरुओं ने एक अक्षर से भी शिष्य का प्रबोध किया, उनके लिए पृथ्वी पर कोई पदार्थ नहीं, जिसे देकर ऋणमुक्त हुआ जा सके। छात्रों को कबीर की यह साखी कभी न भूलनी चाहिए—

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमरित की खान।
सीस दिए जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥

आदर्श छात्र विद्यार्जन के क्षेत्र में काकचेष्टा (कौए की तरह निरंतर चेष्टाशील होना), बकध्यान (बगुले की तरह पढ़ने में ध्यान लगाए रहना), श्वान-निद्रा (कुत्ते की तरह बहुत कम सोना), अल्पाहार (कम भोजन करना या मिताहारी होना) और गृहत्याग (घर की आसक्ति से रहित होना) का आदर्श अपनाता है। आदर्श विद्यार्थी फूलों की सेज पर नहीं पलता, वरन् कठिनाइयों के व्यूह से निकलकर अपना मार्ग बनाता है। उसे जीवन में एक ही वस्तु की बुभुक्षा होती है और वह है विद्या, उसे एक ही पदार्थ की पिपासा होती है, वह है ज्ञान! विद्योपार्जन के पथ में उसे चाहे कितने भी कष्ट उठाने पड़ें वह सभी को हँसते-हँसते झेल लेता है। कहा भी है—

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥

(सुखार्थी को विद्या कहाँ? विद्यार्थी को सुख कहाँ? सुख चाहे, तो विद्या छोड़ दे; विद्या चाहे, तो सुख त्याग दे।)

आदर्श छात्र जानता है कि विद्याप्राप्ति का कोई सरल संक्षिप्त मार्ग नहीं होता। दो-चार संभावित प्रश्न रटकर या इधर-उधर से चिट टपाकर वह उत्तीर्ण होने में विश्वास नहीं रखता; क्योंकि अधूरे ज्ञान से बढ़कर और कुछ खतरनाक नहीं है। उदाहरण के लिए, एक मेडिकल छात्र की कल्पना की जाए। कौन-सी बीमारी प्रमुख है, कौन-सी गौण ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यदि वह चुनकर केवल दो-चार बीमारियों के बारे में ही अध्ययन करे, तो कभी अच्छा डॉक्टर नहीं हो सकेगा। इससे न तो वह अपनी भलाई कर पाएगा और न समाज की ही।

आदर्श छात्र ब्रह्मचर्यव्रत में यदि भीष्म पितामह को अपना आदर्श रखते हैं, तो वीरता में गांडीवधारी अर्जुन को; यदि धर्मनीति में उनके लक्ष्य युधिष्ठिर हैं तो न्यायनीति में विदुर। उन्हें मन और मस्तिष्क—दोनों में संतुलन स्थापित करना होगा तथा अपने कार्यों से विश्व को वशीभूत करना होगा। आदर्श छात्र पुस्तकों को देवता मानता है। वह उन्हें सिरहाने तकिया नहीं बनाता, वरन् बड़ी ही आस्था से उनकी आराधना करता है। वह अपने पैसों को सिनेमा में, फैशन की चीजों में खर्च नहीं करता, वरन् नई-नई पुस्तकों में लगाता है। वह बराबर नई-नई पुस्तकों की खोज में रहता है।

वह स्वास्थ्य पर भी ध्यान देता है, क्योंकि जानता है, स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। वह जानता है कि जब तक शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा, तब तक ज्ञान का दीप भी नहीं जलाया जा सकता। वह उच्छृंखल, अनुशासनहीन नहीं होता। वह दूसरों की कुमंत्रणा पर नहीं चलता। वह अपने मन का वातायन उन्मुक्त रखता है—पढ़ता है, विचारता है और तभी किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है।

आज समाज में फूट एवं वैमनस्य का साम्राज्य हो गया है। दहेज-प्रथा जैसी अनेक कुरीतियाँ समाज को दीमक की तरह खाए जा रही हैं। यदि छात्र नेतृत्व नहीं लेंगे, तो समाज का भविष्य तमसाच्छन्न है। इतना ही नहीं, आज हमारी सीमाओं पर दुश्मन गिद्ध की तरह मँडरा रहे हैं। हम इतने स्वस्थ, सबल और अनुशासित हों कि शत्रुओं के अधबढ़े चरण तोड़ दिए जाएँ। हमें अपनी भारतमाता के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करना होगा। माखनलाल चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा है—

वे ही माता के रक्षक, वे ही सच्चे शिक्षार्थी।
वे ही लक्ष्यों के लक्षक, हैं भारतीय विद्यार्थी॥

इतना ही नहीं, आज विश्व के सामने अनेक समस्याएँ सुरसा की तरह मुँह फैलाए खड़ी हैं। सबल राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों को कुचल देना चाहते हैं—कहीं रंगभेद, कहीं जातिभेद, तो कहीं धर्मभेद की खाई मनुष्यता का मार्ग रोक रही है। अणुविस्फोट का अजगर तो हर क्षण प्राणों पर संकट का बादल बनकर छाया हुआ है। अतः, ऐसी घड़ी में छात्र अपनी शक्ति का दुरुपयोग तोड़-फोड़ में न करें। उन्हें अनुशासित होकर भूली-भटकी दुनिया को नई राह दिखानी है, नई मशाल जलानी है।

छात्र समाज के आशासुमन हैं, राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं, विश्व के प्रेरणाप्रदीप हैं; उन्हें यह न भूलना चाहिए कि आग में तपकर कनक कुंदन बनता है। यदि वे स्वयं साधना-अनल में तपेंगे नहीं, तो खरे बनकर कैसे निखरेंगे ?

आदर्श अध्यापक

[अध्ययन, शिष्य के साथ प्रेम, व्यापक दृष्टिकोण, उपसंहार]

आदर्श अध्यापक को परखने के कई मापदंड हैं, किंतु कुछ बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। आदर्श अध्यापक में ज्ञान की बड़ी ही तीव्र अगस्त्य-पिपासा होती है। वह 'यावज्जीवमधीते विप्रः' की सूक्ति को चरितार्थ करता है। वह सही अर्थ में विद्याव्यसनी होता है। वह दिन-रात अपने अध्ययन की परिधि का विस्तार करता है, अपनी शंकाओं के समाधान के लिए शास्त्रचिंतन किया करता है। नौकरी पा लेने पर जो अध्यापक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शास्त्रचिंतन से भागता है, दूसरों के द्वारा उँगली उठाए जाने पर भी चुप रह जाता है और केवल पेट पालने के लिए विद्या पढ़ाता है, ऐसा व्यक्ति पंडित नहीं, वरन् ज्ञान बेचनेवाला बनिया कहलाता है—

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितक्षिमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायां तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

आदर्श अध्यापक का काम एक ही है—अहरह ज्ञान की ज्योति विकीर्ण करना। रूफिनी ने कहा है—अध्यापक उस मोमबत्ती के सदृश है, जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है (The teacher is like the candle which lights others in consuming itself.)। अध्यापक को गुरु भी कहते हैं, 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है निरोधक। अर्थात्, गुरु वह है, जो शिष्य के अज्ञानांधकार को दूर करता हो। आदर्श अध्यापक या गुरु के लिए ही कहा गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

आदर्श अध्यापक शिष्यों के हृदय में शुभसंस्कारों के सर्जक के नाते ब्रह्मा हैं, उनके रक्षण-वर्धन के नाते विष्णु हैं तथा अशुभ संस्कारों, कुप्रवृत्तियों एवं अंतर्विकारों के अपाकरण के कारण साक्षात् प्रलयंकर शंकर हैं। जिस प्रकार कुम्हार बाहर से घड़े को ठोकता-पीटता है तथा भीतर से हाथ का सहारा देकर खोट निकालकर लोकोपयोगी घट का निर्माण करता है, उसी प्रकार आदर्श अध्यापक भीतर से अपनी सहानुभूति का सहारा देता हुआ, ऊपर से आवश्यक पड़ने पर वर्जना करता हुआ अपने शिष्य का शुभ-निर्माण करता है। कबीरदासजी ने लिखा है—

गुरु कुम्हार सिख कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर-बाहर चोट॥

ऐसे सुनिर्मित शिष्य ही राष्ट्र के भावी कर्णधार होते हैं, वे उसके सुदृढ़ निर्माता होते हैं, यदि अध्यापक अपने छात्रों का निर्माण ठीक से न करें तो राष्ट्र का भविष्य धूमिल हो जाए। महर्षि अरविंद ने ठीक ही कहा है—अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींचकर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं।

आदर्श अध्यापक अपने शिष्य को विद्युत्-यष्टिका से नहीं, वरन् प्रेम के जादू से वश में रखते हैं। उनका कार्य शिष्यों का वित्तापहरण नहीं, चित्तापहरण होता है।

आदर्श अध्यापक का शिष्य के साथ स्वामी-भृत्य अथवा जेलर-कैदी का संबंध नहीं होना चाहिए। जो अध्यापक अपने शिष्यों को निष्ठुर पिता के द्वारा उनके कारागार में धकेले हुए कैदी मानकर उनके साथ कठोर व्यवहार करते हैं, वे शिष्यों का निर्माण नहीं कर पाते। आदर्श अध्यापक अपने छात्रों को प्रियपात्र मानता है और उनकी तुष्टि के लिए हर संभव प्रयास करता है।

आदर्श अध्यापक कभी संकुचित दृष्टिकोण का शिकार नहीं होता। वह जातिवाद के विवाद की दलदल में कभी नहीं फँसता। वह संपन्न छात्रों पर कृपा और निर्धन छात्रों पर अकृपा नहीं करता। उसकी दृष्टि तो सम होती है। वह किसी सूतपुत्र कर्ण और अंत्यज एकलव्य को शिक्षा देने से इनकार नहीं करता। वह मेधावी छात्रों पर अनाक्रोश और मंदबुद्धि छात्रों पर आक्रोश नहीं करता। आदर्श अध्यापक का आचरण तो स्नेहमयी माता जैसा कोमल आचरण होता है। जैसे कोई माँ अपने रुग्ण दुर्बल बच्चे पर अधिक ध्यान रखती है, उसी प्रकार आदर्श अध्यापक अपने कमजोर छात्रों पर विशेष ध्यान देकर उन्हें उठाने की चेष्टा करता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आदर्श अध्यापक को विद्याव्यसनी, विनयी और निरहंकार के साथ-साथ अत्यंत चरित्रनिष्ठ होना चाहिए। यदि अध्यापक चरित्रहीन है, तो वह खारेपन से रहित नमक जैसा फीका होगा—ऐसा महात्मा गाँधी ने कहा है। यदि अध्यापक चरित्रवान है, तो वह अपने तेज से दूरस्थ छात्रों को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहेगा। चरित्रवान अध्यापक को देखकर विद्यार्थी में स्वयमेव श्रद्धा जागरित होती है और वह ज्ञानयज्ञ के आयोजन के लिए अपने को पूर्णतः न्योछावर कर देता है।

प्राचीन काल में अध्यापकों का बड़ा आदर था। उनके चरणों पर बड़े-बड़े राजाओं ने माथा टेका है। बड़े-बड़े धनुर्धर उनके समक्ष नतमस्तक हुए हैं। किंतु, आज की स्थिति अलग है। आज अध्यापक इतने अर्थाभाव से पीड़ित हैं, उनका महत्त्व इतना कम किया जा रहा है, ऊँचे-ऊँचे पद पर कुंडली मारनेवाले अधिकारी और मंत्री उन्हें इतना नीचा समझते हैं, उन्हें सरकार की ओर से इतनी कम सुविधाएँ दी जाती हैं कि आज आदर्श अध्यापक होने की संभावना कम होती जा रही है। हमारे समाज और हमारी सरकार को गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए, ताकि ऐसा वातावरण बन सके, जिसमें आदर्श अध्यापक बन सकें; क्योंकि उन्हीं अध्यापकों पर छात्रनिर्माण का भार है और उन्हीं छात्रों पर राष्ट्र का उज्ज्वल भविष्य निर्भर है। किंतु, महान वही है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों के चक्रवात में भी अपने को डाँवाँडोल नहीं होने दे, भयंकर-से-भयंकर झंझावात में भी अपनी निष्ठा के दीप को निर्वापित नहीं होने दे, प्रलोभन से प्रभंजन में भी अपने आदर्श के ध्वजदंड को झुकने नहीं दे।

स्त्रीशिक्षा

[आरंभ, कारण, समानाधिकार, सही दिशा, उपसंहार]

विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आएगी,
अर्द्धांगिनियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जाएगी।
सर्वांग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की,
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा वातकी।

—**मैथिलीशरण गुप्त**

आज शायद ही ऐसा कोई पोंगापंथी सिरफिरा व्यक्ति मिल जाए, जो स्त्रीशिक्षा का विरोध करता हो, क्योंकि यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो गई है कि समाज का रथ पुरुष और स्त्री—इन दोनों पहियों पर गतिमान रहता है। यदि एक पहिया दुर्बल हुआ, तो रथ का चलना ही रुक जाएगा। ये पहिए ठीक से चलें, इसके लिए शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा की रश्मियों से चित्त पर छाए हुए कुसंस्कारों का कुहासा छँटता है, उससे जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने का जीवट आता है, संस्कार और सुरुचि का अंकुर पनपता है, चरित्र की भित्ति सुदृढ़ होती है, चिंतन का क्षितिज फैलता है तथा विचारों का वैभव निखरता है। शिक्षा अपने पारस-परस से कुधातु को भी कीमती धातु बना देती है, अपने वरदान से किसी कंगाल को मालामाल कर देती है, उदात्त वृत्तियों को जगाकर अज्ञानांध जड़ मानव को वस्तुतः मानव कहलाने का अधिकारी बना देती है।

किंतु, स्त्रीशिक्षा की सही दिशा क्या हो—इसपर पुरुषों की ओर से ही नहीं, वरन् नारियों की ओर से भी विवाद का बवंडर खड़ा किया जा रहा है। स्त्रियाँ पुरुषों की तरह केवल मतदान में ही समानता नहीं चाहतीं, वरन् वे हर क्षेत्र में समानता की माँग करती हैं। कुछ पहले हजारों स्त्रियों ने न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज के सामने नारे लगाए हैं,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'हम घर से निकलकर संसार में आई हैं।' उनकी माँगे हैं—नौकरी का समान अवसर, गर्भपात की स्वाधीनता, अहरह खुले रहनेवाले शिशुपरिचर्या-केंद्र। राष्ट्रपति निक्सन ने अपने एक घोषणापत्र में कहा था कि स्त्रियों को देश के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में अभी और महत्त्वपूर्ण योग देना है। अमेरिकी सरकार ने एक बहुत बड़ी फर्म पर इसलिए मुकदमा चलाया कि वहाँ स्त्री-पुरुषों में भेदभाव बरता जा रहा था। फर्म में स्त्रियों की संख्या केवल दो सौ थी, जबकि पुरुषों की संख्या पाँच हजार दो सौ। स्त्री-पुरुष दोनों की नियुक्ति में समता बरतनी चाहिए। इधर बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ 'स्त्री-अधिकार-दिवस' का आयोजन कर रहे हैं तथा 'नारी-मुक्ति-दल' की भी स्थापना कर रहे हैं। अमेरिका की हवा हमारे देश में धीरे-धीरे आ रही है और यहाँ की नारियों ने भी कहना आरंभ किया है कि 'क्यों स्त्रियों को केवल टेलीफोन-ऑपरेटर, नर्स, स्वागत-कर्मचारी इत्यादि ही बनाया जाता है? संविधान में तो समता का अधिकार है, किंतु उसका पालन नहीं हो रहा है।'

अतः, जीविका और व्यवसाय के प्रश्न को लेकर स्त्रीशिक्षा पर गंभीरता से विचार करना होगा। क्या स्त्रियों को शिक्षा इसलिए दी जाए कि हर क्षेत्र में, जहाँ पुरुष कार्य करते हैं, स्त्रियों को भी नियुक्ति देकर सामाजिक जीवन को नितांत नूतन रूप दिया जाए? पुरुष का सनातन तर्क है कि दिनभर का थका-हारा वह जब पहली पाली में काम कर अपने घर लौटता है, तब आवश्यकता होती है कि कोई अपनी मीठी मुस्कानों से उसके मुरझाए जीवन में सरसता बिखेर दे, किंतु घर आने पर यदि उसे मालूम हो कि उसकी अर्धांगिनी अभी-अभी दूसरी पाली में ड्यूटी करने चली गई है, तो उसकी क्या स्थिति होगी? अतः, यह समानता का अधिकार दिलानेवाली शिक्षा—एक ही प्रकार की नौकरी दिलानेवाली शिक्षा उसके हित किस काम की हुई? किंतु साथ ही, स्त्रीपक्ष से भी हमें सोचना है कि स्त्री मातृत्व से पारिवारिक-सामाजिक मर्यादा तक की धुरी है और इस नाते उसका समान अस्तित्व, व्यक्तित्व और अहम है। अतः, स्त्रीशिक्षा ऐसी हो कि वह जहाँ पुरुष के मानसिक तनाव को कम कर सके, वहीं पारिवारिक आजीविका में सहायक और आत्मनिर्भर करानेवाली हो सके। यदि ऐसी शिक्षा नहीं हुई, तो हताश और कुंठाग्रस्त नारी आत्महत्या का आयोजन करेगी ही।

आज मशीन का युग है। मशीन शारीरिक बल से नहीं, बल्कि हुनर जानने-सीखने से चलती है। घरेलू पैमाने पर मशीनों से काम कर स्विट्जरलैंड और हमारे ही एशिया के जापान में औरतों ने घर का पूरा भार सँभाल लिया है और परिवार तथा देश को उन्नत करने में पुरुषों का हाथ बँटाया है। फिर, स्त्रियाँ शारीरिक रूप से स्वस्थ और सशक्त हों—यह तो अच्छी बात है; इससे तो घर का काम अच्छी तरह निभेगा और भावी संततियाँ भी स्वस्थ तथा सशक्त होंगी। जिन बच्चों ने स्वस्थ, सशक्त, विदुषी और हुनरमंद माताएँ पाई हैं, वे ही बच्चे हर देश के अच्छे नेता, वीर योद्धा और संचालक-आविष्कारक बने हैं, यह भी क्या अब प्रमाणित करने को बाकी है?

परीक्षा

[आरंभ, कारण, लाभ, दोष, उपसंहार]

परीक्षा !

हाँ ! परीक्षा ! छात्र के आनंदमय जीवन में काली बदली की तरह घिर जानेवाली,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उनके जीवन के लहलहाते खेतों पर ओले की तरह बरस जानेवाली, उनकी मधुर निद्रा में दुःस्वप्नों की तरह छाकर उचाट ला देनेवाली, समता की भीत पर विषमता की काली रेखाएँ खींच देनेवाली, उत्तमांक न लाने पर शिक्षकों और अभिभावकों की कुटिल भौंहों का निशाना बनानेवाली ! तो क्या परीक्षा सचमुच छात्रों के लिए विषवल्लरी है ? क्या परीक्षा सचमुच निरर्थक है, महत्त्वशून्य है ?

नहीं—मानव-जीवन में—विशेषतः छात्रजीवन में परीक्षा की आवश्यकता तो है ही। यदि परीक्षा न हो, तो छात्रों की योग्यता का पता ही न चले। परीक्षा वह कसौटी है, जिसपर खरे और खोटे सोने की जाँच होती है, यह वह तराजू है, जिसके द्वारा छात्रों के ज्ञान के भारीपन और हलकेपन की जाँच होती है। योग्यता का पता लगाना इसलिए जरूरी है कि किस व्यक्ति को कैसा काम दिया जाए। प्रतिभाहीन, क्षमताहीन, बिलकुल सामान्य व्यक्ति को यदि ऐसा काम दिया जाए, जिसमें कुशाग्रबुद्धि की आवश्यकता हो, तो सब गड़बड़ हो जाएगा, समाज और सरकार का काम ठीक से नहीं चलेगा। मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धिक्षमता समान नहीं होती। युवकों की तुलना यदि मतवाले मातंग से की जाए, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यदि उनके ऊपर परीक्षा का अंकुश न रहे, तो वे अपना अधिकांश समय मौज-मस्ती में ही गुजारें। परीक्षा की तलवार जब सर पर लटकने लगती है, तब वे सावधान हो जाते हैं और अपनी योग्यता की सुरक्षा के लिए पढ़ाई-गुनाई में लग जाते हैं। परीक्षा के बहाने छात्र बहुत-कुछ ज्ञान अर्जित कर लेते हैं। अतः, इस लगाम का रहना जरूरी है, नहीं तो वे मुँहजोर तुरंग की भाँति बेकाबू हो जाएँगे।

यदि परीक्षा न हो, तो फिर प्रतियोगिता की भावना का विकास ही न हो। मानवमात्र के विकास से ही समाज, राष्ट्र और विश्व का विकास होता है। अतः, यदि परीक्षाएँ न हों, तो प्रतियोगितामात्र का ही विकास न होगा और इससे न तो मनुष्य की बुद्धि को चुनौती मिलेगी, न इसके लिए वह चेष्टा करेगा, न परिश्रम करेगा, न अध्ययन करेगा और इसका परिणाम होगा कि मानव-समाज के विकास के सारे द्वार अवरुद्ध हो जाएँगे। परीक्षा से उपस्थित या नियत समय में अपने अध्ययन के सार को सफाई से व्यक्त करने की आदत बनती है। आवश्यक और अनावश्यक के अंतर को भी परीक्षा के द्वारा ही समझने का अवसर मिलता है। किसी विषय पर वस्तुनिष्ठ दृष्टि से विचार करने का कौशल भी हम परीक्षा द्वारा ही सीखते हैं। अतः, परीक्षा कोई भयोत्पादिनी दानवी नहीं, जो हमारे सारे सुखों को निगल जाने के लिए अपना विकराल मुँह फैलाती हो, वरन् यह वह देवी है, जो हमें उन्नति के स्वर्णिम शिखर पर ले जाने के लिए गुप्त द्वार खोलती है। परीक्षा ऐसी किरणमाला है, जो हमारी संभावनाओं के शतदल को प्रस्फुटित करती है।

वर्तमान परीक्षा-पद्धति में एक नहीं, अनेक दोष हैं, एक या दो वर्ष के भीतर केवल एक बार परीक्षा होने के कारण शिक्षकों एवं छात्रों का ध्यान परीक्षोत्तीर्णता की ओर ही रहता है, इसलिए वे केवल प्रमुख अंशों का तोतारटंत कराते-करते हैं। छात्रों का ध्यान चुने हुए सीमित अंशों की ओर होता है, इसलिए उनके ज्ञान के क्षितिज का विस्तार नहीं होता। ज्ञान तो अखंड है, असीम है, उसे दो-तीन प्रश्नों की परिधि में बाँध देने से ही शिक्षास्तर का इतना ह्रास हुआ है।

दूसरी बात है कि इस परीक्षा के द्वारा छात्रों की प्रतिभा का उचित मूल्यांकन भी नहीं हो पाता है। बारह-चौबीस महीनों की पढ़ाई को केवल एक बार कुछ प्रश्नों द्वारा जाँच लेना संयोग पर अधिक निर्भर होता है। ऐसी परीक्षा बस एक द्यूतक्रीड़ा बन जाती है, एक लॉटरी भर रह जाती है। जिसकी गोटी बैठ जाए, जिसको नंबर आ जाए, उसका बेड़ा पार !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तीसरी बात यह है कि सालभर छात्र स्वस्थ हो, किंतु यदि परीक्षा के समय बीमार पड़ जाए, उसके घर कोई दुर्घटना घट जाए, कोई पारिवारिक उलझन आ जाए, कोई सामाजिक तनाव उत्पन्न हो जाए, रास्ते में रिक्शा उलट जाए, बस में देर हो जाए, सुस्त घड़ी धोखा दे जाए, तो मेधावी-से-मेधावी छात्र भी उत्तम अंक या उत्तम श्रेणी नहीं ला पाएगा। वर्षभर के सारे परिश्रम पर क्षणभर में पानी फिर जाएगा। उसका स्थान बहुत नीचे हो जाएगा और दुनिया की नजर में वह बड़ी ही निम्न श्रेणी का छात्र माना जाएगा। अच्छी सेवाओं में उसके लिए 'प्रवेशनिषेध' की तख्ती टँग जाएगी।

छात्र परीक्षा में उत्तम होना चाहते हैं, यह अच्छी बात है, किंतु इसके कारण कभी-कभी उनमें संकीर्ण मनोवृत्ति आ जाती है। वे अपने मित्रों से बहुत दुराव-छिपाव रखने लग जाते हैं। उन्हें वे कुछ सिखाना-बताना पाप समझते हैं। इतना ही नहीं, वे उन्हें गुमराह, दिग्भ्रांत भी करना चाहते हैं। स्वयं रात में उठकर पढ़ लेंगे, किंतु जो छात्र रात में जगकर पढ़ नहीं पाता, उसकी पढ़ाई में विघ्न डालेंगे। इतना ही नहीं, ये पैरवी तथा अन्य उपायों से अपने मित्र को गिराना तक चाहेंगे। अतः, इस प्रकार की परीक्षा युवकों में स्वस्थ भाव उत्पन्न नहीं करती, वरन् एक संकुचित-संकीर्ण निम्न मनोवृत्ति का ऐसा पौधा रोपती है, जिसके विषफल से समाज विषाक्त हो जाता है।

इस प्रकार की परीक्षा में अच्छा-बुरा होने का कुछ श्रेय परीक्षकों की मनोवृत्ति और मनःस्थिति पर भी निर्भर होता है। यदि उनकी मनःस्थिति ठीक रहती है, तो उत्तरपुस्तिकाओं की ठीक जाँच होती है, यदि नहीं, तो जाँच भी ठीक से नहीं होती। कुछ परीक्षक बड़े सनकी होते हैं। उनकी कुछ अपनी सीमाएँ हैं, उत्तरों की बँधी-बँधाई पद्धतियाँ हैं। यदि उत्तर उनके मनोनुकूल नहीं है, तो वे छात्रों को बहुत बुरा अंक देते हैं। एक ही उत्तरपुस्तिका में 17 से 71 का और 71 से 17 का अंतर देखा गया है। फिर, एक ही परीक्षक यदि दो विभिन्न मनःस्थितियों में उत्तरपुस्तिकाएँ देखता है, तो भी उसके अंक देने में पर्याप्त अंतर होता है।

ये तो आधुनिक परीक्षा के कुछ मूलभूत दोष हैं, किंतु कुछ सामाजिक दोष भी आ गए हैं। कहीं-कहीं सामूहिक रूप से चोरी कराई जा रही है। लाउडस्पीकर पर उत्तर लिखाया जा रहा है, पुस्तकें और चिटें दी जा रही हैं, परीक्षा भवन में निरीक्षक सहायता कर देते हैं। किंतु ऐसे भी केंद्र हैं, जहाँ सख्ती बरती जाती है। जहाँ सख्ती बरती जाती हो, वहाँ अच्छे-से-अच्छे छात्र भी उतना अच्छा नहीं कर पाते, किंतु जहाँ चोरी कराई जाती है, प्रायोगिक परीक्षा में बहुत अंक दिलाया जाता है, वहाँ के बुरे छात्र भी उत्तम अंक पाते हैं। फिर, कुछ छात्रों के माँ-बाप अपने पद एवं पैसे के द्वारा परीक्षकों को प्रभावित करते हैं और अधिक अंक दिला लेते हैं। अतः, आज वस्तुतः अच्छे लड़के झक मारने लगे हैं और बुरे लड़के मेडिकल और इंजीनियरिंग तक में दाखिला पा रहे हैं। यह परीक्षा है या मजाक—इसे आसानी से समझा जा सकता है।

अतः, इस परीक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन करना होगा। वर्ष या दो वर्ष में परीक्षा न लेकर मासिक या आवधिक परीक्षा लेनी होगी। वर्ग में ही कार्य कराकर, वहीं अंक देकर, छात्रों का रेकार्ड रखना होगा। परीक्षा में प्रश्न की पद्धति बदलनी होगी। लंबे-लंबे प्रश्नों के बदले छोटे प्रश्न देने होंगे। परीक्षा-भवन में पुस्तक ले जाने पर कोई नियंत्रण नहीं रखना होगा। साक्षात्कार और मौखिक परीक्षा पर भी थोड़े अंक रखने होंगे। स्तर-पद्धति (grade system) चलानी पड़ेगी। ऐसी पद्धति निकालनी होगी, जिससे अधिक-से-अधिक निष्पक्षता बरती जा सके।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक यह परीक्षा केवल गंदगी है, मजाक है, सुविधा-प्राप्त लोगों का खिलवाड़ है। हमारी परीक्षा-पद्धति पर ही देशवासियों की शिक्षा निर्भर है और अच्छी शिक्षा पर ही हमारे देश का भविष्य—यह हमें सदा स्मरण रखना चाहिए।

युवा-असंतोष : कारण और समाधान

[प्रारंभ, कारण, समाधान, उपसंहार]

ऊपर से तो ऐसा लगता है कि हमारा देश एक मजबूत केंद्रीय शासन के अंदर प्रशांत और प्रसन्न है, किंतु थोड़ा-सा भी गौर करने पर ऐसी बात दिखाई नहीं पड़ती। सारा देश असंतोष—विशेषतः युवा असंतोष के ज्वालामुखी पर बैठा है। इसी के परिणामस्वरूप दिन-रात आंदोलन के तप्त लावे बिखरते हुए दीख पड़ रहे हैं। यह युवा पीढ़ी आजादी के पश्चात् उत्पन्न नई पीढ़ी है। यह पीढ़ी विश्वविद्यालयों में है, कल-कारखानों में है, विभिन्न नौकरियों तथा व्यवसायों में है। यह पीढ़ी देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, महँगाई, गरीबी, पक्षपात इत्यादि को देखकर अपना रोष व्यक्त कर रही है।

इसी रोष के प्रमाण हैं, विभिन्न कार्यालयों, कारखानों एवं प्रतिष्ठानों में हड़ताल, तालाबंदी, घेराव और प्रदर्शन। इसी रोष के कारण बस जलाए जा रहे हैं, कुलपतियों पर प्रहार किए जा रहे हैं, विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में तालाबंदी की जा रही है, परीक्षाओं का बहिष्कार किया जा रहा है। दिन-रात मशाल-जुलूस और कफन-जुलूस ! देश की सुरक्षा-शक्ति के साथ युवाशक्ति का कदम-कदम पर टकराव, शासन की दमन-नीतियों का डटकर विरोध। लगता है, देश प्रलयंकर शंकर के भीषण तांडव का सारा सरंजाम कर रहा है।

युवा असंतोष का एक ही कारण नहीं है। युवा असंतोष के अनेक महत्त्वपूर्ण कारण हैं। विश्वविद्यालय के रंगीन स्वप्नों का शीशमहल जो कभी युवकों को मोहता था, अब उन्हें मोह नहीं पाता; क्योंकि वे जानते हैं कि विश्वविद्यालय के बाहर निकलकर वे करेंगे क्या। उनके अग्रज उपाधिपत्र को ताबीज बनाए सड़कों पर धूल फाँक रहे हैं, कार्यालयों की खाक छान रहे हैं। कुछ लोगों को पैरवी, पैसा, जाति और गुट के नाम पर भले ही नौकरियाँ मिल जाएँ, किंतु अधिकांश युवकों का भविष्य अंधकारमय है। अपने भविष्य को अनिश्चय के कुहरे से घिरा पाकर, अपने ऊपर बेरोजगारी की नंगी तलवार लटकती देखकर उनका मन-प्राण बेचैन हो उठता है। उनके भीतर अशांति का कड़ाह खौलने लगता है। निराश और हताश, असंतोष और अशांति में झूलते हुए वे तरह-तरह के उत्पात पर उतारू हो जाते हैं। अपनी ऊर्जा को वे तोड़-फोड़ में लगाते हैं, दीक्षांत-समारोहों के अवसर पर 'डिग्री नहीं, नौकरी चाहिए' का नारा लगाकर कुर्सियाँ उछालते हैं, सजावट की झंडियाँ फाड़ते हैं, इधर-उधर की तख्तियाँ नोचते हैं।

इतना ही नहीं, पहले युवकों को विश्वास था कि उन्हें उनकी प्रतिभा और योग्यता, त्याग और तपस्या का पुरस्कार मिलेगा। उनका यह विश्वास आज छिन्न-भिन्न हो गया है। सत्ता के ऊपर आज ऐसों का अधिकार है, जिन्होंने नाजायज तरीकों से धन बटोर लिया है, जिन्होंने जाति, नाते-रिश्ते, पैसे और गुंडों की बदौलत सत्ता की नकेल अपने हाथ में कर ली है। भ्रष्ट राजनीतिज्ञों ने नई प्रतिभाओं के लिए राजनीति का भी फाटक बंद-सा कर दिया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सत्ताधारी राजनीतिज्ञों और विपक्षी राजनीतिज्ञों की शतरंज-चाल के लिए युवा-पीढ़ी मुहरे का काम कर रही है। बहुत-सारे नवयुवक भी सस्ते प्रलोभनों पर इनके इशारे पर कठपुतली की तरह नाच रहे हैं। विधानसभाओं या संसद में गालीपुराण बाँचनेवाले या कुर्सी उछालनेवाले देश के भाग्यविधायकों की नकल पर चलनेवाले कुछ नवयुवक भी ऐसी अव्यवस्था के जनक होते जा रहे हैं।

युवा पीढ़ी के सामने देश की विकराल समस्या समाधान माँग रही है। शासन-सिंहासन पर कुंडली मारकर बैठनेवाले आज इंद्रासन का सुख लूट रहे हैं। बड़े व्यापारी, तस्कर-बादशाह और ठेकेदार मौज-मजे की जिंदगी बिता रहे हैं। बड़े-बड़े अधिकारी रिश्वत के बल पर मोटे होते जा रहे हैं। इधर देश का औसत आदमी अभाव, गरीबी, बेकारी, महँगाई और भ्रष्टाचार की चक्की में पिसता हुआ रौरव नरक की जिंदगी जी रहा है। ये युवक अपने घर, अपने समाज, अपने देश की दुर्व्यवस्था देखकर उत्तेजित न हों, यह भी संभव नहीं है।

इसलिए असंतोष के कारणों को समाप्त किए बिना देश में शांति स्थायी नहीं हो सकती। अतः, शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी, जिससे कोई बेरोजगार न रहे। समाज में ऊँच-नीच, गरीब-अमीर के बीच की खाई पाटनी होगी। देश से गरीबी मिटानी होगी, महँगाई की राक्षसी का वध करना पड़ेगा। मनुष्य की उन्नति और प्रतिष्ठा जाति, पैसे, पैरवी पर नहीं, वरन् उसकी मेधा पर हो—ऐसी स्वच्छता बरतनी होगी, गणतंत्र को गुणतंत्र पर आधृत करना होगा। युवाशक्ति यदि एटम-नापाम और हाइड्रोजन बम का मिलाजुला रूप है, तो वह सत्यं, शिवं सुन्दरम् का स्वरूप भी। यदि उसके एक हाथ में कठोर कृपाण है, तो दूसरे हाथ में अमृतकलश भी। यदि हमारे राष्ट्र के विधायक चाहते हैं कि हमारे देश में स्वर्गीय सुषमा और शांति परिव्याप्त हो, तो आवश्यक है कि युवाशक्ति का उपयोग ध्वंसलीला के लिए नहीं, वरन् निर्माण के लिए करना पड़ेगा।

छात्र, राजनीति और अनुशासनहीनता

[प्रारंभ, राजनीति से हानि, राजनीतिक जागरण, उपसंहार]

छात्र अपने राष्ट्र के कर्णधार हैं, उसकी आशाओं के सुमन हैं, आकांक्षाओं के आकाशदीप हैं। अतः, छात्रों के जीवन पर ही समाज और राष्ट्र का जीवन निर्भर है। छात्रजीवन मानवजीवन के ग्रंथ का प्राक्कथन होता है, यह मानवजीवन की भव्य अट्टालिका का आधारस्तंभ होता है। इसलिए, यह बहुत आवश्यक है कि संभावनाओं से भरे हुए छात्रसमुदाय के अपरिमित शक्तिस्रोत का उपयोग निर्माणकार्य में किया जाए, न कि उसे ध्वंसकार्य में विनष्ट कर दिया जाए।

तो क्या छात्रों के विकसनशील सुमनसदृश जीवन को यायावर जीवन को आँवें में झोंक दिया जाए, क्या उनके साधनशील जीवन को राजनीति के अंधकूप में भटकने के लिए छोड़ दिया जाए, क्या उनके तपःशील जीवन को प्रलोभनों के पठार में भटका दिया जाए—ये प्रश्न हमारे समक्ष बार-बार उभरते हैं। लोकमान्य तिलक ने कभी कहा था कि राजनीति साधुओं के लिए नहीं है। डिजराइली राजनीति को द्यूतक्रीड़ा मानते हैं (There is no gambling like politics.)। एक विचारक ने कहा है—राजनीति लफंगों का खेल है (Politics is the game of scoundrels.)। इतना ही नहीं, राजनीति में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुंज की पुष्पशय्या जल उठती है, लाल फूल अंगारों का रूप धारण कर लेते हैं और शीतल समीरण सर्पों का फुफकार बन जाता है। राजनीति वारांगना है, जिसका व्यवहार अनेक प्रकार से किया जाता है; कहीं वह झूठी, तो कहीं सच्ची, कहीं कठोर, तो कहीं प्रियभाषिणी, कहीं हिंसक, कहीं दयालु, कहीं कृपण, तो कहीं उदार, कहीं अधिक द्रव्य व्यय करनेवाली, तो कहीं बहुत संचय करनेवाली होती है।

तो क्या छात्र अपने अध्ययन एवं ज्ञानवर्धन के अमूल्य समय को ऐसी ही राजनीति में नष्ट करें? सधे हुए राजनीतिज्ञ खेलाड़ी छात्रों को बहकाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। अपनी कुर्सी बरकरार रखने के लिए वे छात्रों को अपने चुनाव-युद्ध का सैनिक बनाते हैं, किसी नेता या दल को अप्रतिष्ठ करने के लिए उनसे नारे लगवाते हैं, उसके प्रभाव को कम करने के लिए उकसाते हैं, तोड़फोड़ करवाते हैं; सरकारी भवनों, कार्यालयों, बसों तथा गाड़ियों में आग लगवाते हैं। जब वे राजनीतिज्ञ मंत्री या मुख्यमंत्री हो जाते हैं, तब फिर छात्रों से किए गए अपने वायदे बिलकुल भूल जाते हैं। तब तो उन्हें गोटी बिठाने, तिकड़म भिड़ाने, भोजन और भ्रमण-भाषण-उद्घाटन से फुर्सत कहाँ मिलती है कि वे छात्रों की पकड़ में आएँ। ऑस्टिन ने लिखा है—"राजनीतिज्ञ पारे की तरह हैं। अगर तुम उसपर उँगली रखने की कोशिश करो, तो उसके नीचे कुछ नहीं मिलता।"

छात्रों के बीच जो अनुशासनहीनता की बीमारी फैल रही है, उसके अनेक कारणों में एक कारण क्षुद्र राजनीति भी है। मेधावी छात्र अपना अध्ययन बंद कर मध्य-रात्रि में दीवारों पर अनाप-शनाप नारे लिखने में अपना बहुमूल्य समय बरबाद कर रहे हैं। चुनाव में विजय पाने के लिए छात्र बूथों पर भेज दिए जाते हैं, ताकि उनके पक्ष में मतपत्र पर ठप्पा मारकर मतदान-पेटिका में गिरा दें। इस प्रकार छात्र—जिसका अर्थ ही है छत्र की तरह शीलवाला, अर्थात संतप्त की रक्षा करनेवाला—आज रक्षा के बदले अनिष्ट करने लगे हैं। वे राजनीतिज्ञों के हाथ के हथियार बन गए हैं, उनके कठपुतले बनते जा रहे हैं और अनुशासनहीनता की विभीषिकाएँ उपस्थित करते रहते हैं। छात्र के लिए दूसरा शब्द है 'शिष्य'। शिष्य का अर्थ है—शासन मानने योग्य। किंतु, आज के शिष्यों को कौन शासित कर पा रहा है? वे तो स्वयं अपने शिक्षकों पर शासन कर रहे हैं। उन्हें कुछ राजनीतिज्ञों से घेराव का गुरुमंत्र मिल गया है। सालभर पढ़ने-लिखने से वास्ता नहीं रह गया है, सिनेमा और फैशन से फुर्सत नहीं है, जब परीक्षा का भयावना भूत उनके सामने अपनी डरावनी छायाएँ फैलाने लगता है, तब बस परीक्षा-संचालक को, कुलपति को घेर लिया, तंग किया, उनके विरोध में नारे लगाए, उन्हें धमकाया और परीक्षा की मनचाही तिथि रखा ली। उसमें भी जब नहीं लिख पाए और पुर्जियाँ पकड़ी गईं, तब अपने गुरु के सीने पर छुरे की नोंक भिड़ा दी। आरुणि, अर्जुन और एकलव्य जैसे छात्रों की उज्ज्वल परंपरा सिर धुनने लगी, छात्रजीवन के सुनहरे पृष्ठ पर ऐसा धब्बा लगा दिया गया, जिसे हिंद महासागर का सारा जल भी धोने में समर्थ नहीं हो पाता है। किंतु, राजनीतिज्ञों को यह समझना चाहिए कि ये छात्र एक-न-एक दिन भस्मासुर की तरह उन्हीं के माथे पर हाथ फेरेंगे। छात्रों को भी महात्मा गाँधी का यह कथन स्मरण रखना चाहिए कि अनुशासन के बिना न तो परिवार चल सकता है, न संस्था या राष्ट्र ही। वस्तुतः, अनुशासन ही संगठन की कुंजी और प्रगति की सीढ़ी है। अनुशासनहीन छात्र-समुदाय से राष्ट्र की इमारत का शीराजा ही बिखर जाएगा, इसमें संदेह नहीं।

अतः, स्पष्ट है कि छात्र इस राजनीति की दलदल में फँसकर अपना समय तो गँवाते ही हैं, अनुशासनहीनता का सबक भी सीखते हैं। किंतु, एक दूसरा पहलू भी है,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिसपर गंभीरता से विचार करना चाहिए। हमारा देश गणतंत्र-पद्धति में विश्वास करता है और हमें वयस्क-मताधिकार प्राप्त है। हमारे देश में 21 वर्ष की उम्र का हर नवयुवक चुनाव में अपना मत दे सकता है। इधर मतदान की वयःसीमा घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है। वह भारत सरकार ने मान ली है।

छात्रजीवन में शुद्धता एवं पवित्रता रहती है। उनमें पूर्वग्रह अधिक नहीं रहता। छात्रों का मस्तिष्क विकारग्रस्त नहीं रहता। उनमें आदर्श और सत्य के प्रति निष्ठा भी रहती है। वे भ्रष्टाचारों एवं अनाचारों की परिवृद्धि नहीं चाहते हैं। उनमें स्वार्थ और संकीर्णता का विषबीज नहीं पनप पाता। अतः, उन्हें अपने अध्ययन-काल से ही देश की वास्तविक स्थिति की जानकारी रखनी चाहिए। उन्हें उसी समय से अपने निष्पक्ष विचारों को पत्र-पत्रिकाओं, यूनियनों, रेडियो-टेलीविजनों के माध्यम से व्यक्त करते रहना चाहिए, ताकि स्वस्थ चिंतन और राष्ट्रहित को बल मिल सके। उन्हें किसी भय से अपने विचारों पर परदा नहीं डालना चाहिए।

अतः, छात्रों को अध्ययनकाल में कुरूप राजनीतिक आंदोलन तथा भावनात्मक उत्तेजनाओं की रौ में नहीं बहना चाहिए। इससे उनके चारित्रिक एवं ज्ञानात्मक निर्माण में व्यवधान उपस्थित होता है। किंतु, राष्ट्रीय संकट आने पर उन्हें अपना दायित्व तो पूरा करना ही चाहिए। साथ-ही-साथ, राष्ट्र के भावी निर्माता बनने की उन्हें पहले से अच्छी भूमिका निभानी चाहिए और एक अनुशासनबद्ध सेनाध्यक्ष बनने का प्रशिक्षण लेना चाहिए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विज्ञान के चमत्कार

[आरंभ, उपयोगी पक्ष, विनाशक पक्ष, उपसंहार]

आज हमारी दृष्टि जिधर जाती है, उधर प्रभु की विलक्षण सृष्टि में विज्ञान की चमत्कृति दिखाई पड़ती है। जादूगर दो-तीन घंटों के शो में एक-से-एक करामात दिखाकर हमें विस्मित कर चल देता है, किंतु वैज्ञानिकों ने जो करिश्मे दिखाए हैं, वे हर क्षण आश्चर्यचकित एवं विस्मयविमुग्ध करते रहते हैं।

कुछ शताब्दियों के ही इस लघु इतिहास में इतने वैज्ञानिक चमत्कार हुए हैं कि उनपर एक विश्वकोश बन जा सकता है। अभी चौंकने की जरूरत नहीं है; संक्षेप में जानकर भी कोई चौंके बिना रह नहीं सकता, अलबत्ता यह बात दूसरी है।

सबसे पहले गमनागमन-संबंधी साधनों को लें। पहले जब कोई दो-चार सौ मील की यात्रा पर निकलता था, तब वह अपने सभी सगे-संबंधियों से मिलकर जाता था। पता नहीं, वह लौटकर आ भी पाएगा अथवा नहीं। किंतु, आज तो एक-से-एक तेज और सुविधाजनक सवारियाँ निकल गई हैं। मोटर और रेलगाड़ी से यदि आप धरती पर सैर कर सकते हैं तो हेलीकॉप्टर और वायुयान से आकाश में पक्षी की तरह उड़ानें भी भर सकते हैं। पनडुब्बी जहाजों के द्वारा यदि जल के भीतर मछली की तरह भ्रमण कर सकते हैं, तो करीब ढाई लाख मील की दूरी पर अवस्थित चाँद की नगरी में आप बीस हजार किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलनेवाले अंतरिक्षयान से यात्रा भी कर सकते हैं। दो पहाड़ों के बीच तार से लटककर चलनेवाली गाड़ी से यदि आप हिममंडित स्वर्गलोक का नजारा ले सकते हैं तो समुद्र या नदी की सतह के भीतर चलनेवाली रेलगाड़ियों पर पाताललोक की सैर भी कर सकते हैं। आप चाहें तो पानी पर मोटरबोट चलाएँ, जहाज चलाएँ, होवरक्राफ्ट पर घूमें या उसकी सतह से दो फुट ऊपर-ऊपर ही 'एयरो-कार' उड़ाएँ, आपकी मर्जी। अतः, विज्ञान ने अब किसी स्थान को दुष्प्रवेश्य या दुर्गम्य नहीं छोड़ा। अगम्य प्रदेशों में भी अत्यंत क्षिप्र गति से पहुँचा देना ऐसा चमत्कार है कि इसकी प्रशंसा में वाणी मूक हो जाती है।

विज्ञान के संचार-संबंधी चमत्कारों की बात सुनिएगा, तो और भी दंग रह जाइएगा। आप अपने प्रिय की बात सुनने के लिए लालायित हैं। बस, टेलीफोन या केबुल कीजिए, क्षण में हजारों-हजार मील बैठे प्रिय से बात हो जाएगी। संसार के किसी कोने में कोई बात होती है, बस टेलीप्रिंटर धड़ाधड़ समाचार भेजता रहता है। विश्व के किसी भाग में कोई घटना घटी और आप ट्रांजिस्टर या रेडियो खोलिए या टेलीविजन, बस सब-कुछ ज्ञात! लगता है, दुनिया रेडियो के महज एक बालिश्त या ट्रांजिस्टर के दो-तीन सेंटीमीटर डायल में ही सिमटकर रह गई। टेली-कम्युनिकेशन के जरीए तो विश्वव्यापी टेलीफोन-व्यवस्था भी संभव हो गयी है!

विज्ञान ने आवास-संबंधी भी कम चमत्कार नहीं किए हैं। अब बीस-तीस मंजिलों के स्काई-स्क्रेपर बन रहे हैं, किंतु वहाँ जाने में कोई दिक्कत नहीं। बस, लिफ्ट का बटन दबाइए और पलक झपकते आप मनचाही मंजिल पर पहुँच जाइए। झील में महल होने पर ही आश्चर्य होता रहा है; किंतु अब एक ओर समुद्र के जल के भीतर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शहर बसाने की योजना बन रही है, तो दूसरी ओर चाँद पर नगर बसाने की योजना चल रही है। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर अब होटल बनाने की बात है, ताकि वहाँ रहकर संसार की सबसे ऊँची तुषारमंडित चोटी का दृश्य देखा जा सके। हम वैज्ञानिक चमत्कारों के द्वारा अपने गृह में षड्ऋतु का आनंद ले सकते हैं, ग्रीष्म की तपती दुपहरी में शिशिर का मजा ले सकते हैं, माघ की भयानक सर्दी में भी वसंत की बहार लूट सकते हैं।

विज्ञान ने मनोरंजन के क्षेत्र में तो और कमाल किया है। जी हाँ ! रेडियो खोलें, ट्रांजिस्टर कंधे पर लटकाएँ। टेपरिकार्डर, रेकार्ड-प्लेयर या रेडियोग्राम, जिससे चाहें अपने मनचाहे गीत सुन सकते हैं। टेलीविजन से आप भाषण ही नहीं, भाषणकर्ता की आकृति भी देख सकते हैं। कुछ दिनों में तो उसके रूमाल में लगे सेंट की गंध भी हजारों मील की दूरी पर आप सूँघ लेंगे। संजय की दिव्यदृष्टि पर आपका विश्वास भले ही न जमता हो, आपको लगता हो कि कैसे उन्होंने महाभारत-युद्ध का आँखों-देखा हाल घर-बैठे धृतराष्ट्र को कह सुनाया, किंतु लाल किले पर तिरंगा झंडा फहराने या मेलबोर्न के क्रिकेट मैच का आँखों-देखा हाल जब आप अपने बंद कमरे में बैठे सुनते हैं, और देखते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं होता।

और, सिनेमा की बात तो निराली ही है। आपका मन बिलकुल उदास-उदास हो, किसी काम में जी नहीं लगता हो, तो बस, आप सिनेमा हॉल में चले जाइए, मन की मुरझाई कली थोड़ी देर में खिल जाएगी। मन का सारा बोझ हल्का हो जाएगा। 'स्टीरियोफोनिक' ध्वनियों तथा थ्री-पिक्चर्स के आविष्कार से और भी आकर्षण बढ़ता जा रहा है। इन आविष्कारों ने चलचित्रों को अधिकाधिक यथार्थता एवं सहजता के धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। अब वह दिन भी दूर नहीं, जब दर्शक उपवन का दृश्य देखते हुए फूलों की सुगंध का भी अनुभव कर सकें। वीडियो के रूप में चलचित्र अब आपके बैठक तक पहुँच गया है।

विद्युत् तो वैज्ञानिक चमत्कारों की रीढ़ है। इसके द्वारा आप चाहें तो अमावस की कसौटी-सी काली रात को दूध-धुली चाँदनी में बदल सकते हैं, इसके द्वारा आप चाहें तो घंटी बजाकर किसी को बुला ले सकते हैं, इसके द्वारा आप गाना सुन सकते हैं। इसके द्वारा आप तेज गाड़ी पर सैर कर सकते हैं, इसके द्वारा भोजन बना सकते हैं, टेबुल पर बिजली के बटन द्वारा बेयरा का काम करा सकते हैं, इसके द्वारा माल पैक करा सकते हैं, इसके द्वारा आप ठंडक में गर्मी और गर्मी में ठंडक का आनंद उठा सकते हैं, इसके द्वारा आप कमरे में झाड़ू लगवा सकते हैं, इसके द्वारा कपड़े सीने से धोने और तह करने तक का काम ले सकते हैं, दाढ़ी बनाने जैसे छोटे कामों के साथ ही बड़े-बड़े कल-कारखाने चलाने तक का काम ले सकते हैं। इसके द्वारा आप जहाँ माइक्रोफोन से आवाज लाखों के बीच पहुँचा सकते हैं, वहीं स्वचालित मुद्रणयंत्रों के सहारे लाखोंलाख पुस्तकें पाठकों के बीच पहुँचा सकते हैं।

चिकित्सा के क्षेत्र में इतने वैज्ञानिक चमत्कार हुए हैं कि कहना मुश्किल है। यदि किसी आधुनिक अस्पताल में चले जाएँ, तो वह विज्ञान की जादूनगरी-सा मालूम पड़ेगा। एक्सरे की सहायता से मनुष्य के अंगों के भीतर का चित्र लिया जा सकता है। स्कैनर द्वारा अब बिना चीरफाड़ के दिमाग के अंदर भी झाँकना संभव हो गया है। स्टेथिस्कोप द्वारा हृदय की धड़कनें सुनी जा सकती हैं, माइक्रोस्कोप द्वारा कीटाणुओं का पता लगाया जा सकता है। प्लेग, यक्ष्मा, कैंसर जैसी भयानक बीमारियाँ पहले लाइलाज समझी जाती थीं; किंतु आज तो ये मामूली बीमारियाँ हैं। अब तो मुर्दे की भी आँखें बेकार नहीं जाती हैं और उनका उपयोग किसी जवान अंधे की आँखों के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रूप में किया जाने लगा है। प्रेम में कभी दिल दिया जाता था, किंतु वैज्ञानिकों ने दिल बदलने का अब तो करिश्मा ही कर दिखाया है। वह दिन दूर नहीं, जब दिमाग भी बदल दिया जाएगा। प्लास्टिक-सर्जरी तो और भी चमत्कार करती है। किसी के चेहरे पर झुर्रियाँ आ गई हैं, आइने के सामने खड़े होने पर उसे स्वयं अपनी आकृति पसंद नहीं आती है; बस, प्लास्टिक-सर्जन के निकट जाइए, पचास साल के चमड़े के स्थान पर सोलह साल का ताजा चमड़ा मालूम पड़ने लगेगा। आज यदि शूर्पणखा होती, तो किसी प्लास्टिक-सर्जन के निकट जाकर फौरन अपना नाक-कान बना लेती।

कृषि के क्षेत्र में हरी क्रांति लाने का सबसे बड़ा श्रेय वैज्ञानिक चमत्कारों को है। सिंचाई के लिए विद्युत-यंत्र, जुताई के लिए ट्रैक्टर, फसल-वृद्धि के लिए उर्वरक, कीटाणुनाश के लिए दवाओं की छिड़काव-व्यवस्था, फसल काटने के लिए कटर या दमाही के लिए थ्रेशर मशीन, अन्न तैयार हो जाने पर रखने के लिए गोदामों का निर्माण, फलों को डिब्बे में बंद कर सकने की व्यवस्था, अन्न को टिकाऊ खाद्यान्न बनाने की पद्धति, सब तो विज्ञान की ही करामात है।

किंतु, इसके साथ-ही-साथ विज्ञान ने बड़े-बड़े अद्भुत संहारक अस्त्र-शस्त्रों का भी निर्माण किया है। टैंक, तोप, मशीनगन, जेट तथा अन्य लड़ाकू, तारपीडो आदि तो अब पुराने हो गए हैं। इतनी विषैली गैसें, कीटाणु-बम, परमाणु-बम, कोबाल्ट-बम, हाइड्रोजन-बम इत्यादि बने हैं कि हर क्षण मानव-अस्तित्व के ऊपर सर्वनाश की तलवार लटक रही है। इधर तो ऐसे सूटकेस बम बने हैं कि एक छोटे-से ट्रांजिस्टर के आकार का बम हिरोशिमा जैसा संहार उपस्थित कर सकता है।

स्वचालित यंत्र और कंप्यूटर ऐसे वैज्ञानिक दैत्य हैं कि वे हजार-हजार लोगों की रोजी क्षणभर में हड़प लेते हैं। जिस कार्य को एक हजार मनुष्य एक दिन में कर सकते हैं, उसे वे यंत्र मिनटों में कर देते हैं। पूँजीपतियों के लिए ये वरदान सिद्ध हुए हैं, किंतु लाख-लाख रोजगार चाहनेवाले के लिए भयानक अभिशाप !

इस तरह, हम देखते हैं कि सर्जन या निर्माण एवं सुविधा और मनोरंजन के क्षेत्र में ही नहीं, वरन् संहार के क्षेत्र में भी एक-से-एक अद्भुत आविष्कार हुए हैं। तलवार उपयोगी है या अनुपयोगी, वह भी क्या विचारणीय है ? तय है कि इससे जहाँ हम हिंस्र पशुओं से अपनी रक्षा करते हैं, वहीं किसी निर्दोष की हत्या भी कर सकते हैं। यह तो वस्तु का सदुपयोग-दुरुपयोग करनेवाली बुद्धि का प्रश्न है, इससे विज्ञान के भला-बुरा होने का क्या वास्ता? विज्ञान उतना ही भला है, जितनी सारी उपयोगी वस्तुएँ। उपयोगी वस्तुओं का दुरुपयोग वैसी ही अवैज्ञानिकता है, जैसे विज्ञान का दुरुपयोग। अतः, आवश्यक है कि ऐसे बेतुके विवादों में न पड़कर भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धियों में आगे बढ़ें। बड़े-बड़े वैज्ञानिक चमत्कारों पर ध्यान दें, तो मालूम होगा कि अधिकांश वे पश्चिमी देशों की देन हैं। भाप का इंजन, हेलीकॉप्टर इंगलैंड की वैज्ञानिक देनें हैं, तो एक्सरे जर्मनी की और स्पुतनिक रूस की। रेडियो यदि इटली की ओर से आया है, तो टेलीफोन, प्रिंटिंग प्रेस, हाइड्रोजन बम, माइक्रोफोन, सबमेरिन, सिनेमा इत्यादि संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर से। भारतवर्ष को भी वैज्ञानिक क्षेत्र में पूरी प्रगति करनी चाहिए और यह कहना छोड़ ही देना चाहिए—

भाई, त्याग नहीं पाए हैं
हम आज तक—
संग्रह, विग्रह, आग्रह,
क्या होगा छोड़कर
एक उपग्रह !

—विनोद गोदरे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारत और परमाणु-विस्फोट

[भारत, प्रतिक्रियाएँ, उपसंहार]

आजादी के पश्चात भारत की सफलता की महत्त्वपूर्ण घड़ी थी 1969 ई० की 18 मई की 8 बजकर 5 मिनट सुबह का समय, जब भारतीय वैज्ञानिकों ने राजस्थान के पोकरण नामक स्थान पर सौ मीटर से भी अधिक गहराई में शांतिपूर्ण कार्यों के लिए भूमिगत परमाणु-विस्फोट किया। इस भूमिगत विस्फोट की शक्ति 15 किलो टन की थी, यानी लगभग उतनी ही, जितनी उस अणुबम की थी, जो हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराया गया था।

परमाणु-विस्फोट का समाचार पाते ही देश के निवासियों में आनंद का ज्वार उठ गया। भारत ने संसार के पाँच अणुशक्तिसंपन्न देशों का एकाधिकार तोड़ डाला और वह विश्व के परमाणु-मानचित्र पर छठी शक्ति के रूप में उजागर हो उठा। सबसे पहले द्वितीय विश्वयुद्ध के समय 1945 ई० में अमेरिका ने पहला अणु-विस्फोट किया था। उसके बाद रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन ने भी अणु-विस्फोट किए। चीन ने पहला परमाणु-विस्फोट 16 अक्टूबर, 1962 को किया था।

चीन के परमाणु-विस्फोट के बाद हमारे देश में सभी ओर से लगातार यह माँग होती रही कि सरकार अपनी परमाणु नीति बदले और परमाणु-बम बनाए। पाँचों बड़ी शक्तियों ने पहले वायुमंडल में परमाणु-विस्फोट किए और फिर परमाणु-बम बनाए तथा अंत में जमीन के अंदर परमाणु-विस्फोट किए, लेकिन भारत पहले जमीन के नीचे परमाणु-विस्फोट के अनंतर प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी तथा परमाणु-ऊर्जा के अध्यक्ष डॉ० होमी सेठना ने बार-बार दुहराया कि हम परमाणु-शक्ति का उपयोग सामरिक आयुधों के निर्माण में नहीं कर, शांतिपूर्ण उपयोगों के लिए करेंगे। इमसें संदेह नहीं कि भारत की नीयत स्पष्ट है। वह इसका बम बनाकर विध्वंस-लीला में उपयोग नहीं करेगा। किंतु, संसार की बड़ी शक्तियाँ अपने अणु अस्त्र-शस्त्रों से भारत को धमकाएँगी, तो क्या हम चुपचाप बैठे रहेंगे ? नग्नतावाद के संसार में लँगोटी पहननेवाला मूर्ख नहीं, तो और क्या है ? यदि आज विश्व के अन्य राष्ट्र परमाणु-शक्तियों के निरस्त्रीकरण के लिए दबाव डालने में भारत का साथ नहीं देते, तो दुष्परिणामों का सारा उत्तरदायित्व उन पर होगा, भारत पर नहीं।

परमाणु-विस्फोट के अनंतर विश्व के विभिन्न देशों की रंग-बिरंगी प्रतिक्रियाएँ हुईं। विकासशील देशों ने शांतिपूर्ण कार्यों के लिए भारत के परमाणु-विस्फोट की दिल खोलकर सराहना की। इन विकासशील देशों में अनेक अफ्रीकी देशों, अरब देशों तथा इंडोनेशिया के नाम उल्लेखनीय हैं। दक्षिण कोरिया के एक प्रमुख दैनिक ने लिखा कि परमाणु-विस्फोट से भारत की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। परमाणु-शक्तिसंपन्न देशों में फ्रांस ही ऐसा है, जिसे प्रसन्नता हुई और उसके परमाणु-ऊर्जा-आयोग ने भारत को बधाई दी। चीन ने इसपर कोई टिप्पणी नहीं की। रूस की प्रतिक्रिया यह रही कि भारत ने आणविक विस्फोटों का उपयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए करने की टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में विश्व के अन्य देशों के स्तर पर रहने का एक अनुसंधान-कार्यक्रम चलाया है।

भारत के परमाणु-विस्फोट पर जापान-सरकार ने अपना अफसोस जाहिर किया। इसपर कनाडा, पाकिस्तान और अमेरिका की बड़ी ही प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ हुईं। कनाडा ने अपना दुःख जाहिर करते हुए सहायता बंद कर देने की भी धमकी दी। पाकिस्तान ने कहा—"भारत के परमाणु-विस्फोट पर पड़ोसी देशों में चिंता पैदा हुई है।" पाकिस्तान की सरकार ने यहाँ तक गलत बात कही की परमाणु-विस्फोट की रेडियो-सक्रियता उसके देश तक पहुँची। अमेरिका की बौखलाहट का भी क्या कहना। उसके एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रमुख पत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' ने लिखा—''एक तरफ साठ करोड़ भारतीय गरीबी झेल रहे हैं, दूसरी तरफ इतने बड़े साधन शक्ति प्राप्त करने की खामखयाली में उड़ा दिए गए हैं।''

भारत इन असंस्कृत प्रतिक्रियाओं से विचलित होनेवाला नहीं। भारत के वैज्ञानिक बुद्धि में संसार के वैज्ञानिकों से पीछे नहीं हैं। हमारा देश परमाणु-शक्ति के विकास के लिए आत्मनिर्भर है। भारत का उद्देश्य स्पष्ट और पवित्र है। इसलिए, भारत ने परमाणु-शक्ति का उपयोग उपनिवेश-वृद्धि या किसी पड़ोसी राष्ट्र को संत्रस्त करने के लिए नहीं किया है और कदापि नहीं करेगा, वरन् इसका विकास वह अपने देश की समृद्धि के लिए करेगा।

परमाणु-शक्ति का उपयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए किया जा सकता है। इसकी जानकारी हमें भाभा-अनुसंधान केंद्र के निदेशक डॉ॰ राजा रामण्णा की एक वार्ता से स्पष्ट हो जाती है। पूर्ण परिसीमित न्यूक्लीय विस्फोटों से जमीन के अंदर की चट्टानें टूट जाती हैं और प्राकृतिक गैसों तथा तेल के बहने का मार्ग खुल जाता है। इस तरह, तेल तथा प्राकृतिक गैस हमें ज्यादा मिल सकेंगी। दूसरे, इन विस्फोटों से बने विशाल गड्ढों में गैस और तेल को इकट्ठा भी किया जा सकता है।

अपने देश के कई हिस्सों में हल्की किस्म का ताँबा इधर-उधर काफी मात्रा में बिखरा पड़ा है। पारंपरिक तरीकों से इसे निकालें, तो बहुत खर्च आएगा। यहाँ न्यूक्लीय विस्फोट बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। विस्फोट करने से, जमीन के अंदर का ताम्र-अयस्क-भंडार टूट-फूट जाएगा। अब जमीन के ऊपर बने छेद से एसिड-घोल डाला जाए, तो ताँबा उसमें घुल जाएगा। इस द्रव ताँबे को ऊपर से खींचा जा सकता है।

न्यूक्लीय विस्फोटों से हम भूतापीय (जिओथर्मल) ऊर्जा भी प्राप्त कर सकते हैं। विस्फोट के बाद जमीन के अंदर पानी पहुँचाए जाने से जो बहुत गर्म भाप निकलेगी, उससे बिजली पैदा की जा सकती है।

विस्फोटों के ज़रिए हम नहरें बना सकते हैं, भूमिगत जलाशय बना सकते हैं, बंदरगाहों का निर्माण कर सकते हैं। मत पूछिए, क्या-क्या नहीं कर सकते।

हमारे परमाणु-परीक्षण से कोई राष्ट्र रुष्ट हो या तुष्ट, कोई सहायता दे या न दे, हमारे वैज्ञानिक परमाणु-शक्ति का उपयोग निर्माण के लिए तो करेंगे ही, विश्व के अन्य राष्ट्रों को भी ऐसा करने को विवश करेंगे, इसमें संदेह नहीं।

युद्ध और शांति

[आरंभ, भयंकरता, कारण, पक्ष-विपक्ष में तर्क, उपसंहार]

बज रहा बिगुल निनादित घोष
फूँक दो वंशी के फिर श्वास।
युद्ध औ शांति यही दो गीत
आजतक मानव का इतिहास॥

—रांगेय राघव

मानवजाति के लंबे इतिहास में रक्ताक्त युद्धों की अनगिनत रोमांचक कहानियाँ अंकित हैं। इधर ही नार्वे के एक प्राध्यापक ने गणनायंत्र की सहायता से यह हिसाब लगाया है कि 5,560 वर्ष के लिखित इतिहास में कुल 14,531 युद्ध हुए, अर्थात् प्रत्येक वर्ष ढाई से भी अधिक युद्ध !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चाहे, देवासुर-संग्राम हो या पाषाणयुग के बर्बर मनुष्यों का संघर्ष या आधुनिक साधनों से संयुक्त भीषण रण—मेरी दृष्टि में सभी युद्ध हैं। चाहे उसे 'धर्मयुद्ध' या 'क्रूसेड' जैसा पवित्र नाम दें या किसी अन्य विशेषण से शून्य या विशेषण से युक्त युद्ध कहें—कुछ बहुत अंतर नहीं आता। मानव के भीतर का खूनी पिशाच ही उसे युद्ध के लिए प्रेरित करता है। कविवर दिनकर ने ठीक ही कहा है—

अनगढ़ पत्थर से लड़ो, लड़ो किटकिटा नखों से, दाँतों से
या लड़ो ऋक्ष के रोमगुच्छपूरित वज्रीकृत हाथों से,
या चढ़ विमान पर गर्म मुट्ठियों से गोलों की वृष्टि करो,
ये तो साधन के भेद, किंतु भावों में भेद नया क्या है ?
झड़ गई पूँछ, रोमांत झड़े, पशुता का झड़ना बाकी है।
बाहर-बाहर तन सँवर चुका, मन अभी सँवरना बाकी है।

—रश्मिरथी

प्राचीन काल में जो युद्ध होते थे, उनमें इतना भीषण नरसंहार नहीं होता था; क्योंकि पहले मनुष्य एक-दूसरे से पत्थर, गदा, भाले और धनुर्बाण से लड़ता था। प्राचीन काल और आधुनिक काल के युद्ध में एक और अंतर है कि पहले युद्ध में भाग लेनेवाले ही निहित होते थे। प्राचीन काल में रणक्षेत्र में भीषण युद्ध होता रहता था और उससे कुछ ही दूर पर सामान्य व्यक्ति अपने कामों में जुटे रहते थे; किंतु आज तो वस्तुतः युद्ध छेड़नेवाले दूर ही बैठे रहते हैं, एक बटन दबाते ही हजारों मील पर रहनेवाले असंख्य लोग भयानक बम-विस्फोट के ग्रास बन जाते हैं। प्राचीन काल में युद्धों के निश्चित नियम थे—युद्ध का समय निश्चित होता था, रात में प्रायः युद्ध नहीं होता था, दिनभर कुरुक्षेत्र में रथ-संचालन के पश्चात् सायंकाल श्रीकृष्ण अपनी पीतांबरी में दाने लिए अपने घोड़ों के बीच निकल पड़ते थे, शत्रु-मित्र सब एक-दूसरे की चिकित्सा-संवेदना में तत्पर रहते थे, किंतु आज युद्ध अखंड रूप से रात-दिन चलता रहता है और चिकित्सालयों तक पर बम गिराए जाते हैं।

बारूद का आविष्कार होने पर बंदूकों से युद्ध होने लगा। बंदूकों के विकास के बाद मशीनगनों, तोपों और बमों का प्रयोग होने लगा। आज तो ध्वनि से भी तेज उड़नेवाले लड़ाकू जेट, मिराज तथा मिग जैसे विमान, क्षण में ब्रह्मास्त्र की तरह संहार मचानेवाले अणु, उद्जन और कोबाल्ट-बम, अवनि से आकाश तक गाज गिरानेवाले रॉकेट, पृथ्वी की छाती को रौंदनेवाले टैंक, वरुण की नगरी में उत्पात करनेवाले पनडुब्बी जहाज तथा जंगी बेड़े आदि ने संहार की गति को आश्चर्यजनक रूप से तीव्र कर दिया है। इतना ही नहीं, इधर 'सूटकेस-बम' बन रहे हैं, जिनकी विनाश-शक्ति हिरोशिमा पर गिराए गए अणुबम की संहारिणी शक्ति के बराबर है।

प्रथम महायुद्ध में संलग्न देशों के बीस लाख से अधिक लोग मरे। पचास हजार मनुष्य घायल हुए तथा एक करोड़ से अधिक व्यक्ति युद्ध के बाद फैली बीमारियों के शिकार हुए। कितने सुंदर नगर नष्ट हुए, कितने ही कारखाने ध्वस्त हुए। द्वितीय महायुद्ध में अमेरिका ने दो अणुबम हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराए, और डेढ़ करोड़ व्यक्तियों को क्षणभर में मौत के घाट उतार दिया तथा न जाने कितनों को अपाहिज बना दिया। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, मारक अस्त्रों का आविष्कार अत्यंत तेजी से होता जाता है। आज अणुबमयुक्त प्रक्षेपणास्त्रों से पाँच हजार मील दूर-स्थित नगरों को भी अचूक निशाने का शिकार बनाया जा सकता है। अणुबमों के द्वारा भयानक बाढ़ और भूकंप उत्पन्न किए जा सकते हैं और समुद्र से घिरे द्वीपों या तटवर्ती नगरों में जलप्रलय मचाकर उन्हें नष्ट कर दिया जा सकता है। ऐसे-ऐसे विषों का निर्माण तथा दानवी कीटाणुओं का विकास किया गया है कि जलाशयों में उन्हें डालकर अपने विरोधियों के लिए सामूहिक विनाश का कारण उपस्थित कर दिया जा सकता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नापाम-बम का भयावह विस्फोट किया जा सकता है, जिससे दुर्निवार अग्नितांडव फैल जाता है। संसार की लगभग आधी संपत्ति आज मनुष्यों के विनाश के लिए व्यय की जा रही है। अमेरिका और रूस जैसे सर्वाधिक संपन्न देशों ने अपनी आय का दस प्रतिशत सैनिक कार्यों पर खर्च करते हैं। इतनी अधिक संपत्ति से संसार के अनेक देशों से दीनता-दानवी का निष्कासन हो सकता था, शेफाली-सी झरनेवाली दुखियारी आँखों से प्रसन्नता की ज्योति फैलाई जा सकती थी, किंतु क्या कहा जाए, आज बड़े-बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति भी सर्जनात्मक कार्य न कर विध्वंसात्मक कार्यों में संलग्न हैं।

आखिर मनुष्य क्यों संपूर्ण सृष्टि को जीवनशून्य करने का आयोजन कर रहा है? युद्ध के कारण जो लाख-लाख विधवाएँ अपने पति के लिए बिलखती-विलपती हैं, लाखों बहनें जो अपनी-अपनी राखी लिए रक्षाबंधन के दिन अपने दुलारे भाइयों की बाट जोहती हार जाती हैं, लाख-लाख माँ-बाप जो अपने श्रवणकुमारों के लिए छटपटाते रहते हैं, लाख-लाख अनाथ शिशु जो अपने जीवनदाताओं के स्नेहचुंबन के लिए तरसते रहते हैं? जब युद्ध की होली जलती है, तब कला की शृंगारहाट भस्मीभूत हो जाती है, जब भयानक महाभारत छिड़ता है तब एक ओर इतिहास के अध्याय पर युधिष्ठिर रोते हैं, दूसरी ओर द्रौपदी और सुभद्रा चीखती हैं।

युद्ध के अनेक कारण बताए गए हैं। कभी उत्फुल्ल राजीवलोचना रमणियों के लिए युद्ध होता था, कभी नए-नए बाजारों पर एकाधिकार पाने के लिए, कभी विश्वविजय का मोहक स्वप्न देखने के नाते, कभी अपने धर्म की ध्वजा को समस्त संसार में फहराने तथा कभी उपनिवेशों का जाल बिछाने के लिए युद्ध होता है। अन्याय के प्रतिकार के लिए भी युद्ध होता रहा है, मगर कितना? कभी रोटी के लिए, तो कभी अपने राजनीतिक सिद्धांत को लादने के लिए भी युद्ध होता है। दुनिया को एक करने की सनक में भी युद्ध लादा जाता रहा है।

हम युद्ध को जब तक धर्म, राष्ट्रोद्धार, स्वत्व-स्थापन, न्यायरक्षा आदि के रेशमी आवरण देते रहेंगे, तब तक युद्ध बंद नहीं होंगे। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा-परिषद हो या भारत का पंचशील—हमें आज युद्ध के कराल मुख में गिरने से बचाने में कोई पूर्णतः समर्थ नहीं हो रहा है। गाँधी, कैनेडी, मार्टिन लूथर किंग जैसे महापुरुषों की हत्याएँ, बुद्ध और ईसा के उपदेश भी हमें नरसंहार से हटाने में असमर्थ हो रहे हैं। टाल्सटॉय के 'युद्ध और शांति' तथा कुदिता मॉरिस के 'हिरोशिमा के फूल' जैसे हृदयद्रावक वर्णन भी हमें द्रवीभूत नहीं कर रहे हैं। और, आज हम बड़ी बेचैनी से शांति का मार्ग ढूँढ़ रहे हैं। शांति के चाहे हम शतकोटि कपोत उड़ाएँ, शांति के स्वप्न का दुर्बल धागा भी आज जैसे टूटने को है। भारत-पाक-युद्ध, इसरायल-अरब-युद्ध, अमेरिका-वियतनाम-युद्ध, ग्रीस-टर्की-युद्ध और इराक-ईरान-युद्ध के काले कारनामे देखकर हत्यारे का हृदय भी पसीज उठता है। युद्ध के हिंसक वाण अपराधी को नहीं, वरन् सारे निर्दोषों को खोज रहे हैं, युद्धवाद का चक्रव्यूह आज अभिमन्युओं की तलाश कर रहा है, युयुत्सुओं की टोली आज मरण का अंतिम नाटक खेलने को कटिबद्ध हो रही है।

नेपोलियन ने कहा था—युद्ध असभ्य लोगों का व्यापार है (War is the business of barbarians.)। शांति मनुष्य की सुखद और स्वाभाविक स्थिति है, युद्ध उसका पतन है, उसका कलंक है (Peace is the happy, natural state of man, war his corruption, his disgrace.)—टॉमसन का ऐसा विचार है। अतः, युद्ध की ज्वालामुखी पर बैठे संसार के चिंतकों, कलाकारों, साहित्यकारों एवं दार्शनिकों को भयत्रस्त नहीं होना है। यदि वे घबरा जाएँगे, तो प्रभु की मोहक सृष्टि पूर्णतः विनष्ट हो जाएगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऐसा पूर्ण संहार होगा कि कोई मनु हिमालय की चोटी पर नई सृष्टि के लिए अब नहीं बच जाएगा। अतः, ऐसा प्रयत्न किया जाए, जिससे मारक अस्त्रों का निर्माण पूर्णतः बंद हो जाए, सभी घातक अस्त्र अविलंब नष्ट कर दिए जाएँ, परमाणुशक्ति का उपयोग मानव-कल्याण में हो, पारस्परिक विश्वास पैदा किया जाए, किसी राष्ट्र के आंतरिक कार्यों में हस्तक्षेप न किया जाए तथा शांति का ऐसा मंत्र फूँका जाए कि मनुष्य के भीतर बैठा हिंस्र सिंह भी खुशी की चौकड़ी भरने लगे और आज के युद्ध की कालरात्रि का तूफान कल के प्रभात को स्वर्णिम शांति का ताज पहना जाए।

चलचित्र

[आरंभ, विशेषता, लाभ, उपसंहार]

नगर का एक कोना, जहाँ विशाल भवन खड़ा है, जिसपर बड़े-बड़े पोस्टर टँगे हैं, अनेक दिशाओं से आती सवारियाँ जिधर हाँफती चली जा रही हैं, पैदल चलनेवाले जहाँ भीड़ को चीरते हुए बेतहाशा दौड़े जा रहे हैं, जहाँ नुक्कड़ों पर कुछ कानाफूसी हो रही है, जहाँ खिड़की पर लंबी लाइन है और लाइन को तोड़ डालने के लिए जहाँ हुल्लड़ मचा है, आदमियों के माथे पर आदमी रेंगता हुआ कबड्डी की पाली छूने की तरह जहाँ जोर मार रहा है, समझिए वहाँ कोई-न-कोई चलचित्र-भवन—सिनेमाघर है। वहीं आप बिना कैलैंडर देखे अनुमान कर सकते हैं कि आज शुक्रवार है, कोई नई फिल्म अवश्य आई है, जिसके लिए इतनी बेचैनी छाई है।

जैसे मादक द्रव्यों का नशा होता है, वैसे ही कुछ लोगों को सिनेमा का नशा होता है। चाहे जैसी भी फिल्म क्यों न हो, पहले दिन पहला शो अवश्य देखेंगे; भले इसके लिए उन्हें सर फोड़वाना पड़े, भूखा रहना पड़े, झूठ बोलना पड़े, जेब कतरनी पड़े, किंतु वे सिनेमा देखने से बाज नहीं आएँगे। जितनी भद्दी अश्लील फिल्म रहेगी, उसके दर्शकों की संख्या उतनी ही अधिक होगी।

महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के छात्रों की बात कौन कहे, विद्यालयों के छात्र किताबें बेचकर सिनेमा का ब्लैक टिकट खरीदते हैं। उन्हें 'रामचरितमानस' की चार चौपाइयाँ याद नहीं हैं, किंतु सिनेमा के सैकड़ों गीत कंठस्थ हैं। इसीलिए तो 'बेढब बनारसी' ने कहा है—

स्कूल की पढ़ाई में क्या धरा है 'बेढ़ब',
शिक्षा तो मिल रही है सिनेमा के हर भवन में।

रिक्शावाले ठीक से खाना नहीं खाते, कपड़े नहीं पहनते और अपने स्वेद से अर्जित पैसे को सिनेमा में स्वाहा करते हैं। इतना ही नहीं, सिनेमा के ये दीवाने अस्पतालों में अपना खून तक बेचते हैं। उनके रिक्शे में दुर्गा, काली, शंकर, गाँधी के फोटो नहीं रहते, वरन् सिने-तारिकाओं के चित्र चिपके हुए रहते हैं। चलचित्र ने रुचि को इतना गर्हित और स्खलित कर दिया है कि इससे त्राण का कोई-न-कोई उपाय निकालना ही पड़ेगा।

चलचित्रों ने हमारे मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक स्तर को तो गिराया ही है, साथ-ही-साथ हमारे नाटक, नृत्य, रामलीला, यात्रा, शास्त्रीय गायन आदि वास्तविक कलाओं पर कल्पनातीत आघात भी किया है। नाटक आदि कलाओं और उनके

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कलाकारों की क्षति, उनके प्रति जनरुचि घटने का प्रमुख कारण राष्ट्रीय नीति का अभाव भी है। चलचित्र पर जो मनोरंजन-कर है, वही नाटक आदि के प्रदर्शनों पर है। चलचित्र केवल मशीन के द्वारा नाटक की मुद्रित छवि दिखाता है, जबकि नाटक के लिए सारे पात्रों को सशरीर रंगभूमि में आना पड़ता है। ऐसी हालत में हर शो या प्रदर्शन के बाद चलचित्र-जैसा ही कर दे देने पर कलाकारों के भरण-पोषण-योग्य आजीविका नाटक नहीं जुटा पाता। योग्य कलाकारों के लिए तो यह अलाभकर वृत्ति ही है। अतः, आवश्यक है कि नाटक को ऐसे करों से मुक्त किया जाए।

यह तो हुआ चलचित्र का कृष्णपक्ष, किंतु इसका शुक्लपक्ष भी है। चलचित्र मनोरंजन के सबसे सस्ते और सुलभ साधन हैं। दैनंदिन कार्य से स्त्रस्त-त्रस्त मानव की शिराओं में इतनी स्फूर्ति नहीं रहती कि वह पुनः अपने कार्य में जुट जाए। श्रांत-क्लांत मन गंभीर पुस्तकों के पारायण में भी नहीं रम पाता। अतः, चलचित्रों द्वारा ऐसा मनोरंजन होता है कि हमारे शरीर में चेतना की नई लहर दौड़ जाती है, हमारे मन की मुरझाई क्यारी फिर से हरी-भरी हो जाती है। चलचित्र आधुनिक यांत्रिक जीवन की एकरसता को खंडित कर उसमें इंद्रधनुषी वैविध्य ला देता है, हमारे जीवन की मरुभूमि में रसवृष्टि कर देता है।

सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चलचित्रों से जनमानस का परिष्कार एवं प्रोन्नयन भी होता है। इनके द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर घनाघात किया जाता है, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों पर वज्रप्रहार किया जाता है, चारित्रिक दुर्बलताओं का भंडाफोड़ भी किया जाता है। इनके द्वारा अतीत और वर्तमान की बुराइयों का निदर्शन कर भविष्य के लिए नवीन मार्ग भी दिखाया जाता है। 'डॉ॰ कोटनिस की अमर कहानी', 'छत्रपति शिवाजी', झाँसी की रानी', 'अमर शहीद' जैसी फिल्में यदि हममें देशप्रेम भरती हैं, तो 'दहेज', 'खिलौना' आदि फिल्में दहेज-प्रथा, वेश्या-प्रथा आदि बुराइयाँ दूर करने का पथप्रदर्शन भी करती हैं; 'हीरामोती', 'मदर इंडिया', 'दो बीघा जमीन' जैसी फिल्में सामंती शोषण के विरोध में जहर उगलती हैं, तो 'जागृति' जैसी फिल्में छात्रों के मनोबल को उठाने में सहायक बनती हैं। 'जिद देश में गंगा बहती है' तथा 'दो आँखें बारह हाथ' जैसी फिल्में डाकुओं और अपराधी बंदियों के चरित्रसुधार जैसा समाधान प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार, यदि अच्छी फिल्में बनें, तो देश की बहुत-सारी समस्याओं के समाधान के लिए उनके दर्शकों की मनोभूमि निर्मित की जा सकती है। इस दृष्टि से आधुनिक कला-फिल्में—'अंकुर', 'दामुल' 'पार', 'आधारशिला' आदि अधिक लोकप्रिय हो रही हैं।

चलचित्र द्वारा शिक्षा का प्रसार और ज्ञान का संवर्धन हो सकता है। अपने देश के इतिहास, भूगोल एवं महान चरित्रों की झाँकी इसके द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है। महाभारत और रामायण को पढ़ने और समझने में बहुत अधिक समय और धैर्य की आवश्यकता है, किंतु, 'संपूर्ण महाभारत' तथा 'संपूर्ण रामायण' जैसे चित्रों से हम महज तीन घंटे में ही अपनी परंपरा का ज्ञान उपलब्ध कर सकते हैं। अपने सभी धामों की परिक्रमा में बहुत व्यय और समय की जरूरत है, किंतु 'संपूर्ण तीर्थयात्रा' जैसी फिल्म से बहुत आसानी से हम उनके दर्शन कर सकते हैं। ऐसे ही, यदि विश्व के विभिन्न देशों पर चित्र बनें, तो घर बैठे विश्व का ज्ञान, विश्वदर्शन तथा विश्वभ्रमण का आनंद हम प्राप्त कर सकते हैं।

हम वृत्तचित्रों या पूरी लंबाईवाले चित्रों के द्वारा विश्व के रंगमंच पर घटनेवाली घटनाओं का प्रत्यक्ष दृश्य रजतपट पर दिखा सकते हैं। घर बैठे आस्ट्रेलिया में होनेवाले टेस्ट मैच, अमेरिका के चुनाव, वियतनाम के युद्ध, ताशकंदवार्ता, कश्मीर या स्विट्जरलैंड

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के दृश्य, न्याग्रा-जलप्रपात, ध्रुवों के हिमप्रदेश आदि के दृश्य देख सकते हैं और आनंद प्राप्त कर सकते हैं। कारीगरी, यांत्रिकी, शल्य-चिकित्सा, साहसिक यात्रा, अनुसंधान आदि की उच्चतम शिक्षा भी चलचित्र द्वारा सरलता से दी जा सकती है। अब तो चलचित्र में और भी सुधार हुआ है। सिनेमास्कोप तथा तीन आयामवाले (थ्री-डी) चलचित्र भी दिखाए जाने लगे हैं।

अतः, चलचित्र भी हमारे विधाता की सृष्टि की तरह 'जड़-चेतन गुण-दोषमय' है। इसका श्यामपक्ष भी है, श्वेतपक्ष भी; यह प्रगाढ़ अंधकार भी फैला सकता है, तो स्वर्गिक ज्योति भी छिटका सकता है; यह पीयूषवृष्टि भी कर सकता है और विषवमन भी; यह स्वर्ग का सोपान भी दिखा सकता है और नरक का द्वार भी। अब हमपर, हमारे चलचित्रनिर्माता पूँजीपतियों पर, हमारी सरकार पर निर्भर है कि इसका कौन-सा पक्ष स्वीकार किया जाए। यदि इसका सदुपयोग किया जाए, तो इसके द्वारा हमारी शैक्षणिक प्रगति, सांस्कृतिक पुनर्निर्माण, सामाजिक पुनर्गठन, चारित्रिक विकास एवं विश्वव्यापी उदात्त दृष्टिकोण का प्रसार संभव हो सकता है—इसमें संदेह नहीं।

टेलीविजन

[प्रारंभ, विकास, सिद्धांत, उपसंहार]

मनोरंजन के संसार को विज्ञान का जीवंत अवदान है टेलीविजन। यंत्रयुग की शरीरधर्मिता का अनूठा उपकरण है टेलीविजन, जिसे 'दूरदर्शन' भी कहते हैं। सभ्यता के समूचे इतिहास ने मनोरंजन के जितने साधनों का विकास किया है, उन सबके बीच अपनी अनुपम श्रव्य-दृश्य क्षमता के कारण टेलीविजन ने क्रांति उपस्थित कर दी है। रेडियो पर कोई भाषण सुनते समय हम वक्ता का चेहरा देखने के लिए तरस कर रह जाते थे। स्टीरियो पर कोई तेज धुन सुनते समय हम वादक को देखने के लिए विह्वल हो उठते थे। टेपरेकार्डर पर ध्वनियाँ तो सुरक्षित हो जाती थीं, लेकिन ध्वनियों को निःसृत करनेवाले मुखड़े को बार-बार देखने के लिए हमारे नेत्र पिपासित ही रह जाते थे। टेलीविजन ने हमारी यह प्यास बुझाई है, शिक्षा और मनोरंजन की नई आशा जगाई है। अब हम न केवल पं० रविशंकर का सितारवादन सुन सकते हैं, अपितु उनकी वादन-प्रक्रिया का साक्षात्कार भी कर सकते हैं। घर बैठे दिल्ली में हो रहे हॉकी मैच और लाहौर में हो रहे क्रिकेट का मजा ले सकते हैं। दूर का यह दर्शन दूरदर्शन ने ही हमें सुलभ किया है।

आधुनिक विज्ञान के प्रारंभकाल से ही यह चिंता वैज्ञानिकों के बीच रही है कि कैसे किसी दूरस्थ व्यक्ति या दृश्य को देखा जाए। स्कॉटलैंड के विद्युत अभियंता ए० ए० कैंपबेल ने पहली बार दूरदर्शन के यांत्रिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इसके बाद अनुसंधाताओं की शोध-यात्रा शुरू हुई। लगातार विकसित होते हुए तकनीकी साधनों के आधार पर 1923 ई० में इंगलैंड के एक वैज्ञानिक जॉन लांगी बेयर्ड ने टेलीविजन का आविष्कार कर लिया और 1925 ई० में इस अनूठे यंत्र का पहला सफल प्रदर्शन किया। अपने प्रिय लोगों को बोलते-चालते देखना भला किसे अच्छा नहीं लगता। समूचे यूरोप में धूम मच गई और 2 नवंबर, 1926 से लंदन के बी० बी० सी० ने टेलीविजन का पहला जनप्रसारण प्रारंभ किया। 1935 ई० में जर्मनी में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

टेलीविजन का नियमित प्रसारण शुरू हुआ और यही स्थिति संयुक्त राज्य अमेरिका में 1941 ई० में आई। 1949 ई० के आसपास सारे संसार में दस लाख टेलीविजन-सेट थे, लेकिन इतनी तीव्रता के साथ विज्ञान के इस अद्भुत आविष्कार को लोकप्रियता मिली कि यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार, 1982 ई० के मध्य तक दुनियाभर में लगभग 72 करोड़ टेलीविजन-सेट थे। टेलीविजन की लोकप्रियता और उपादेयता ने हमारे समाज की मनोरंजन और शैक्षणिक गतिविधियों को बाँध रखा है। भारत में टेलीविजन का प्रारंभ दूरदर्शन के दिल्ली-केंद्र से 15 सितंबर, 1959 को हुआ। इसके बाद तो भारत में भी दूरदर्शन की सफल यात्रा आरंभ हो गई और आज देशभर में 200 से अधिक दूरदर्शन-केंद्र कार्यरत हैं। दिल्ली, अमृतसर, श्रीनगर, कानपुर, लखनऊ, कलकत्ता, गौहाटी, मुजफ्फरपुर, देवरिया, संभलपुर, राँची, मद्रास, बंगलोर, पुणे, बंबई, पटना आदि जैसे केंद्रों के बाद अब भारत के विभिन्न राज्यों में कई और दूरदर्शन-केंद्र खुलने जा रहे हैं। विज्ञान की इस अनूठी उपलब्धि ने अपनी उपादेयता के अनेक क्षितिजों का संधान किया है, देशवासियों का अद्भुत मनोरंजन किया है।

टेलीविजन का सिद्धांत प्रकाश को विद्युत्-तरंगों में बदलने की प्रक्रिया पर आधृत है। एक स्थान पर विद्युत्-तरंगों में परिवर्तित प्रकाश तकनीकी संघातों से दूसरी जगह चित्र में बदल जाता है, यही दूरदर्शन की मूल धारणा है। जैसे हम रेडियो की आवाज को वायु-तरंगों से प्राप्त करते हैं, उसी तरह चित्रों को भी टेलीविजन ग्रहण करता है। लेकिन, वे चित्र अस्त-व्यस्त उपलब्ध नहीं होते। दूरदर्शन-केंद्र में चित्र और ध्वनि को अदृश्य तरंगों में बदलकर वायुमंडल के एक विशेष स्तर पर छोड़ दिया जाता है। टेलीविजन कैमरे में संयोजित एलेक्ट्रॉन की नलिका दृष्टि का कार्य करती है। नली से होकर प्रकाश परदे पर पड़ता है और तब एलेक्ट्रॉन परदे से अलग हो जाते हैं। एलेक्ट्रॉन के यही बिखरे हुए कण परदे से होकर चित्र-प्रवाह में बदल जाते हैं और मकानों की छतों पर लगे ऐंटीना के सहारे टेलीविजन के परदे पर दृष्टिगोचर होते हैं। दूरदर्शन की यह तकनीकी प्रविधि जटिल होकर भी इतनी युगांतरकारी है कि तेजी के साथ टेलीविजन लोकप्रियता के शिखर को छूने लगा है। अब यह केवल संपन्नता का प्रमाण नहीं रह गया है, अपितु अपनी उपादेयता के कारण भी आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। किसी भी बड़े शहर में घूमने जाइए, दूर-दूर तक छतों पर ऐंटीना की शृंखलाएँ नजर आएँगी। यह टेलीविजन की असीम जनख्याति का जीवंत प्रमाण ही तो है।

टेलीविजन की उपादेयता का सबसे विस्तृत आयाम मनोरंजन है। कहीं दूर होनेवाले खेलों, संगीत-समारोहों और सभाओं को अपने कमरे में बैठे देखना टेलीविजन ने ही संभव किया है। फिल्मों का प्रदर्शन आरंभ हो जाने के बाद तो टेलीविजन ने दर्शकों को सिनेमाघरों की उबाऊ यात्रा से बहुत हद तक बचाया है। इसी कारण आज वीडियो कैसेट्स का आकर्षण उन्माद की हद तक है। अब तो टेलीविजन का एक नया आयाम भी सामने आया—'केबुल वीडियो'। जिस प्रकार तार की सहायता से बिजली को दूर-दूर तक वितरित किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार केबुल की सहायता से कोई वीडियो कार्यक्रम एक साथ अनेक टेलीविजन-परदों पर दिखाया जा सकता है। यानी टेलीविजन-कार्यक्रम पानी के नल जैसी शक्ल पा गए, जब जी में आया केबुल वीडियो का चैनेल चालू कर अपने ही घर में आराम से लेटकर कार्यक्रम देख लिया। टेलीविजन के इन नए रूपों में रंगीन दूरदर्शन की भी अपनी पहचान है। रंगीन टेलीविजन की पहली प्रस्तुति 1928 ई० में हुई थी और 1954 ई० तक तो पश्चिमी जगत् में रंगीन टी० वी० को प्रसार मिल चुका था। 15 अगस्त, 1982 से भारत में भी रंगीन दूरदर्शन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की शुरुआत हुई। टेलीविजन में थ्री-डी का आविष्कार पश्चिमी जर्मनी की 'अब्दी' नामक कंपनी ने मार्च, 1982 में किया। 1984 ई० में इस त्रि-आयामी टेलीविजन का व्यावहारिक उत्पादन शुरू हो गया। हमारे देश में 25 मार्च, 1985 को दिल्ली में सूचना एवं प्रसारण-मंत्री बी० एन० गाडगिल ने 'निकीताशा' द्वारा निर्मित त्रि-आयामी टेलीविजन सेट का उद्घाटन किया।

शिक्षा और जनसंपर्क, मनोरंजन और विज्ञापन के अनेकानेक क्षेत्रों में टेलीविजन की उपयोगिता आधुनिक परिवेश की अनिवार्यता बन गई है। आनेवाले दिनों में टेलीविजन रेडियो की ही तरह सर्वसुलभ और सर्वप्रिय होगा, ऐसी आशा की जाती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देशाटन

[प्रारंभ, लाभ, महत्ता, उपसंहार]

अपने घर की बँधी चहारदीवारी से दूर—मीलों दूर, केवल देशदर्शन के उद्देश्य से निकल जाना देशाटन कहलाता है। एक स्थान पर रहते-रहते जीवन में एकरसता आ जाती है। भ्रमण उस एकरसता को खंडित करता है। एक स्थान पर रहते-रहते कुएँ के मेढक की तरह वही सँकरा स्थान समुद्र लगने लगता है। बाहर निकल पड़ने से ज्ञान का क्षितिज फैलता है, अनुभव की जड़ें गहरे फैलती हैं।

पुस्तकीय ज्ञान में प्रत्यक्ष अनुभव का संस्पर्श नहीं होता; केवल वस्तु या स्थान के बारे में हमारी एक अस्पष्ट और मोटी धारणा होती है और उसी धारणा के सहारे मानस-प्राणायाम् द्वारा हम जीवनभर काम चलाते रहते हैं। साक्षात् न होने तक समुद्र, पर्वत, वन हमारे लिए कोश के निर्जीव शब्दमात्र होते हैं; ताजमहल, अजंता, कोणार्क और खजुराहो हमारे लिए भूगोल या सामान्य ज्ञान के प्रश्नभर बनकर रह जाते हैं। किंतु, एक बार जिसने इनका साक्षात्कार किया, उसके समक्ष ये शब्द सत्य के साक्षात्कार होकर मृदुल, मोहक और सतर्क भावनाओं का संचार करते हैं।

अगस्तीन ने कहा है, "संसार एक महान पुस्तक है। जो घर से बाहर नहीं निकलते, वे केवल इस पुस्तक का एक पृष्ठ ही पढ़ पाते हैं।" संस्कृत की प्रसिद्ध कहावत है कि समझदारी पाने के दो ही मार्ग हैं—देशाटन और विद्वानों का सत्संग, 'देशाटनं पण्डितमित्रता च'। हमारे यहाँ संस्कृत के वाणभट्ट से हिंदी के राहुल सांकृत्यायन तक महान साहित्यकार इसलिए हैं कि उनका संपूर्ण साहित्य देशाटन का चलचित्र ही है। राहुलजी ने तो भ्रमण को एक विधा ही माना और इस विधा पर एक शास्त्र ही लिख दिया—'घुमक्कड़शास्त्र'। हमें तो ऐसा लगता है कि परमात्मा से बढ़कर कोई दूसरा बड़ा चित्रकार नहीं है। यह संसार उनकी मनोहर चित्रशाला है। जो अपने घर से नहीं निकलते, वे क्या जानते कि यह जगत् कितने लुभावने चित्रों से भरा है! कहीं गंगा, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी, राइन, वोल्गा जैसी नदियाँ कल-कल छल-छल करती हुई मधुर सरगम सुनाती हैं, तो कहीं हिमालय और आल्प्स जैसे नगराजों की तुषारमंडित चोटियाँ नीले नभ को आलिंगनपाश में बाँधने को व्याकुल हैं; कहीं शाल और देवदार के वन प्रकृति रानी के रोंगटे-से खड़े हैं, तो कहीं केसर की क्यारियाँ उसकी मुस्कराहटों का सोना लुटा रही हैं। जिसने कश्मीर की मनोहारिणी घाटियों का भ्रमण नहीं किया, वह कैसे समझेगा इस कथन को कि 'पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है'। इसीलिए, कश्मीर को पृथ्वी का स्वर्गखंड कहा जाता है।

जिसने स्विट्जरलैंड की तुषारमंडित पहाड़ियाँ नहीं देखीं, जिसने मस्ती का फव्वारा छोड़नेवाले न्याग्रा के जलप्रपात को नहीं देखा, जिसने समुद्र की गोद में लेटे हुए द्वीपों को नहीं देखा, उसे क्या मालूम कि विधाता का काव्य कितना रमणीय है! जिसने पुरी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के सागरतट के दर्शन नहीं किए, वह क्या जाने कि समुद्र की उत्ताल तरंगें किस बेचैनी से किनारों को चूमने के लिए दौड़ती रहती हैं ! जिसने खिलखिलाती चाँदनी में ताजमहल को नहीं देखा, वह क्या जाने कि पत्थर का एक स्मारक क्यों संसार के सात आश्चर्यों में परिगणित होने लगा ! जिसने अजंता-एलोरा की गुफाएँ नहीं देखीं, जिसने कोणार्क और खजुराहो के मंदिर नहीं देखे, वह क्या जाने भारत की मूर्तिकला और चित्रकला की महत्ता को ! जिसने लंदन, मास्को, न्यूयार्क और बंबई जैसे महानगर नहीं देखे, वह क्या जाने आधुनिक विज्ञान और भवननिर्माण-कला की करामातों को ! भ्रमण सृष्टि की विलक्षणता एवं मानव की महत्ता के अनगिनत रहस्य-पृष्ठों का अनावरण करता है। डॉ० जॉनसन का कहना है कि यात्रा कल्पना को वास्तविकता में व्यवस्थित कर देती है (The use of travelling is to regulate imagination by reality.)।

भ्रमण से एक नहीं, अनेक लाभ हैं। 'ऐतरेयब्राह्मण' के 'हरिश्चंद्रोपाख्यान' में भ्रमण की महिमा का बखान किया गया है। वही 'चरैवेति चरैवेति—चलते रहो, चलते रहो' का दिव्य मंत्रगीत गाया गया है।

इस तरह, पर्यटन से सहिष्णुता, मुक्त और उदार विचार, व्यवहारकुशलता आदि की वृद्धि होती है। इससे मनुष्य पूर्वाग्रहों से मुक्त होता है। किसी विचारक ने कहा है—जो अपने देश के सिवा अन्य देश घूमने नहीं गया है, वह सीमित दृष्टिकोण का होता है (He, who never leaves his own country, is full of prejudices.)। संसार के जितने महान लेखक और कवि हुए हैं, सबका साहित्य उनकी धरती, उनकी प्रकृति, उनके देशवासियों के जीवन को प्रतिबिंबित करनेवाला स्वच्छ दर्पण है। कविकुलगुरु कालिदास ने यदि भारत-भ्रमण नहीं किया होता, तो उनके लिए अपने 'मेघदूत' में महाराष्ट्र, मध्य-प्रदेश तथा उत्तरप्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य उतारना संभव नहीं होता। यदि **मोलियर** ने अनेक देशों की यात्राएँ न की होतीं, तो वे 'दोन् जुआ' जैसी अनुभूतिपूर्ण व्यंग्यनाटक नहीं रच पाते। ई० एम० फास्टर का '*A Passage to India*', किपलिंग का '*Kim*' तथा विलियम विलकी का '*One World*' कभी लिखा नहीं जाता, यदि इन महान लेखकों ने इतना देशाटन न किया होता। मार्कोपोलो, हुएनसांग, मेगास्थनीज, फाहियान, वर्नियर, खलदून इत्यादि के जो यात्रा-वृत्तांत हैं, वे तद्युगीन समाज के प्रामाणिक ऐतिहासिक पंचांग हैं।

अपने देश की यात्रा से हम अपने विभिन्न राज्य, रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, आचार-व्यवहार, पर्व-त्योहार, भाषा-साहित्य, कृषि-व्यापार, तीर्थ-नगर, कल-कारखाने, उद्योग-धंधे, नदी-पहाड़ इत्यादि न मालूम कितनी चीजों की जानकारी प्राप्त करते हैं। इससे जाति-वर्ग की संकुचितता समाप्त होती है, छुआछूत का भाव दूर होता है और हममें राष्ट्रीय ऐक्य की नींव मजबूत होती है। इसी प्रकार, विश्वभ्रमण से विभिन्न देशों के धर्म, दर्शन, राजनीति, इतिहास, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, भूगोल इत्यादि की जानकारी तो होती ही है, हमारी संकीर्णता की सीमाएँ तो टूटती ही हैं, साथ-ही-साथ हममें विश्व-बंधुत्व की भावना भी विकसित होती है। विभिन्न देशों के महापुरुषों से मिलकर हम अपना वैयक्तिक उत्थान तो करते ही हैं, साथ-ही-साथ विभिन्न देशों की योजनाओं, उनके विकासकार्यों को देखकर अपने देश को वहाँ तक पहुँचाने के लिए कृतसंकल्प भी होते हैं।

अतः, भ्रमणवृत्ति की जितनी भी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। यदि हम अखंड विश्व की भावना स्वयं में विकसित करना चाहते हैं, तो हमें अवश्य देश-देशांतर घूमना चाहिए। अपने जीवन में अपने देश के चारों छोरों पर बसे चारों धामों की कम-से-कम एक यात्रा हमारे धर्मशास्त्र में पुण्य-कर्तव्य कही गई है। इस पुण्य के पीछे धर्मशास्त्र की धारणा यही थी कि इससे हम कम-से-कम अपने सारे देश को तो देख-समझ अवश्य लेंगे। भूगोल की दीमक खायी जीर्ण मोटी पुस्तकों की तोतारटंत के बदले प्रकृति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की खुली स्वर्णिम-स्वच्छ पुस्तक के कुछ ही पृष्ठ यदि हम पढ़ जाएँ, तो हमारे ज्ञान के वातायन चतुर्दिक खुल जाएँ और चरित्र की ऊँचाई में न मालूम कितनी वृद्धि हो जाए ! हम तो आपसे यही कहेंगे—

सैर कर दुनिया की गाफिल, जिंदगानी फिर कहाँ ?
जिंदगानी गर मिली, तो नौजवानी फिर कहाँ ?

अंतरिक्ष-यात्रा

[भूमिका, अनुसंधान, प्रयत्न, उपसंहार]

पटना के दिल्ली की यात्रा हम भले ही रेलगाड़ी से कर डालें, दिल्ली से लंदन की यात्रा के लिए हम भले ही वायुयान का सहारा लें, किंतु आज जब हमने चंद्रलोक और मंगललोक की यात्राओं के लिए साहस बटोर लिया है, तो फिर हमें एक अतिद्रुत यान का निर्माण करना ही है। अब हजारों मील दूरी का प्रश्न नहीं, बल्कि लाखों मील (चाँद की दूरी—लगभग 3 लाख 81 हज़ार 900 किलोमीटर) दूरी का प्रश्न हो गया है।

बादलों के पार कौन-सा चंदनचर्चित चाँदनी का देश है, दूर-दूर मुस्कराहट बिखेरते तारों की दुनिया कैसी है, अब तक सुंदरता और कल्पना की रंगीनी बिखेरनेवाले तथा सपनों का जाल बुननेवाले चाँद का सुनहरा संसार कैसा है, ज्योतिष की पुस्तकों में वर्णित मंगल, बुध आदि ग्रहों का साम्राज्य कैसा है—यह सब जानने के लिए मानव का जिज्ञासु मन मचल उठा है। परीक्षणों की पगडंडियों से गुजरता मानव आज चाँद पर छलाँग मारकर पहुँच चुका है। इस कार्य के लिए उस स्थलयान, जलयान, वायुयान जैसा मृदु-मंद-मंद नहीं, वरन् वायु-ध्वनि-प्रकाश तक की गति को मात करनेवाला अतिक्षिप्र यान—अंतरिक्ष-यान—चाहिए, जिसकी गति अट्ठाइस हजार किलोमीटर प्रति घंटा से अधिक हो।

अंतरिक्ष-यान के निर्माण में रूस और अमेरिका में होड़ लगी हुई है। सबसे पहले रूस ने 4 अक्तूबर, 1957 को स्पुतनिक छोड़ा। फिर 4 नवंबर, 1957 को उसने अपने यान में 'लायका' नाम की प्रशिक्षिता कुतिया भेजी। 18 नवंबर, 1959 को अमेरिका ने अपने अंतरिक्ष-यान में दो बंदर भेजे।

विज्ञान का सबसे बड़ा आश्चर्य रूसी रॉकेट 'ल्युनिक-1' 2 जनवरी, 1959 को छोड़ा गया। यह चंद्रमा के निकट से गुजरता हुआ एकदम आगे बढ़ गया और सूर्य की पकड़ में आकर उसकी परिक्रमा करनेवाला बन गया। इसके पूर्व कोई अंतरिक्ष-यान पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति से मुक्त होकर बाहर नहीं जा सका था। फिर रूस ने 'ल्यूनिक-3' छोड़ा। 12 अप्रैल, 1961 को रूस ने 'वोस्तोक-1' छोड़ा, जिसमें विश्व के सर्वप्रथम अंतरिक्षयात्री मेजर यूरी ऐलेक्जीविच गागरिन महोदय बैठे थे। जब गागरिन महोदय अंतरिक्ष-यात्रा करके लौटे, तब रूस में उनका कितना भव्य स्वागत हुआ था, इसे हम जानते हैं।

रूस ने 18 नवंबर, 1965 को 'वोस्तोक-2' छोड़ा। इसमें कर्नल लियोनोव तथा कर्नल वेल्यायेव सवार थे। दोनों ने अंतरिक्ष-यान के द्वारा पृथ्वी की एक परिक्रमा समाप्त कर डाली। इसके पश्चात् दूसरी परिक्रमा में कर्नल लियोनोव अंतरिक्ष-यान के बाहर निकले और उन्होंने अंतरिक्ष में चहलकदमी शुरू की। धीरे-धीरे अंतरिक्ष में कूद पड़े। लंबे खजूर-पेड़ से गिरने पर आदमी चकनाचूर हो जाता है, किंतु इतनी ऊँचाई

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से लियोनोव महोदय गिरे भी नहीं, चकनाचूर होने की बात कौन कहे! कारण, इतनी ऊँचाई पर पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति समाप्त हो जाती है और हर वस्तु भारहीन हो जाती है। अंतरिक्ष में तैरनेवाले विश्व में सर्वप्रथम व्यक्ति थे लियोनोव।

'वोस्तोक-6' में रूस की महिला वेलेंतिना निकोलायेवा अंतरिक्ष का तेरेश्कोवा चक्कर लगा आईं। इस क्षेत्र में कभी रूस, कभी अमेरिका मैदान मारते आगे बढ़ते रहे। 21 दिसंबर, 1968 को अमेरिका ने 'अपोलो-8' नामक अंतरिक्ष-यान भेजा। इसने 10 बार पृथ्वी की परिक्रमा की और निर्धारित समय पर 27 दिसंबर, 1968 को पृथ्वी पर लौट आया। इस अंतरिक्ष-यान ने 8 (आठ) लाख किलोमीटर की यात्रा की। सबसे अधिक गति 38,700 किमी प्रति घंटा थी। इस खतरनाक यात्रा में फ्रैंक बोरमैन, जेम्स लावेल तथा विलियम एंडर्स के अदम्य साहस की जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। 'अपोलो-9' में जेम्स डेविड, जेम्स स्कॉट तथा रसेल स्केल ने यात्रा की।

मई, 1969 में चंद्रमा पर उतरने के शानदार नाटक का पूर्वाभिनय अंतरिक्ष-यान 'अपोलो-10' छोड़कर किया गया। इसके तीन यात्री (थोमस स्टाफोर्ड, जॉन यंग तथा यूजीन कारनान) अंतरिक्ष-यान को चंद्रकक्ष में ले गए। एक अंतरिक्ष-यात्री मूलयान को कक्ष में घुमाता रहा तथा अन्य दो यात्री चंद्रयान में बैठकर उसे चंद्रमा से केवल 15 किलोमीटर की दूरी पर ले गए। इन यात्रियों ने 'अपोलो-11' से यात्रियों के उतरने के संभावित स्थानों का निकट से अध्ययन किया। चंद्रयान को मूलयान से जोड़कर ये तीनों यात्री सकुशल पृथ्वी पर लौट आए।

16 जुलाई, 1969 को संध्या 7 बजकर 2 मिनट पर 'अपोलो-11' नामक अंतरिक्ष-यान ने अमेरिका के केप कैनेडी से प्रस्थान किया। इसपर तीन यात्री सवार थे—नील ए॰ आर्मस्ट्रांग, एडविन ई॰ एल्ड्रिन और माइकेल कॉलिन्स। भारतीय समय के अनुसार 1 बजकर 47 मिनट पर किसी अन्य ग्रह पर मानव ने प्रथम बार पदार्पण किया। असीम अंतरिक्ष को भेदते हुए पृथ्वी से 4 लाख किलोमीटर की दूरी तय करने में मनुष्य को 102 घंटे 45 मिनट 42 सेकेंड लगे। 21 जुलाई को 8 बजकर 27 मिनट प्रातःकाल आर्मस्ट्रांग ने अपना विजयचरण चंद्रलोक पर रखा। यह मानव-इतिहास की सबसे बड़ी घटना थी। मानव-अनुसंधान की सबसे बड़ी उपलब्धि के नायक आर्मस्ट्रांग ने अखिल विश्व से अनंत शुभकामनाएँ प्राप्त कीं। आर्मस्ट्रांग ने वहाँ पहुँचकर जो अपनी सर्वप्रथम प्रतिक्रिया व्यक्त की, वह थी—"सुंदर दृश्य है; सब कुछ सुंदर है।" आर्मस्ट्रांग के बीस मिनट बाद एल्ड्रिन चंद्रतल पर उतरे। चंद्रतल को 'नीरहीन शांत समुद्र' की संज्ञा दी गई।

दोनों यात्रियों ने बताया है कि चाँद की जमीन बड़ी सख्त है। वहाँ की तुलना उन लोगों ने अमेरिका के पश्चिमी रेगिस्तान से की है। चंद्रतल पर अनगिनत ज्वालामुखी हैं। वहाँ से जो मिट्टी और चट्टानों के नमूने लाए गए हैं, उनके अध्ययन से चंद्रलोक के बारे में बहुत-सी बातों की जानकारी होगी।

चंद्रतल के 'भव्य एकांत' में लगभग बाईस घंटे की चहलकदमी के बाद ये वहाँ से 22 जुलाई को 10 बजकर 25 मिनट पर विदा हुए। 24 जुलाई की रात्रि 10-20 बजे यह यान प्रशांत महासागर में सकुशल उतर गया। इस अवसर पर इन यात्रियों को बधाई देने स्वयं राष्ट्रपति निक्सन पहुँचे थे।

स्व॰ राष्ट्रपति कैनेडी ने 25 मई, 1969 को कहा था, "अमेरिका को इस दशाब्दी से पूर्व ही मानव को चंद्रमा पर उतारने तथा उसे सकुशल पृथ्वी पर लौटाने का लक्ष्य निर्धारित करके पूरा कर दिखाना चाहिए।" राष्ट्रपति कैनेडी का स्वप्न साकार हुआ, जब 22 जुलाई को चंद्रयात्रियों ने एक धातुफलक चंद्रलोक पर छोड़ा जिसमें लिखा था;

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

''जुलाई, 1969 में पृथ्वी से मानव चंद्रमा के इस स्थान पर उतरे। हम यहाँ सारी मानवजाति के लिए शांति की कामना लेकर आए।''

19-20 नवंबर, 1969 को दूसरी बार 'अपोलो-12' के दो अंतरिक्षयात्री चार्ल्स कॉनराड तथा एलेन बीन साढ़े इकतीस घंटे तक चाँद के तूफानी सागर का पर्यटन कर आए।

'अपोलो-13' 11-12 अप्रैल, 1970 को भारतीय समय के अनुसर रात्रि के 12 बजकर 43 मिनट पर फ्लोरिडा के अंतरिक्ष अड्डे से धुएँ का बादल छोड़ते हुए चला था। इसपर जेम्स ए० लॉविज जुनियर, जॉन स्वीगर्ट और फ्रेड डब्लू० हेज जूनियर सवार थे। दुर्भाग्य से इसके सेवाकक्ष में गड़बड़ी पैदा हो गई। इन यात्रियों को चाँद के 'फ्रा मौरा' क्षेत्र में उतरना था। किंतु, अब चाँद पर जाने की बात कौन कहे, इन्हें पृथ्वी पर उतरने की चिंता होने लगी।

इससे अंतरिक्ष-यात्रा के इतिहास में एक अद्‌भुत अध्याय का आरंभ हुआ। पृथ्वी से लाखों मील दूर, चाँद के गुरुत्वाकर्षण में कैद, घायल चंद्रयान को पृथ्वी पर किसी प्रकार से ले आने की चेष्टा की जाने लगी। मौत के दरवाजे से इन उड़ाकों को वापस लाने की कहानी सचमुच बड़ी ही रोमांचक है। इन तीनों यात्रियों को यान में अनगिनत संकटों का सामना करना पड़ा; जैसे पानी, बिजली, ऑक्सीजन का संकट, असह्य सर्दी आदि, पर इनका सकुशल पृथ्वी पर लौट आना चाँद की धरती पर कदम रखकर वापस आने से भी अधिक लोमहर्षक और आश्चर्यजनक था।

सच कहा जाए तो महाकाश में मृत्यु की घाटी से मनुष्य का इस प्रकार बाल-बाल बच जाना चाँद पर कदम रखने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। चाँद पर चरण रखकर मनुष्य को यह मालूम हुआ था कि वह अन्य ग्रहों को जीत सकता है, पर चंद्र-लोक की यात्रा के दौरान अचानक विपत्तियों के आ जाने पर मनुष्य उनपर भी विजय पा सकता है—यह कथा अज्ञात थी। 'अपोलो-13' ने सिद्ध कर दिया कि मानव पृथ्वी से लाखों मील दूर महाकाश और महाकाल के संधिस्थल पर भी अपराजेय है।

इसके बाद 'अपोलो-14' और '15' चंद्रतल पर जाकर सकुशल पृथ्वी पर लौट आए। 1972 ई० के अप्रैल महीने में 'अपोलो-16' रवाना हुआ। इस यान में कप्तान जान यंग, लेफ्टिनेंट कर्नल चार्ल्स ड्यूक और लेफ्टिनेंट कमांडर टॉमस मार्टिंगले थे। यह यात्रा बहुत बड़ी सफल रही। ये यात्री चंद्रतल से एक सौ ग्यारह किलो चट्टान लेकर पृथ्वी पर उतरे। 5 दिसंबर, 1972 को 'अपोलो यान-17' से स्मिट और सरनान दो यात्री 75 घंटे तक चाँद की दुनिया में सैर कर सकुशल लौट आए। यह यात्रा इस सदी की अमेरिका की ओर से अंतिम अपोलो-यात्रा थी।

रूस ने चाँद के अलावा शुक्रग्रह पर भी उपग्रह छोड़ा। 16 मई, 1969 को रूसी यान शुक्रग्रह पर उतरा। इससे प्राप्त सूचनाओं के अनुसार मनुष्य का शुक्रग्रह पर निवास करना संभव नहीं है। इसी तरह मंगल, बृहस्पति, शनि आदि ग्रहों की दिशा में भी अनेक अंतरिक्ष-यात्राएँ मानवकृत उपग्रहों ने की हैं। अंतरिक्ष के विभिन्न ग्रहों की ओर न मनुष्य का आकर्षण समाप्त हुआ है और न उसके एतद्विषयक प्रयास की ही इति हुई है। इसी क्रम में प्रथम भारतीय अंतरिक्ष-यात्री राकेश शर्मा का नाम भी गौरव के साथ लिया जाएगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रेलयात्रा

[आरंभ, मार्गवर्णन, पर्यवसान]

नगर में जन्म लेने के बावजूद मैट्रिकुलेशन तक मुझे कभी लंबी रेलयात्रा का शुभावसर प्राप्त न हो सका। इस बार जब मैंने कॉलेज में नाम लिखाया और काशी की बेहद प्रशंसा सुनी, तब मेरा मन वहाँ जाने के लिए मचल उठा। काशी के बारे में मैं भी जानता था कि यह भूतभावन परमकल्याणकारी त्रिशूलधारी विश्वनाथ महादेव की नगरी है, काशी चंद्रमौलि की कीर्तिकौमुदी से अहरह प्रकाशित होती रहती है। इसे ही वाराणसी कहते हैं—वरुण और असी नदियों के, गंगा के मिलन-बिंदु पर बसी वाराणसी 'यस्य क्वचित् गतिर्नास्ति तस्य वाराणस्यां गतिः' का उद्घोष करती है। सचमुच काशी-वाराणसी के माहात्म्य का ऐसा उदात्त वर्णन पुराणकार, श्रीहर्ष, तुलसीदास तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया है कि इस पूजावकाश में वहाँ की यात्रा मेरे लिए अनिवार्य बन गई।

आश्विन का समशीतोष्ण महीना। कंधे पर झोला लटकाए मैं पटना जंक्शन के द्वितीय श्रेणी टिकटघर की ओर गया, क्योंकि यही अब तृतीय श्रेणी के बराबर है। राष्ट्रपिता बापू ने लिखा है कि वे रेलवे के तीसरे दर्जे में इसलिए सफर करते रहे कि उसमें चौथा दर्जा होता ही नहीं। यदि चौथा दर्जा होता, तो वे उसमें ही यात्रा करते। यह उनका जीवनसिद्धांत था, उनका सादा रहन-सहन था, किंतु मेरी विवशता थी, पॉकेट की तंगी थी। इसलिए मुझे इधर आना पड़ा था, नहीं तो मैं प्रथम श्रेणी में ही यात्रा करता। टिकट-खिड़की के सामने एक लंबी लाइन (क्यू) लगी थी। गाड़ी आने का समय निकट आता जा रहा था, लोगों के धीरज का बाँध टूटता जा रहा था। कुछ लोग रेलपेल कर आगे बढ़ जाना चाहते थे। मैं भी किसी तरह बीच में घुसा, शरीर की अनचाही मालिश करवाई, कमीज नुचवाई और किसी तरह टिकट लेकर पुल पर दौड़ता हुआ उस प्लेटफार्म पर आया, जहाँ दिन के बारह बजकर पंद्रह मिनट पर काशी जानेवाली अपर इंडिया एक्सप्रेस आनेवाली थी।

सवा बारह क्या, सवा एक हो गया। गाड़ी नहीं आई। यात्री उत्सुक नेत्रों से अपनी प्रेयसी के आगमन की भाँति गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्लेटफार्म पर काफी भीड़ थी, जैसे किसी संपन्न व्यक्ति की बारात ठहरी हो। खोमचे और अखबारवाले रंग-बिरंगी आवाज में चिल्ला रहे थे। इसी बीच गाड़ी की घरघराहट सुनाई पड़ी। आकृतियाँ सूर्यमुखी-सी खिल उठीं, प्लेटफार्म के सागर में तूफान उठ आया।

गाड़ी स्टेशन पर लगी क्या, चढ़ने-उतरनेवालों का मल्लयुद्ध शुरू हो गया। डिब्बे ठसाठस भरे थे। किसी तरह मैंने एक पावदान पर शरण पाई। गार्ड ने हरी झंडी दिखाई, सीटी मारी और गाड़ी प्लेटफार्म को उदास बनाती बढ़ चली। गाड़ी छकछक करती बढ़ी। सचिवालय का गुलाबी टावर दिखाई पड़ा, जिसके आगे देश पर कुर्बान होनेवाले वीरों का शहीद-स्मारक है। इसी सचिवालय में अधिकारियों की संचिकाओं में बिहार का भाग्य भटकता रहता है तथा विधानसभाओं के मखमली गद्दों पर जनता के प्रतिनिधि दंगल कर मंगल बनाते हैं। गाड़ी भागी जा रही है—फुलवारीशरीफ, दानापुर, नेउरा, सदीसोपुर, बिहटा, कोइलवर ! कोइलवर के पुल ने विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। यह शोणनद पर बना पुल है। ब्रह्मलोक से जब देवी सरस्वती पृथ्वीतल पर उतरी थीं, तब उनका मन शोणतट का सौंदर्य देखकर इतना अभिभूत हो गया था कि उन्होंने यहीं विश्राम करने का निश्चय लिया। इस शोण के समक्ष उन्हें देवनदी मोक्षसरणि मंदाकिनी भी फीकी लगी थी। शोणनद वरुणदेव के हार के समान है,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चंद्रपर्वत से झरते हुए अमृतनिर्झर के समान है, विंध्यपर्वत से बहते हुए चंद्रकांतमणि के प्रवाह के सदृश है, दंडकारण्य के कर्पूरवृक्ष से बहते कर्पूरी प्रवाह के समान है, दिशाओं के लावण्य-रस के सोते के समान है, आकाशलक्ष्मी के शयन के लिए स्फटिक के शिलापट्ट के समान है। मैं बाणभट्ट के 'हर्षचरित' की स्मृति के चित्रों को सँजो ही रहा था कि गाड़ी आरा स्टेशन पर आ लगी। पता नहीं, आरा नाम यहाँ के लोगों की बोली के रुखड़ेपन के कारण पड़ा या आक्रामकों के शिरःछेद के कारण—समझ नहीं पाता। सुना, यहीं स्वातंत्र्य-संग्राम के अमर सेनानी बाबू कुँवर सिंह ने साम्राज्यवाद का कालपाश फैलानेवाले अँगरेजों को कैद कर रखा था और उनके छक्के छुड़ाए थे।

गाड़ी बेतहाशा भागी जा रही थी। डिब्बे का शोरगुल थोड़ा कम हुआ। इस डिब्बे को देखकर ही ऐसा मालूम पड़ता था कि भारत सचमुच धर्मनिरपेक्ष राज्य है। हिंदू, मुसलमान, सिक्ख—एक साथ बैठे चीनियाबादाम खाते, रामायण, कुरान-शरीफ और गुरुग्रंथसाहब पर प्रेमपूर्ण बातें करते जा रहे थे। बाहर जब नजर गई, तब लगा कि ट्रेन कई छोटे-छोटे स्टेशनों को बेरहमी से छोड़ती चली जा रही है। प्लेटफार्म पर मुसाफिर ऐसे दीनभाव से खड़े थे, जैसे उनके समक्ष अवसर का स्वर्णरथ आया और बिना कुछ लुटाए भाग गया। फिर रघुनाथपुर आया और गोस्वामी तुलसीदास की स्मृति ताजी हो उठी। कहा जाता है कि गोस्वामीजी की चरणधूलि इस स्थान को पवित्र कर गई थी। उसके बाद डुमराँव। लोगों ने बताया कि यहाँ एक बार पंजाबमेल की लोमहर्षक दुर्घटना हुई थी। न मालूम कितने व्यक्ति मौत के अंधे कुएँ में गिरे थे। कल्पना से जी सिहर उठता है और मुझे बाबा विश्वनाथ की याद हो आती है।

तब बक्सर आया। जी ! सिद्धाश्रम। यहीं महर्षि विश्वामित्र ने महायज्ञ किया था और श्रीराम ने उनके यज्ञ की रक्षा करते हुए ताड़का-सुबाहु का वध किया था तथा मारीच को बाण की नोंक पर सैकड़ों मील दूर फेंक दिया था। उन्होंने यहीं गुरु को प्रसन्न कर बला और अतिबला नाम की दुर्लभ विद्याएँ पाई थीं। यहीं 22 अक्टूबर, 1764 के दिन शाहआलम, मीरकासिम और शुजाउदौला की सम्मिलित सेना अँगरेजों से पराजित हुई थी। यहीं भारत के भाग्य पर पूरी कालिमा छा गई और भारतमाता अँगरेजों के बंदीगृह में पूरी तरह बंदिनी हो गई थीं। यही याद कर मेरे मन पर गहरा अवसाद छा गया। इतिहास के खँडहर में रेंगती हमारी दुर्गति की कहानियाँ बार-बार मेरे मन को कुरेदने लगीं।

और, अब चौसा स्टेशन आया है। यहीं 26 जून, 1539 में हुमायूँ शेरशाह से पराजित होकर कन्नौज की ओर भागा था। गंगा में कूदते समय उसकी जान एक भिश्ती ने अपनी मशक की सहायता से बचाई थी। उपहार में उसे एक दिन का राज्य मिला था और उसने चमड़े का सिक्का चलाया था। काश ! हमें भी एक दिन का राज्य मिल पाता—मन में लोभ हो आता है। चौसा के बाद ही कर्मनाशा नदी है। कहा जाता है कि यह स्वर्गकामी त्रिशंकु की टपकी लार से बनी है। बात सच्ची हो या झूठी, किंतु अभी तो यह बिहार और उत्तरप्रदेश के बीच संधिविच्छेद के चिह्न-सी है।

चौसा के बाद गहमर। यहीं के सुप्रसिद्ध जासूसी उपन्यासकार गोपालराम गहमरी थे, जिन्होंने लगभग तीन सौ उपन्यास लिखे थे। इनके 'यमुना का खून', 'गेरुआ बाबा', 'डाइन की लाश', 'भूतों का डेरा', 'जवाहरात की चोरी' जैसे उपन्यास पढ़ें, तो कॉनन डॉयल के थ्रिलर भी फीके मालूम होंगे। गहमर के बाद भदौरा और भदौरा के बाद दिलदारनगर आ जाता है। कहा जाता है कि दिलदार साहब अठारहवीं शताब्दी के बड़े मशहूर आदमी थे और वे फुलवारीशरीफ के मुरीद थे। फिर कई छोटे-मोटे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्टेशनों को निष्ठुर नायिका की तरह छोड़ती हुई बेरहम गाड़ी मुगलसराय चली आती है। मुगलों के शासन की अनेक गमनाक कहानियाँ मानसपटल पर उभरती हैं। इसी बीच गाड़ी खुल जाती है।

खिड़की के बाहर धानखेतों की बहार नजर आती है। उजली गायों और काली-काली भैसों की गंगा-जमुनी हरे मखमली खेतों की पृष्ठभूमि में बड़ी सुहानी लगती है। और, हाँ ! देखते-देखते भूभाग धारण करनेवाले शेषनाग की उज्ज्वल केंचुल की तरह, सत्ययुग के रथ के धुरे की तरह, कैलाश रूपी हाथी की रेशमी पताका की तरह, पुण्यरूपी पण्य की विक्रयवीथि की तरह देवनदी गंगा दूज के चाँद की तरह नजर आने लगती है। फिर इंद्रधनुष की तरह, किसी कामिनी के भौंह-घुमाव की तरह तना मालवीय-सेतु आ जाता है।

लगता है कि अब हमारे पुण्योदय की चिरप्रतीक्षित वेला आनेवाली है, हमारी आकांक्षाओं की पूर्तिवेला उपस्थित होने ही वाली है कि गाड़ी काशी स्टेशन पर खड़ी हो जाती है। जब भीड़ छँट जाती है, तब स्टेशन-गेट के बाहर आकर एक रिक्शे पर बैठ जाता हूँ। लाल गमछा कंधे पर लपेटे, गले में काली बद्धी बाँधे मस्त रिक्शावाला कह उठता है—किधर बाबूजी !

'बाबा विश्वनाथ की गली' कहते ही मेरा ध्यान उनके दिव्य चरणों पर जा पहुँचता है।

साइकिल की सवारी

[आरंभ, विशेषता, उपसंहार]

आपने चाहे जितनी भी रंगबिरंगी, छोटी-बड़ी सवारियाँ देखी हो, किंतु साइकिल की सवारी सबसे अनोखी, सबसे निराली है। आप जब चाहिए, इसकी सीट पर बैठ जाइए, हैंडिल थाम लीजिए, पैडिल मारते जाइए और मस्ती से निकलते जाइए। जब आप इसपर सवार होते हैं, तब आपकी शान के क्या कहने ! सचमुच साइकिल मस्तमौलों की सवारी है, अल्हड़ नौजवानों की सवारी है, अपनी भुजाओं पर आस्था रखनेवालों की सवारी है, अपनी श्रमशक्ति पर विश्वास रखनेवालों की सवारी है।

वनस्थली की माँग-सी तनी पहाड़ी सड़कों पर साइकिल की सवारी पर जितनी तल्लीनता से आप प्राकृतिक सुषमा का पान कर सकते हैं, शायद ही किसी अन्य सवारी से कर पाएँ। आप बढ़ते जाइए, मौन के संगीत का मजा लेते जाइए, तरुराजि की हरीतिमा से नेत्ररंजन करते जाइए, पर्वत के वक्षःस्थल पर हीरकहार-से तिरते उज्ज्वल जलस्रोत का सौंदर्य निहारते जाइए, तृणाच्छादित तराइयों के बीच वनगायों की बारात देखते जाइए, झुरमुटों के बीच वनजंतुओं की क्रीड़ा निहारते जाइए। अथवा, जिधर सड़कें बनी हों, उन ग्रामीण क्षेत्रों में निकलकर खेत की बालिश्त-भर चौड़ी मेड़ पर साइकिल चलाते हुए सरकस खेलने का मजा लीजिए और साथ ही आनंद मनाइए कि कहीं मकई की धनसिया आपके मस्तक पर गिरकर केसर-सी छा रही है, कहीं गन्ने के पत्ती आपकी छाती से रगड़ खा रही है, कहीं धान के पौधे आपके ठेहुने को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं, तो कहीं शकरकंद की लत्तियाँ साइकिल के चक्के से लिपटने की चेष्टा कर रही हैं, जीने के लिए किसी सहारे की तलाश कर रही हैं या फिर कहीं सौंफ के पौधे अपनी सुगंधि का उपहार देकर आपको फिर-फिर आने का निमंत्रण जता रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अगर पहाड़ी राजमार्ग से निकल जाइए, तो देखिए कि टेसू के लाल-लाल फूल आपके भीतर के दर्द को उभार रहे हैं या वटवृक्ष अपनी घनी डालियों का चँदोवा डालते हुए प्रलयकालीन पारावार में अपनी पत्रशय्या पर पड़े बालगोविंद की कथा याद करा रहे हैं या पीपल के पेड़ प्रह्लाद की कथा याद दिला रहे हैं या पाकड़ के पेड़ आपके ऊपर अपने फलों को टपकाते हुए काकभुशुंडि की कथा का संकेत कर रहे हैं।

अगर मस्ती है आपमें, ऋतुओं की चुनौती स्वीकार करने का सामर्थ्य है आपमें, तो फिर क्या कहने! चाहे लू की चिनगारियाँ उड़ाता ग्रीष्म हो या झड़ी की छड़ी चलाती बरसात या हिमबाण छोड़ता शिशिर—कोई बात नहीं, आप दनादन साइकिल चलाते जाइए, जवानी की पताका उड़ाते हुए निकल जाइए। जो फूलों के पाँवड़े पर नहीं, वरन् शूलों की धार पर मुसकराए, उसका नाम है जवानी। जिसने सर से कफन बाँध लिया, जिसने पीड़ाओं की छाती पर पाँव बढ़ाना जान लिया, उसके लिए साइकिल की सवारी का कोई जवाब नहीं, कोई जोड़ा नहीं।

जी हाँ! यदि कोई दूसरी सवारी से इसकी तुलना करेंगे, तो पता चलेगा इसकी अद्वितीयता का। बिना नीम खाए गुड़ का स्वाद मालूम हो तो कैसे? हाथी रखिए, तो अकेला वह चालीस-पचास व्यक्तियों का राशन साफ कर देगा, घोड़ा रखिए तो कितनी ही घास और दाना हजम कर डालेगा, मोटर रखें तो लिटर-का-लिटर पेट्रोल गटक जाएगी, रेलगाड़ी हो, तो टन-का-टन कोयला हजम कर जाए! और, हवाई जहाज, हेलीकॉप्टर? इन्हें तो बस, अगस्त्य ही समझिए, जो चुल्लू में सागर गटक जाएँ और, रॉकेट? नाम मत लीजिए। इसके चारे-दाने ने तो अमेरिका जैसे सबसे समृद्ध देश की भी हालत बिगाड़ दी है।

इतना ही नहीं, हाथी के लिए हथसार, घोड़े के लिए अस्तबल, मोटर के लिए गैरज और हवाई जहाज या रॉकेट के उड़ान-आवास के लिए सैकड़ों बीघे जमीन चाहिए, किंतु, साइकिल को जहाँ चाहिए, रख लें। बेचारी एक कोने में दुबक जाएगी; न कोई तरद्दुद, न कोई चिंता! खरीदने की बात हो, तो हाथी-घोड़े में दस-पाँच हजार से भी अधिक, मोटर में लाख-दो लाख, हवाई जहाज में कम-से-कम बीस-तीस लाख और अंतरिक्ष यान में करोड़ों-करोड़ की जरूरत, समझिए कि एक राज्य ही बिक जाए। अतः, इतनी सस्ती, इतनी कम कीमती, इतनी तंगदस्ती से गुजारा करनेवाली साइकिल जैसी दूसरी सवारी शायद ही आपको मिले। यदि कहीं हवा निकल गई, तो किसी से पंप माँग लीजिए, नहीं तो चवन्नी पैसे में ही इसकी क्षुधा की शांति कर दीजिए। हाँ, अल्पभोजी विद्यार्थियों की तरह यह भी अल्पभोजी ही है।

जब यह रहती है, तो आपको सुविधा देती है; आनंद देती है; जब चली जाती है, तो बहुत दुःख भी नहीं देती। हाथी, घोड़ा, मोटर के नाश पर तो कलेजा बैठ जाता है, आर्थिक रीढ़ टूट जाती है, किंतु साइकिल के सर्वनाश से भी हमारे ऊपर वैसा शोक का बादल नहीं घिरता। वस्तुतः, गीता के श्रीकृष्ण की भाषा में यदि कोई वस्तु अपने नाश पर 'मा शुचः' का उद्घोष करती है, तो साइकिल ही। यह बराबर कहती है कि जीर्ण वस्त्र के नाश पर नवीन वस्त्र धारण करने की जैसी खुशी है, वैसी ही खुशी होगी आपको मेरे नाश के बाद भी।

यह कभी आपकी कीमती जान को खतरे में नहीं डालती, कभी आपको राहगीरों के थप्पड़ नहीं खिलाती, कभी आपको उपहास के बाण नहीं चुभाती; कभी गालियों का उपहार नहीं दिलाती, कभी अदालतों की धूल नहीं फँकवाती, कभी वकीलों की खुशामद नहीं कराती, कभी आपके लाइसेंस को रद्द नहीं कराती, कभी आपको कठघरे में खड़ा नहीं कराती, कभी पुलिस की हेकड़ी नहीं सहाती। जिन्हें इसपर विश्वास नहीं,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वे तभी विश्वास कर सकते हैं जब उनकी कार से कोई ऐक्सिडेंट हो जाए, किसी व्यक्ति को मामूली-सा धक्का भी लग जाए।

यह कभी आपको प्रतीक्षा का दारुण दुख नहीं देती। मोटर से आ रहे हैं, गुमटी बंद ! घंटों तक कोफ्त। कोई उपाय नहीं। रेलगाड़ी से आ रहे हैं, कुछ कर्मचारियों ने रेलवे लाइन पर इसलिए सत्याग्रह कर रखा है कि एक अधिकारी ने एक खलासी को इसलिए बर्खास्त कर दिया कि वह मालगाड़ी के डिब्बे से सामान गायब करते हुए रँगे हाथ पकड़ा गया। जब तक फैसला न हो, तब तक आपकी रेलगाड़ी रुकी रहेगी। आपके लिए कोई उपाय नहीं है। किंतु, साइकिल के लिए न कहीं कोई अवरोध है, न रुकावट। वस्तुतः साइकिल आधुनिक युग में भारतीय दिग्विजय का उपाय अवश्य है, जिसके द्वारा आप चाहें तो समस्त संसार को निर्विघ्न रौंद सकते हैं। इसके दो चक्र जनता-जनार्दन के दो पदचक्र हैं, इसकी गति जीवन की दरअसल नपी-तुली निरापद गति है, इसमें संदेह नहीं।

अतः, हमें इसके जनक इंगलैंड-निवासी स्टारले के प्रति शुक्रगुजार होना चाहिए। साइकिल की ईजाद के एक वर्ष बाद 1885 ई॰ में भारतीय जनजागरण संस्था कॉंग्रेस का जन्म हुआ। आसान सवारियों में साइकिल सिरमौर है, आपको मानना ही पड़ेगा। यह कभी गुनहगार नहीं है। ऐसा होने पर कहेगी—

सौ जान से हो जाऊँगा राजी मैं सजा पर।
पहले वो मुझे अपना गुनहगार तो कर लें॥

—अकबर इलाहाबादी

बैलगाड़ी की सवारी

[आरंभ, विशेषता, उपसंहार]

कुछ लोग आज के विज्ञान के युग में, फैशन के युग में, त्वरा या जल्दबाजी के युग में बैलगाड़ी का यातायात पुरातन सभ्यता की कहानी, अगतिशीलता की निशानी भले ही मानने लगे हों, किंतु इसकी उपयोगिता, इसकी रईसी, इसकी मस्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं आई है।

बिजली की छाँव छोड़कर, प्रशस्त राजमार्गों की दुनिया छोड़कर अपने गाँव जाना चाहते हैं, जो रेलवे स्टेशन से दस किलोमीटर की दूरी पर घोर देहात में बसा है। वहाँ तक कोई पक्की सड़क नहीं गई है। बरसात के मौसम में कच्ची सड़क पर कीचड़-ही-कीचड़ है। रात के नौ बजे रेलगाड़ी स्टेशन पर आई है। किताबों का बंडल, सूटकेस, होल्डॉल, टिफिन-कैरियर इत्यादि सामान आपके पास हैं। अब आपकी सहायता मोटरगाड़ी नहीं करेगी, ताँगेवाले तो दूर से ही बंदगी कर लेंगे, बेचारा रिक्शावाला अपनी मजबूरी ही जाहिर करेगा; किंतु गाँव से यदि आपकी बैलगाड़ी आई है, तो फिर सारी चिंता क्षणभर में कपूर की तरह उड़ जाएगी। आप आनंद से अपनी गाड़ी पर बैठ जाइए, सारा सामान लाद लीजिए। गाड़ीवान बल्ले में लालटेन लटकाकर बैलों को गाड़ी में ज्योंही जोतेगा, आप गाड़ीवान से कह उठेंगे—

दुनिया ने किसका राहेफना में दिया है साथ।
तुम भी चले चलो यूँ ही जब तक चली चले॥ —ज़ौक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कसौटी-सी काली रात में तारों की महफिल सजी है। बिजली मशाल की तरह कौंधती है। बादल की घुमड़ ध्रुवपदी संगति पर मृदंगताल-सी चल रही है। बैलगाड़ी धीरे-धीरे रास्ता नाप रही है। लालटेन की मद्धिम रोशनी में प्रकृति-रानी का मुखर सौंदर्य देखते ही बनता है। जिधर देखिए, उधर ही मखमली कालीन बिछी है। आँखों में किसी के दीदार के सपने तैर रहे हैं। इंतजार की दर्दनाक घड़ियाँ बढ़ती जाती हैं—

इलाही मत किसू के पेश दर्दे-इंतजार आए।
हमारा देखिए क्या हाल हो जब तक बहार आए॥

—मीर

बैलगाड़ी के चक्के धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं, उत्सुकता के सागर में हल्का-हल्का ज्वार उठा रहे हैं। आखिर आपकी मंजिले-मकसूद आ जाती है। गाड़ी की आहट सुनते ही माँ दरवाजे तक चली आई हैं। उनके ममत्व की एक नन्हीं-सी बूँद आपके लिए अमृतकलश से भी मीठी होती है; उनके दुलार का एक-एक कण आपके लिए कोहनूर से भी अधिक कीमती होता है। दूसरी ओर, भाभी झरोखे की फाँक से आपके ऊपर मुस्कानों की मणियाँ बरसा रही हैं और आपको स्नेहधन से मालामाल कर रही हैं। वे मुस्कानें आपके थके हुए जीवन के लिए विश्रामस्थल हो उठती हैं।

बैलगाड़ी किसी परदेशी को ही घर नहीं पहुँचाती, बल्कि गोरी को अपने साजन के गाँव भी ले आती है। अब पालकी तो मध्यमवर्गीय व्यक्तियों की बारात में ही दिखाई पड़ने लगी है। पालकीवालों की मजदूरी की दर इतनी बढ़ गई है कि आज उससे सस्ती टैक्सी हो गई है। इसलिए जब ऐसे ठेठ गाँव से माँ-बाप के कलेजे की टुकड़ी, सखियों के दुलार की पुतली, भाइयों के मनुहार की सहयोगिनी कोई लाड़ली विदा लेती है, तब उसके लिए बैलगाड़ी ही एकमात्र सवारी मिल पाती है। बैलगाड़ी पर सिसकती हुई, आँखों के दोने से अश्रु के अनगिनत मोती टपकाती हुई बेटी जब बाप के घर से विदा लेती है, बैलगाड़ी के पीछे लोटे में पानी लिए भाई दौड़ता चलता है, सहेलियाँ विदाई के गीत गाती चलती हैं।

और, कभी आपने किसी रोगी की दशा पर खयाल किया है? बेचारे का अंग-प्रत्यंग रोग के कारण जर्जर हो गया है। जो व्यक्ति जेठ की कठिन दुपहरी में सीने पर लू के सौ-सौ खंजर झेलता हुआ कृषियज्ञ में अपने स्वेद की समिधा हँसते-हँसते समर्पित करता था, उससे आज खाट के सिरहाने रखे लोटे से स्वयं दो घूँट जल पीते नहीं बन रहा है। उठने-बैठने की शक्ति भी व्याधि ने छीन ली है। उसके पास इतने पैसे भी नहीं कि वह लंबी फीस देकर बड़े-से-बड़े डॉक्टर को बुला ले। ऐसी स्थिति में किसानों के आजीवन सखा बैल ही उसे बैलगाड़ी पर ढोकर दूर शहर पहुँचाते हैं, उसके उड़ते हुए प्राण-पखेरू को रोक पाते हैं, उसे चंगा होने का अवसर देते हैं।

मेले का दिन आ गया है। सारा समाज उमंगों और उछाहों के हिंडोले पर झूल रहा है। बच्चों के मन में खुशियों का समुंदर लहरा रहा है। चुन्नू-मुन्नू, रुन्नी-झुन्नी सबने बाबा को कई दिनों से तबाह कर रखा है। बस क्या है, बैलगाड़ी सज जाती है। बैलों के गले में नई गरदनी डाल दी जाती है और नाक में नई नाथ पहना दी जाती है। उनके सींग सिंदूर से रँग दिए जाते हैं। गाड़ीवान बैलगाड़ी पर बच्चों की पलटन लिए बैलों को 'वाह मेरे राजा, वाह मेरे बाबू' कहकर टिटकारता हुआ अपनी गाड़ी को राजकीय रथ की तरह दौड़ाता है और वायुमंडल में धूलि का चँदोवा फैलाती हुई बैलगाड़ी निकल पड़ती है।

अतः, जब तक भारतवर्ष के लगभग सात लाख से भी अधिक गाँव अमेरिका के गाँवों की भाँति बड़े-बड़े नगरों की पिच सड़कों से संबद्ध नहीं हो जाते, तब तक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बैलगाड़ी की अनिवार्यता समाप्त नहीं हो सकती। आप लाख इस मंदगति सवारी की खिल्ली उड़ाएँ, लेकिन जहाँ भारत की आत्मा बसती है, जहाँ उसका अपना वास्तविक रूप दिखाई पड़ता है, उन गाँवों का श्रृंगार है बैलगाड़ी।

बैलगाड़ी सचमुच सामान्य भारतीयों का रथ है। यह भारत की संस्कृति और सरलता का प्रतीक है, इसमें कोई संदेह नहीं। बैलगाड़ी की सवारी की अपनी खूबी है, अपनी विशेषता है, जिसकी समता अन्य सवारियों से कुछ नहीं है। जमाना चाहे जितना भी बदल जाए, जो लोग बैलगाड़ी को म्यूजियम में रख देने के समर्थक हैं, उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति के बहुत-सारे स्मारकों को म्यूजियम में ही रख देना पड़ेगा।

वायुयान-यात्रा

[आरंभ, सुख, दुर्घटना, उपसंहार]

चाहे आप बैलगाड़ी से यात्रा करें या रेलगाड़ी से, चाहे आप द्विचक्र यान (साइकिल) से यात्रा करें या जलयान से, पर यात्रा का आनंद क्या है? बस की यात्रा में तो आदमी बेबस हो जाता है। पर, वायुयान की यात्रा का सुख क्या है, उसे सामान्य जन क्या समझें? आदेश हो, तो एक छोटा उदाहरण उपस्थित करूँ। मान लीजिए, आपको राँची से पटना ही जाना हो। रेलगाड़ी से आपको चार सौ बारह किलोमीटर की दूरी तय करनी होगी। सड़क से आपको तीन सौ पैंतीस किलोमीटर की दूरी तय करनी होगी। यदि आप रेल से यात्रा करते हैं, तो आपको बारह घंटे का समय गँवाना पड़ता है, यदि आप बस से यात्रा करते हैं, तो आपको लगभग दस घंटे का समय नष्ट करना पड़ता है, यदि आप अपनी मोटरगाड़ी से यात्रा करते हैं, तो आपको लगभग आठ घंटे का समय बरबाद करना पड़ता है, यदि आप साइकिल से यात्रा करते हैं, तो देह की हड्डी-पसली ढीली कराकर लगभग छत्तीस घंटे का समय जाया करना पड़ता है और यदि आप बैलगाड़ी से यात्रा करते हैं, तो कई दिनों का समय नष्ट करते हैं। पर, यदि आप वायुयान से यात्रा करते हैं, तो महज पच्चीस-तीस मिनटों में आप राँची से पटना पहुँच जाते हैं।

आपको राँची से पटना जाना है। इंडियन एयर लाइंस से टिकट खरीदिए। नियत समय पर हवाई अड्डा पहुँच जाइए। सुरक्षा-जाँच कराकर वायुयान पर सवार हो जाइए। वायुयान का दरवाजा बंद होते ही सुशोभना लिपिस्टिकरंजिता विमान-परिचारिका ट्रे में टॉफी लिए आपके सामने उपस्थित हो जाएगी। थोड़ी देर के बाद आपको सूचना दी जाएगी—हम अपने मुख्य वैमानिक कैप्टन मेहरोत्रा तथा उनके कर्मचारियों की ओर से इस उड़ान में सम्मिलित होनेवाले यात्रियों का स्वागत करते हैं। राँची से पटना तक की दूरी तीस मिनटों में तय की जाएगी। विमान उड़ चला। आनन-फानन में आप पटना पहुँच गए। फिर, विमान-परिचारिका माइक से कहेगी—मैं कैप्टन मेहरोत्रा तथा उनके कर्मचारियों की ओर से आपसे विदा लेती हूँ। आशा है, आपकी यात्रा सुखद रही। आपकी सूचना के लिए बाहर का तापमान तीस डिग्री सेलसियस है आदि।

और, आप सानंद वायुयान से उतर गए। वायुयान-यात्रा में न केवल आपका बहुमूल्य समय बचता है, वरन् धूल, गर्द, गुब्बार, सर्दी, गर्मी आदि सबसे बच जाते हैं। जिस ताजगी और सफाई से आप राँची से चले थे, उसी ताजगी और सफाई से आप पटना पहुँच गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आप जरा सोचिए तो, राँची से आप रेलगाड़ी से पतरातू जा रहे हैं, दूरी लगभग 40 किलोमीटर है, आपका पाँच-छह घंटे का समय नष्ट हो जाता है। पर, लंदन से वाशिंगटन वायुयान से जाते हैं, तो लगभग पाँच हजार सात सौ किलोमीटर की दूरी महज छह घंटे में आराम से तय कर लेते हैं। आप दिल्ली से लंदन वायुयान से जाना चाहते हैं। दूरी है लगभग छः हजार सात सौ किलोमीटर। आप वायुयान की प्रथम श्रेणी की शायिका का टिकट खरीदें, आराम से सोए हुए महज आठ घंटे में पहुँच जाएँ। क्या मजा है।

अब लगभग सौ प्रकार के विमान हैं। जैसे बोइंग 747, बोइंग 737, एयर बस 300, डी० सी० 10-300, फोकर फ्रेंडशिप-32, कॉनकार्ड, डॉरनियर आदि। विभिन्न प्रकार के विमानों में दो से लगभग पाँच सौ यात्री सवार हो सकते हैं। विभिन्न प्रकार के विमानों की गति तीन सौ किलोमीटर प्रति घंटे से सोलह सौ किलोमीटर प्रति घंटे तक है। विभिन्न प्रकार के विमान पाँच सौ मीटर से लगभग नौ-दस हजार मीटर तक की ऊँचाई से उड़ानें भरते हैं जबकि विश्व के सर्वोच्च पर्वत-शिखर एवरेस्ट की ऊँचाई आठ हजार आठ सौ अड़तालीस मीटर है।

अगर आप वायुयान से देश-विदेश की यात्रा कीजिए, आपको एक विचित्र सुखद अनुभव प्राप्त होगा। संसार के सबसे ऊँचे हिमशिखर एवरेस्ट की ऊँचाई से भी बहुत ऊपर वायुयान उड़ता है। अंबर-आश्लेषी अट्टालिकाएँ बच्चों के घरौंदे जैसे मालूम पड़ते हैं। बड़ी-बड़ी नदियाँ नहरों जैसी दिखाई पड़ती हैं, बड़े-बड़े जंगल झाड़ियाँ जैसे लगते हैं। रात में यदि किसी महानगर से आपका विमान उड़ रहा है, तो लगता है जैसे इंद्रधनुषी बल्बों के बंदनवार के ऊपर से आपका विमान शनैः शनैः खिसक रहा है। और, दिन में यदि बादल हो, तो आपका विमान उससे बहुत ऊपर उड़ता दिखाई देगा। बादल के टुकड़े ऐसे लगेंगे, जैसे धुनी रूई के ढूह या स्तूप लटक रहे हों या विभिन्न आकारों के श्वेत जीव-जंतु आकाश में तैर रहे हों या रूई के छोटे-छोटे पादप लटक रहे हों। ये दृश्य इतने रोमांचकारी होते हैं कि आप कल्पना या कविता के संसार में खो जाते हैं, जीवन की सारी हताशा और निराशा के रौरव से मुक्त होकर आप एक विचित्र स्वर्गलोक में प्रविष्ट कर जाते हैं। पर, यदि विमान के यंत्र में कुछ गड़बड़ी हो जाए, तो मत पूछिए। 23 जून, 1985 के दिन एयर इंडिया का एक जंबोजेट 'कनिष्क' आयरलैंड के दक्षिण तट के लगभग दो सौ किलोमीटर दूर एटलांटिक महासागर में दुर्घटनाग्रस्त हो गया, जिसमें तीन सौ उनतीस लोग मारे गए। 3 अगस्त, 1985 को अमरीकी विमान सेवा 'डेल्टा एयर लाइंस' का विमान अचानक एक विस्फोट के कारण ध्वस्त हो गया। विमान में सवार एक सौ एकसठ यात्रियों में लगभग एक सौ तीस यात्रियों की मृत्यु दुर्घटनास्थल पर ही हो गई। कुछ वर्ष पहले जापान के ओसाका नगर से टोकियो नगर जानेवाला जेट विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और उसपर सवार सभी पाँच सौ उनतीस यात्री काल के गाल में समा गए। ऐसी दुर्घटनाएँ संसार में प्रतिवर्ष हो ही जाती हैं।

कभी-कभी किसी उग्रवादी या आतंकवादी के द्वारा विमान का अपहरण कर लिया जाता है, तो यात्रियों की जान आफत में फँस जाती है।

किंतु, दुर्घटनाओं एवं अपहरणों की बात छोड़ दें, तो वायुयान-यात्रा कितनी सुखावह है, आप इसकी कल्पना तभी करेंगे, जब आप विमान से देश-विदेश की यात्रा करेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्राम-नगर-संबंधी निबंध

ग्रामजीवन

[आरंभ, प्राकृतिक छटा, सुधार-योजना, वस्तुस्थिति, कर्तव्य]

जगमग नगरों से दूर-दूर, हैं जहाँ न ऊँचे खड़े महल,
टूटे-फूटे कुछ कच्चे घर, दिखते खेतों में चलते हल !
पुरई पालों, खपरैलों में, रहिमा रमुआ की नावों में,
है अपना हिंदुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में।

—सोहनलाल द्विवेदी

किसी महानगर में चले जाएँ, तो आकाश को चूमनेवाली अट्टालिकाएँ शैतान की आँत की तरह डरावनी-भयावनी मालूम पड़ती हैं। शेषनाग ने करवट बदली, भूकंप का हलका झटका लगा और हजारों की जान पर आफत आई ! किंतु, गाँवों में आकर देखें, छोटे-छोटे फूस और मिट्टी के घर कितने निरापद हैं। लगता है, बालक विधाता ने अपनी क्रीड़ा के लिए मनपसंद घरौंदे बनाए हैं। मानव के पृथ्वीपुत्र कहलाने की सार्थकता कहाँ, यदि वह पृथ्वी की गोद में चिपका न रहे ? आज का मानव भले ही गगनचारी हो जाए, वह गगननिवासी भले ही हो जाए, किंतु मूल से संबंध-विच्छेद कर उसकी दशा अमरलत्ती की तरह हो जाएगी, अपनी गंगोत्री से विच्युत होकर उसकी जीवनधारा ही सूख जाएगी, इसमें संदेह नहीं।

गाँवों में किसी ओर निकल जाएँ, लगेगा प्रकृति-रानी सोलहों शृंगार कर निकल पड़ी है। खेतों में दूर-दूर तक उसका रेशमी दुपट्टा बिखरा हुआ है, जिसमें सूर्य की सुनहरी किरणें गोटे-सी जड़ दी गई हैं। सरसों के सुहावने पीले फूल उसमें तारे-से जड़े हैं, जौ-गेहूँ की बालियाँ तथा मटर की फलियाँ किसी कशीदागर की कशीदाकारी-सी मालूम पड़ती है। हरसिंगार और रजनीगंधा के फूल उसकी मुस्कराहटों-से झर रहे हैं, केवड़े की सुगंध उसके केशपाश से उड़नेवाली भीनी-भीनी गंध है, झलकते ओसकण उसके नाजुक बदन पर पसीने की नन्हीं बूँदों की तरह उभर आए हैं। सुमित्रानंदन पंत ने अपनी 'ग्रामश्री' कविता में ग्रामजीवन की इस नैसर्गिक सुंदरता का बड़ा सटीक वर्णन किया है—

फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली
लिपटीं जिससे रवि की किरणें
चाँदी की-सी ऊजली जाली।
तिनकों के हरे-हरे तन पर
हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्याम भूतल पर झुका हुआ।
नभ का चिर निर्मल नील फलक।

हमारे ये ग्राम क्या हैं ? ये और कुछ नहीं हैं, मानव-जीवन के वृहत् ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों के पृष्ठ हमारे अन्नदाता किसान हैं, जो अपने खेतों की यज्ञशाला में अपने स्वेद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की समिधा चढ़ाते रहते हैं। यदि आप चाहें, तो इन्हीं एड़ी-चोटी का पसीना एक करनेवाले कृषकों में भगवान के दर्शन कर सकते हैं—जैसा महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा है। ये ग्राम प्रकृति की पुष्पवाटिका के पवित्र मंडप हैं। इन्हीं में हमारी सभ्यता का इतिहास सुरक्षित है, संस्कृति की गाथा आलेखित है, यहाँ की मिट्टी मानवता के तपश्चरण से दीप्त है; यह कामधेनु-सी फलप्रदा है, पारिजात से भी अधिक सुरभिवाली है, कुंकुम से भी अधिक अरुणवर्ण तथा मणिमुक्ता से भी अधिक मूल्यवती है।

किंतु, प्रकृति के इस चंदन-पालने में आज बहार कहाँ है? बादल की बिजली-सी मुस्कराहटों के साथ इनकी मुस्कराहट क्या कहीं दिखाई पड़ती है? चाँदनी की लहर पर इनके जीवन में रोमांस कहाँ झरता है? लहराती आती मधुबयार के झोंके पर इनमें जीवन की मधुवेला कहाँ उतरती है? आल्हा और कजली की धुनों पर जीवन का संगीत कहाँ लहराता है? ढोल-झाँझ-मृदंग और खँजरी के ताल पर जीवन का बोल कहाँ थिरकता है? रामायण की चौपाइयों पर जीवन में पवित्रता कहाँ टपकती है? ये सारे प्रश्न आज ग्रामजीवन के संदर्भ में बड़ी ही सहजता से उठते हैं।

यह बात ठीक है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में ग्रामसुधार के लिए बहुत-कुछ किया गया है। प्रखंडों के द्वारा ग्रामविकास की योजनाएँ बनाई गई हैं। दुष्प्रवेश्य ग्रामों तक सड़क पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है। उन्हें पास के नगर से जोड़ने का प्रयास किया गया है। गाँवों में आज बिजली के फूल खिलते दीखते हैं, सिनेमाई गीत गली-गली में सुनने को मिलते हैं, किसान भी रेडियो और ट्रांजिस्टर का आनंद लेते हैं। बहुत सारे गाँवों में टेलीविजन भी पहुँच गया है। अब गाँवों में अखबार भी आने लगे हैं, दूर देश का संदेश लाने के लिए अब कागा की चोंच को सोने से मढ़ाने का प्रलोभन देना बंद हुआ है, मनुष्य और पशु की चिकित्सा के लिए डॉक्टरों का प्रबंध किया गया है; बैलों की रुनझुन के साथ खेतों में पंपों और ट्रैक्टरों का कोलाहल भी सुनाई पड़ने लगा है; किंतु फिर भी गाँवों में आशानुकूल सुधार नहीं आ पाया है। ग्रामीण आज भी अंधविश्वास के ब्यूह में फँसे हैं, रूढ़ियों के पाशों को आज भी छिन्न नहीं कर सके हैं; आपसी वैमनस्य इन्हें दिन-ब-दिन तोड़ता जा रहा है, फूट और कलह, द्वेष और ईर्ष्या के कारण मारपीट मामूली बात है। इनका समय अब निंदा या कचहरियों में अधिक बीतने लगा है, अशिक्षा की राक्षसी से इन्हें मुक्ति नहीं मिल पाई है। गरीबी की तो बात ही मत पूछिए।

किंतु, ग्रामों की दुर्दशा से बहुत निराश होना भी उचित नहीं है। हम यदि अपने गाँवों को सचमुच यूरोप और अमेरिका के गाँवों की तरह पूर्ण विकसित एवं सुविधा-संपन्न बनाना चाहते हैं, तो इसका दायित्व सरकार पर छोड़कर ही हमें निश्चिंत नहीं हो जाना चाहिए। आज ग्रामीण कृषकपुत्र ऊँची शिक्षा प्राप्त करके भी छोटी-छोटी नौकरियों के लिए शहरों में कार्यालयों की खाक छानते हैं। उन्हें स्नातक होकर खेतों में काम करना, गाँवों में रहना प्रतिष्ठा के प्रतिकूल मालूम पड़ता है। धूलि में पले जीवन को अब खेतों की धूलि से नफरत होने लगी है। अब उन्हें मिट्टी की सोंधी गंध न भाकर डीजल-इंजन का धुआँ ही अधिक भाने लगा है—घर के धारोष्ण दूध की अपेक्षा उन्हें होटल की सड़ी चाय अच्छी लगने लगी है। गाँव की खुली हवा के बदले उन्हें शहरों की असूर्यंपश्या गलियाँ अधिक भाने लगी हैं। किंतु, उनकी यह मनोवृत्ति कतई ठीक नहीं। बच्चनजी ने ठीक ही कहा है—

जिसे माटी की महक न भाए
उसे नहीं जीने का हक है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतः, जब तक हमारे शिक्षित नवयुवक ग्रामों में नहीं रहते, वे रूढ़िमुक्त उन्मुक्त हृदय से जब तक ग्रामों में नया वातावरण निर्मित नहीं करते, तब तक ग्रामजीवन आकर्षक और अभिनव नहीं हो सकता।

भारतीय किसान

[भूमिका, साधना, दीनावस्था के कारण, नई प्रगति, उपसंहार]

जिस देश की आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ किसान हों, जिसकी जनसंख्या की चादर का प्रायः आठ-बटा दस भाग किसानों के द्वारा बुना जाता हो, जो किसान ब्रह्मा की तरह उत्पादन करते हों और विष्णु की भाँति परिपालन, उन्हीं का जीवन रुदन का आख्यान हो, आँसुओं का आप्लावन हो—यह बड़ा आश्चर्यकर प्रतीत होता है।

जोड़ों को जड़ बना देनेवाली जाड़े की सुबह हो, लू की लपटों से दिग्दिगंत को झुलसा देनेवाली ग्रीष्म की उदास दोपहरी हो अथवा बिजली की नागिनें गिराती बरसात की भयानक रात हो, हमारे किसान महान साधक की भाँति अपनी साधना में संलीन रहते हैं। सरदार पूर्णसिंह ने कहा है कि उनका खेत ही उनकी हवनशाला है, जिसमें वे अपने शरीर का ही हवन किया करते हैं। उनके हवनकुंड की ज्वाला की किरणें चावल के लंबे और सफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल-लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की उपज हैं। कर्मयोगी किसान को न तो वनिता की ममता है, न सुत का स्नेह ही खींचता है। उषा की पहली किरणों का अभिनंदन वह अपनी मेड़ पर करता है। अस्ताचलगामी किरणों का पूजन वह चरागाह से लौटकर आती हुई गायों की ग्रीवाओं में बजनेवाली घंटियों से करता है। उसके लिए उसका खेत ही मंदिर है, मस्जिद है, गुरुद्वारा है। उसके जीवन में मनोरंजन का स्थान नहीं, विश्राम का कोई प्रोग्राम नहीं। ऋतुओं के बरछे-पर-बरछे खाकर भी उसका वज्रशरीर अपनी एकलव्य साधना में लीन रहता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है—

बरसा रहा है रवि अनल भूतल तवा-सा जल रहा,
है चल रहा सन-सन पवन तन से पसीना ढल रहा।
तब भी कृषक मैदान में करते निरंतर काम हैं,
किस स्वार्थ के हित वे अहो लेते नहीं विश्राम हैं ?

भारतीय कृषकों की दीनावस्था के एक नहीं, अनेक कारण हैं। पहला कारण है उनकी बेहद गरीबी। इस गरीबी के कारण ही वे खेती के आधुनिक और विकसित उपकरण खरीद नहीं पाते, वे न सिंचन का प्रबंध कर पाते हैं, न खेतों में उर्वरक डाल पाते हैं, न उत्तम बीज खरीद पाते हैं। दूसरा कारण है उनकी घोर अशिक्षा। अशिक्षा के कारण ही वे रूढ़ियों के दास बने हुए हैं। उनकी धारणा है कि उर्वरक डालने से कुछ दिनों के बाद भूमि वंध्या हो जाएगी; अतः अच्छा है कि खेत को सर्वदा प्रसूता बनाने के लिए उसमें खाद न डाली जाए। चूँकि उनमें शिक्षा नहीं है, इसलिए वे गोबर के महत्त्व को भी नहीं जानते। वे वैसे उत्तम पदार्थ के गोइठे बना डालते हैं। मवेशी के द्वारा छोड़ी गई घास से वे कंपोस्ट बनाना नहीं जानते। वे कृषि-संबंधी पत्रिकाएँ नहीं पढ़ते, इसलिए उत्तम कृषि की पद्धतियों से परिचित नहीं हैं। वे उत्तम प्रकार के बीजों की जानकारी भी नहीं रखते।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तीसरा कारण है—हमारे कृषक भी खेती को उत्तम नहीं मानते। वे अब निषिद्ध चाकरी को उत्तम मानने लगे हैं। कोई किसान नहीं चाहता कि उसका बेटा कृषि की शिक्षा प्राप्त कर विकसित पद्धति से खेती करे। डॉक्टर अपने बेटे को वाणिज्य की शिक्षा देकर, व्यापारिक प्रशिक्षण प्रदान कर कुशल व्यापारी बनाना चाहता है, किंतु कृषक नहीं चाहते कि उनका बेटा कृषि की शिक्षा प्राप्त कर समुन्नत कृषि करे। वे अपने बेटों को मामूली किरानी बनाना चाहते हैं, कृषक नहीं। जब तक कृषकों की यह मनोवृत्ति नहीं बदलेगी, तब तक न तो उनकी स्थिति में सुधार आएगा, न देश की स्थिति में।

चौथा कारण है—प्रकृति के प्रति निर्भरता। हमारे देश की खेती बहुत-कुछ मानसून की कृपा पर निर्भर है। कुटज-कुसुमों से लाख पूजा करने के बाद भी जब बादल महाराज नहीं पिघलते, तब फिर किसानों की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है। खेत में फसल उगाई नहीं जा सकती। सारी धरती मरुभूमि जैसी मालूम पड़ती है। कभी-कभी जब बीच में इंद्र भगवान दगा दे जाते हैं, मुरझाती कोंपलों के साथ किसानों के कपोल भी मुरझा जाते हैं। कभी-कभी अतिवृष्टि या बाढ़ जब अपनी सर्वग्रासिनी लपलपाती जिह्वाएँ खोलती हैं, तब फिर लहलहाते खेतों का वैभव क्षणभर में विवर्ण हो जाता है।

इधर भारत-सरकार तथा प्रांतीय सरकारों ने भारतीय कृषि की इस विवशता की ओर काफी ध्यान दिया है। अतिवृष्टि एवं बाढ़ के प्रकोप को रोकने के लिए तटबंध बनाए जा रहे हैं। सिंचाई के लिए कूपों, नलों, नहरों और सरकारी ट्यूब-वेलों से पानी का प्रबंध किया जा रहा है। आधुनिकतम कृषि-ज्ञान देने के लिए हर राज्य में कृषि-पदाधिकारी भेजे जा रहे हैं। गाँव-गाँव में कृषि की जानकारी के लिए कृषि-पदाधिकारी भेजे जा रहे हैं। कृषि के लिए उत्तम बीज तथा खाद की व्यवस्था की जा रही है। गेहूँ की अधिक उपज देनेवाली किस्म सोना, कल्याण आदि का प्रचार किया जा रहा है। साल में तीन-तीन फसल देनेवाले धान रोपे जा रहे हैं। गहन कृषियोजना चालू की जा रही है तथा किसानों को ट्रैक्टर-प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की जा रही है। सिंचन-यंत्र किश्तों पर दिए जा रहे हैं। आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए बैंकों से भी ऋण की व्यवस्था की जा रही है। हरित क्रांति से भारतीय किसानों के मध्य नई उषा आनेवाली है। किंतु, यह उषा तभी चिरस्थायिनी हो सकती है, जब कृषकों का देशव्यापी संघ हो, उनकी उपज का मूल्य निश्चित (assured price) हो, उनकी फसल का बीमा (insurance of harvest) हो, उनकी उपज पूँजीपति मनचाहे मूल्यों पर न खरीदें। क्रेता और कृषक के बीच जो मुनाफा मारनेवाले सेठ-साहूकार हैं, उन्हें समाप्त कर देना भी बड़ा आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, कृषकों को हम हेय दृष्टि से देखना छोड़ें तथा उन्हें राज्य-सरकार और भारत-सरकार द्वारा भी उचित सम्मान मिलना चाहिए। यदि कोई नर्तक या वादक राष्ट्रपति के द्वारा पद्मश्री, पद्मविभूषण आदि से सम्मानित किया जाता है, तो जिनके अन्न से उनके मन के तार बजते हैं, उन्हीं कृषकों को सम्मानित न किया जाए, यह अनुचित है। इस प्रकार, हमें अनेक प्रकार से कृषिकर्म को सुरक्षित एवं सम्मानित बनाने की आवश्यकता है। प्रसन्नता की बात है कि अब भारत-सरकार उन्नत कृषि करनेवाले कृषकों को 'कृषिपण्डित', 'कृषिश्री' आदि की उपाधि से विभूषित करने लगी है।

किंतु, छोटे किसानों की कम तथा टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त भूमि, बड़े किसानों की अशिक्षा और नई पद्धतियों के प्रति उदासीनता तथा सरकारी कर्मचारियों की पूर्ण तत्परता के अभाव के कारण किसानों का जैसा भाग्योदय अभीप्सित है, वैसा नहीं हो पा रहा है। सरकारी योजनाओं की गंगोत्तरी अब भी उनके जीवन में पूर्ण रूप से नहीं उतर रही है।

अब वह समय शीघ्र आनेवाला है, जब भारतीय किसान कापालिक की भाँति नहीं रहेंगे, भिखमंगों की दलित जिंदगी नहीं व्यतीत करेंगे, वरन् वे अमेरिका, रूस, जापान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तथा हालैंड के किसानों की भाँति बिलकुल संपन्न-समृद्ध एवं जीवनस्तर के आधुनिक साधनों से युक्त रहेंगे। खेतों में काम करने के समय भले ही वे स्वेदकणों की माला पहनें, किंतु वहाँ से निकलने पर वैसे ही वातानुकूलित कक्षों में रहेंगे, जैसे संपन्न नागरिक रहा करते हैं। पंजाब-हरियाणा के अनेक किसानों ने अपने अध्यवसाय से साबित कर दिया है कि ऐसा संभव भी है।

कृषक भारतीय जीवन के मेरुदंड हैं। वे भारतीय समाज की केंद्रस्थ धुरी हैं। अतः, उनके विकास, उद्धार एवं उन्नयन से ही भारत का विकास, उद्धार एवं उन्नयन संभव है। भारत का भविष्य भारतीय किसानों का भविष्य है। अब हमें गाँवों में स्वर्ग उतारना है, नंदनकानन बसाना है, युगों से कृषकों की म्लान मुखाकृति पर मुसकराहटों के फूल खिलाने हैं। कृषक मानवजाति की विभूति हैं। जिसने अनाज के दाने उपजाए, पौधों के पत्ते लहराए, वह मानवता का महान सेवक है और उसका महत्त्व किसी भी राजनीतिज्ञ से कम नहीं।

ग्रामपंचायत

[आरंभ, चुनाव-कार्य, वर्तमान स्थिति, उपसंहार]

जीतना हार बराबर है, हारना मौत सरासर है;
कोई झगड़ा तुममें गर है, फैसला घर का बेहतर है;
करो पंचायत फिर जारी, अदालत लड़ना झखमारी।

भारत गाँवों का देश है, किंतु इसे जो स्वतंत्रता मिली, वह नगरों की जटिलता में ही अटककर रह गई। बापू के रामराज्य का स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा, जब तक हम गाँवों को हर प्रकार से आत्मनिर्भर न कर दें।

आज चोरी, डकैती, खेत के झगड़ों इत्यादि के कारण जो अभियोग होते हैं, उनके निर्णय में बहुत अधिक समय लगता है, बहुत पैसों की आवश्यकता होती है। भारत जैसे निर्धन देश में न्याय अत्यधिक अर्थसाध्य हो गया है। आज झूठी तुलाओं का आदर हो गया है, न्याय पैसे पर बिक रहा है। इतना ही नहीं, न्याय में इतना विलंब होता है कि बालक अभियुक्त निर्णय सुनते-सुनते वृद्ध हो जाता है और वृद्ध तो परलोक ही सिधार जाता है। यह न्याय की स्वीकृति नहीं, वरन् अस्वीकृति है। ग्लैडस्टोन ने ठीक ही कहा था कि न्याय में विलंब करना न्याय को अस्वीकार करना है (Justice delayed is justice denied.)। आज के मुकद्दमे का यह हाल है कि जो जीतता है, वह हारता है और जो हारता है, वह मरता ही है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि यदि घटनास्थल पर ही न्याय-व्यवस्था हो जाए, तो हमारे समय, शक्ति और संपत्ति—सभी की बचत होगी। इसलिए, भारत सरकार ने लगभग दो हजार जनसंख्यावाले प्रत्येक गाँव में ग्रामपंचायत की व्यवस्था की है और, अब तो लोक-न्यायालयों या लोक-अदालतों की भी स्थापना की जा रही है।

ग्रामपंचायत में एक मुखिया होता है। इसका चुनाव प्रायः तीन वर्ष पर हुआ करता है। प्रत्येक ग्रामपंचायत को चार वार्डों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक वार्ड से एक-एक सदस्य मुखिया के साथ ही निर्वाचित होते हैं। निर्वाचित मुखिया अन्य चार सदस्यों को मनोनीत (nominate) करता है। इस प्रकार, मुखिया की मंत्रिपरिषद के चार निर्वाचित, चार मनोनीत तथा एक स्वयं मुखिया—कुल नौ सदस्य हो जाते हैं। इस प्रकार, यह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पंचायतन (अर्थात् पाँच पंचों का समुदाय) नहीं रहता, वरन् नवायतन हो जाता है। वैसे ग्रामपंचायत की इस आमसभा के सदस्य ग्राम के सभी वयस्क स्त्री-पुरुष होते हैं।

ग्रामपंचायत में एक कचहरी, यानी न्यायपालिका भी होती है। इसका प्रधान सरपंच कहलाता है। ग्राम के चारों वार्डों से सरपंच के साथ-साथ चार पंच भी निर्वाचित होते हैं। ये चार निर्वाचित पंच तथा मुखिया परिषद के चार निर्वाचित सदस्य तथा सरपंच—नौ मिलकर और चार पंचों को चुनते हैं। इस प्रकार; सरपंच की परिषद के भी 'सरपंच को लगाकर' नौ सदस्य हो जाते हैं। जब मुखिया और सरपंच की परिषद (केबिनेट) बन जाती है, तब फिर उपमुखिया और उपसरपंच का चुनाव हो जाता है।

निर्वाचित मुखिया का शपथग्रहण किसी राजपत्रित पदाधिकारी, विधानसभा या लोकसभा के सदस्य अथवा प्रांतीय पंचायत परिषद के अध्यक्ष के द्वारा कराया जाता है। शपथग्रहण के पश्चात् मुखिया अपना कार्यारंभ करता है।

ग्रामपंचायत के दो भाग होते हैं—कार्यपालिका और न्यायपालिका। कार्यपालिका का प्रमुख मुखिया होता है तथा न्यायपालिका का सरपंच—इसे हम जानते हैं। कार्यपालिका के मुख्य कार्य ग्रामविकास से संबद्ध हैं। कार्यपालिका का उद्देश्य ग्रामकल्याण है। गाँव की सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पेय जल का प्रबंध, सिंचाई इत्यादि इसके मुख्य कार्य हैं। अच्छे बीज का प्रबंध, खाद की व्यवस्था, पशुओं की नस्ल सुधारना तथा बीमारी से उनकी रक्षा, कुएँ, पोखरे आदि की मरम्मत—ये सब इसी कार्यपालिका के अंतर्गत हैं। इतना ही नहीं, गाँव में यातायात के लिए राहों, सड़कों एवं पुलों का निर्माण भी इसे करना होता है। ग्रामपंचायत में एक रक्षादल भी होता है। यह गाँव के तरुण सदस्यों से बनता है। इस रक्षादल का प्रमुख कार्य चोरों-डकैतों से गाँव की रक्षा करना तथा गाँव में शांति बनाए रखना है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि गाँव को पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर, सुखी, निरापद एवं सुविधासंपन्न बनाने के लिए ग्रामपंचायत की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

न्यायपालिका की परिषद का कार्य गाँव के झगड़ों का निबटारा है। 100 रुपए तक के मूल्यवाले दीवानी मुकदमे तय करने का इसे अधिकार प्राप्त है। सरपंच को तृतीय श्रेणी के दंडाधिकारी के समान अधिकार हैं। गाँव में शांति बनाए रखने के लिए सरपंच किसी दोषी या उद्दंड को हिरासत में भी भिजवा सकता है। उसे जुर्माना करने का भी अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार, न्यायपालिका का कार्य है कि वह गाँव के झगड़ों को बढ़ने न दे, फुंसी को फोड़े में न बदलने दे, गाँव के रुपए को शहरी कचहरियों में बर्बाद न होने दे, निर्माण, उपजवृद्धि और लघु उद्योग-धंधे में लगनेवाले बहुमूल्य समय का अपव्यय न होने दे।

किंतु, गाँव में रहनेवाला या उससे संबंध रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि आज वस्तुस्थिति क्या है। आज का हमारा न्याय बुरी तरह बेजुबान और खुलेआम अंधा है। बेकसी की लंबी मार से वह पीड़ित है—जैसा रस्किन ने कहा है। गाँव के गरीबों और दुर्बलों को न्याय कहाँ मिलता है। वे तो संपन्नों और शक्तिशालियों के दासानुदास बने रहते हैं। वे उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर ही नहीं पाते। सताए व्यक्ति और सताए जाते हैं। ये पंच गाँवों में केवल प्रपंच फैला रहे हैं। गरीबों के जुर्माने से अपनी जेबें गरम कर रहे हैं। ये पंच परमेश्वर नहीं, वरन् दानवेश्वर हैं।

यह तो हुई न्याय की बात। मुखिया और सरपंच के चुनाव के समय तो गाँव का वातावरण बिलकुल विषाक्त हो जाता है। झड़प, मारपीट तो मामूली बात है। दो दलों में अब भाले-गड़ाँसे तक निकलने लगे हैं, बँदूकें छूटने लगी हैं। अपने राज्य के इस पंचायत-निर्वाचन में सैकड़ों हत्याएँ हुई हैं; निर्वाचन के समय जो वैमनस्य का विषबीज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बोया जाता है, उसके घातक फल वर्षों तक ग्रामजीवन को विमूर्च्छित किए रहते हैं। एक पंचायत ने ग्रामसुधार जितना नहीं किया है, उससे कहीं अधिक सत्यानाश किया है। हमारे सारे आदर्श धूलिसात् हुए हैं, हमारे सारे स्वप्न भूलुण्ठित हुए हैं।

तो क्या यह निराशा की निशीथिनी कभी समाप्त नहीं होगी? क्या कभी प्रजातांत्रिक पद्धति में शासन के विकेंद्रीकरण का लक्ष्य पूरा नहीं होगा? क्या कभी ग्रामराज्य का निर्माण नहीं होगा? क्या कभी बापू का रामराज्य साकार नहीं होगा? ये अनेक जलते प्रश्न हमें जलाते ही हैं, कोई शमनकारी समाधान प्रस्तुत नहीं करते।

पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीवगाँधी के शासनकाल में पंचायती राज व्यवस्था को और गतिशील बनाने तथा स्थानीय स्वशासन के ढाँचे को अमली जामा पहनाने के उद्देश्य से पंचायती विधेयक पारित हुआ। इस विधेयक के पारित होने से ग्राम-स्वावलंबन की दिशा में आशातीत प्रगति हुई है। जवाहर योजना के अंतर्गत गाँव के मुखिया को अपने पंचायत के उन्नयन के लिए राशि सरकार से प्रत्यक्ष रूप से आबंटित की जाती है। वही ग्राम विकास का मूल केंद्र है। इसी तरह इंदिरा आवासीय योजना का कार्यान्वयन भी ग्राम विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। गृहविहीन लोगों को अपना घर देने का यह राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इन योजनाओं का लाभ आम जनता को तभी मिल सकता है जबकि नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता हो। इन योजनाओं के कार्यान्वयन का भार जिन व्यक्तियों पर है, उन्हें भी नैतिकता एवं ईमानदारी का परिचय अपने व्यक्तिगत एवं प्रशासकीय जीवन में देना होगा।

नगरजीवन

[आरंभ, दुर्गुण, आवश्यकता, अंत]

आप यदि राजमार्गों से निकल जाएँ, तो पाएँगे कि धुआँ उड़ाती, कोलाहल करती मरण का आमंत्रण लुटाती—टैक्सियाँ, बसें और ट्रामगाड़ियाँ बेतहाशा भागी जा रही हैं, जिनमें मनुष्य निर्जीव पार्सल के पैकेट की तरह ठसाठस भरे हैं। इन राजमार्गों के दोनों ओर आकाश-आश्लेषी अट्टालिकाएँ हैं, जिनमें मरकरी और नायलन बल्बों की रोशनी दूधिया चाँदनी को चुनौती दे रही है, जिनके प्रकाश में बैठे तुंदिल व्यापारियों की जेबकतरा मुस्कानें बिछल रही हैं, किनारे-किनारे अपार जनसमूह का समुंदर लहरा रहा है। सजी-धजी दुकानों में हवाखोरी को निकली नागिन-सी रूपसियों की भीड़ उमड़ आई है। गगन में चाँद का कौन पता लगाए, इस अपार भीड़ में जहाँ-तहाँ चाँद का झुंड ही नजर आ रहा है। सब भाग रहे हैं। बेतहाशा भाग रहे हैं—कारखानों से झुलसे लोग, दफ्तरों से चुसे लोग, मजदूरी की चक्की में पिसे लोग, दिनभर के कामों में घिसे लोग! बाहरी चकाचौंध में नरों के स्फूर्तिहीन कार्टून किसी विद्युत्-तरंग पर भागते चले जा रहे हैं। यहाँ पग-पग पर मानवस्वेद का अथाह पंक पड़ा दीखता है, विज्ञान का इंद्रजाल नजर आता है। काउपर ने ठीक कहा था कि नगर मनुष्य की दुनिया है, परंतु गाँव ईश्वर की। शहरों में प्रकृति की हर कला ध्वस्त हो चुकी है और उसके श्मशान पर उभर आई है, एक नई दुनिया। यहाँ ईश्वर के हाथों निर्मित हरसिंगार मोहक गंध नहीं बिखेरता, वरन् बंद शीशियों में बैठे फाहे गंध लुटाते हैं, यहाँ चाँद और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सितारों की महफिल नहीं सजती, वरन् बल्बों की बारात सजती है; यहाँ पहाड़ की गोद में झरने नहीं मचलते, वरन् लोहे के यंत्र से अशुद्ध जल के फव्वारे छूटते हैं, यहाँ दूर-दूर गंधमाती हवा तन-मन में स्फूर्ति नहीं उत्पन्न करती, वरन् कमरे की कैद हवा ही विद्युत्-यंत्रों के द्वारा चक्कर काटती है; यहाँ पक्षियों की नैसर्गिक रागिनी नहीं सुनाई पड़ती, वरन् कर्णस्फार ध्वनिविस्तार-यंत्रों से बेताल राग चीखता है।

शहर में जब रात गहराती है, तब भीड़-तमाशबीनी का ज्वार थमता नजर आता है। सड़कें उदास हो जाती हैं; व्यापारिक रोशनी की बहार कम हो जाती है। एक और नभचुंबी वातानुकूलित भवनों में करोड़पति करवटें बदलते रहते हैं, तो दूसरी ओर खुले आकाश की छत के नीचे फुटपाथों पर हजार-हजार लोग खर्राटे लेते नजर आते हैं या असूर्यंपश्या गलियों के डस्टबिनों में न मालूम कितने श्वान उच्छिष्ट उकटते नजर आते हैं। नगर में स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है कि परमात्मा ने यह दुनिया नहीं बनाई। यदि उसने यह दुनिया बनाई होती, तो आदमी-आदमी के बीच इतनी दुर्लंघ्य खाई नहीं होती, आकाश-पाताल की ऐसी दूरी नहीं होती। नगर का बाह्य तन तो बड़ा आकर्षक है, किंतु उसका अंतःकरण कुरूप और घिनौना, जैसे कोई कनक-घट विषरस से भरा हो। यहाँ के मनुष्य बहुत बातूनी, बहुत बनावटी होते हैं। शिष्टाचार के नाम पर बातों में तो यहाँ के लोग मिसरी घोलते हैं, ओठों से शहद टपकाते हैं, किंतु इनके हृदय में छल और कपट का जहर भरा रहता है। ये बिलकुल मयूरधर्मी लोग हैं, जिनके आवरण तो बड़े ही चमकीले और इंद्रधनुषी हैं, किंतु आहार साँप जैसा जहरीला जंतु। यहाँ के लोगों के आचरण पर अज्ञेयजी ने ठीक ही व्यंग्य किया है—

साँप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ—(उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डँसना—
विष कहाँ पाया ?

—इन्द्रधनु रौंदे हुए ये

आप शहर में चल रहे हैं, तो हर वक्त अपना एक पाँव कब्र में रखिए या कफन खरीदकर पहले से अपने पास रख लीजिए। पता नहीं, कौन-सा ट्रक आपको धक्का देकर भाग जाए, कौन-सा ताँगा आपकी टाँगों को तोड़कर रफूचक्कर हो जाए, कौन-सा गुंडा आपके सीने में कटार घुसेड़कर चंपत हो जाए! जेब काटना, सामान छीन लेना तो मामूली बात है। कब कोई किसी अबला पर बलात्कार कर दे, कब कोई आपके मासूम बच्चे को उड़ाकर भाग जाए। किसी समय आपकी जान, आपका माल, आपकी इज्जत सुरक्षित नहीं है। जितनी देर जो बच पाता है, उसे संयोगमात्र समझिए। बात-बात पर गुस्सा, बात-बात पर हड़ताल, बात-बात पर उत्पात! कहीं कोई आपका रक्षक नहीं। ये पुलिस, ये सिपाही, ये संतरी—सब बदमाशों के साझेदार हैं। इसीलिए, एक आधुनिक कवि ने नगरजीवन का सही चित्रांकन किया है—

यहाँ कोई नियम, कोई शासन नहीं
दया, क्षमा, प्रेम,
कोई दीन-धर्म नहीं
यहाँ सिर्फ एक कानून है
जंगल का कानून
जिसका अर्थ—खून है
यह शहर नहीं, जंगल है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यहाँ जिंदगी का हर रास्ता खो गया है
एक अचंभा-सा हो गया है !

—**गिरिधर गोपाल**

किंतु, आश्चर्य होता है कि क्यों ग्रामवासी प्रकृति-पालना गाँवों को वीरान बनाकर इस रावण की स्वर्णपुरी लंका की ओर भागते चले आ रहे हैं ! नगर मासूम लोगों को अपने बाह्य चाकचिक्य से, तड़क-भड़क से खींचता है। लोग ग्रामों के तपोवन को छोड़कर जनाकीर्ण कोलाहलपूर्ण मायानगरी की ओर दौड़ रहे हैं। नगर का तन बाहर-बाहर से सँवरा अवश्य है, किंतु इसका भीतर नहीं सँवर पाया है। यदि इसके वज्र-तन में मोम का मन बस पाता, तो अधिक कल्याणकर हो सकता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आत्मकथा-संबंधी निबंध

पैसे की रामकहानी

[आरंभ, महत्ता, चेतावनी, उपसंहार]

जी, मैं पैसा हूँ। किसी सुहागिन के माथे की बिंदी के सदृश मनोमोहक, स्वस्तिक-चिह्न के सदृश शुभसूचक, पाटल की पंखुड़ी की तरह अनुरंजक ! आप मेरी रामकहानी सुनना चाहते हैं, मेरे बाप-दादे की नहीं, इसीलिए मैं अपनी वंशावली का खाका न खींचकर, अपने वंशवृक्ष की तफसील में आपको न उलझाकर, अपनी रामकहानी ही सुना रहा हूँ।

आप मेरे अतिलघु रूप को देखकर मुझे अकिंचन न समझें, मुझपर तिरस्कार का शरसंधान न करें, मुझे दुत्कार का अर्धचंद्र न दें। वस्तुतः, मुझ वामन का ही विराट रूप वह है, जिसे आप 'रुपया' नाम से पुकारते हैं। वस्तुतः मैं ही महतो महीयान् धनरूपी भगवान का अणोरणीयान् रूप हूँ, सागरोल्लंघी भीमाकार विक्रम-बजरंगी का सूक्ष्म रूप हूँ, जो उन्होंने सागरनिवासिनी निशाचरी को धोखे में डालने के लिए धारण किया था। मैं ही संपत्तिरूपी सर्वेश्वरी का आज्ञाकारी अनुचर हूँ, मैं ही वह व्यष्टि रूप बूँद हूँ, जिसका समष्टि रूप ऐश्वर्य महासागर का सर्जन करता है।

जी, मेरा यह वरद रूप मुझे यों ही नहीं मिला है। इसके लिए मैंने जितनी कठोर साधना की है, जितनी लंबी तपस्या की है, उतना शायद अपर्णा ने भूतभावन भोलानाथ की प्राप्ति के लिए की होगी, देवेंद्र ने दुर्लभ इंद्रासन पाने के लिए की होगी, ध्रुव ने विभु-साक्षात्कार के लिए की होगी। जी, इस सर्वाकर्षक रूप को पाने के लिए मैं तपस्वियों की तरह पंचाग्नि में तपा हूँ, अपनी शुद्धता का अभिसाक्ष्य देने के लिए जगजननी सीता की तरह मैंने अग्निपरीक्षा दी है, निष्ठुर लौहयंत्रों में दबाव की यातुधान-यातना सही है। मैंने मीरा की तरह सूली का उपहार पाया है, शम्स तबरेज की तरह अपनी खाल खिंचवाकर ही अमरत्व का आशीर्वाद पाया है।

सरकारी यंत्रालय में भारत-सरकार ने मेरे सीने पर सारनाथ-स्तूपवाले सिंहचिह्न दाग दिया। मैंने उसी प्रकार उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया, जिस प्रकार विष्णु भगवान ने अपने वक्षःस्थल पर भृगुचरण को अंकित कर लिया था। इसपर उसने 'भारत : रुपये का सौवाँ हिस्सा' राष्ट्रभाषा हिंदी में लिखा, सो तो मुझे जँचा, किंतु अँगरेजी में, 'इंडिया' क्यों लिख दिया, समझ नहीं पाता। अँगरेज तो चले गए, किंतु उनका भूत भारत-सरकार को अब भी नहीं छोड़ रहा। मेरे गले विजातीय भाषा का यह ताबीज कितना जानमारू है, कितना अपमानजनक है, कितना देश-प्रेमविघातक है कि क्या बताऊँ?

खैर ! जब मैं टकसाल से निकला, तब दिग्विजय के अश्व की तरह सारे संसार की परिक्रमा कर गया। किसी का साहस न हुआ कि वह मेरे विजय-अभियान में व्यवधान बन उपस्थित हो। इतना ही नहीं, मैं जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ मेरा भव्य स्वागत हुआ। मेरे पाँव जिधर-जिधर पड़े, उधर-उधर मेरा शिरसा नमन किया गया। मैं अभावों के अंधकार से घिरे जिस घर में पहुँचा, वहीं दीवाली जगमगा उठी, निराशा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के परदे से ढके जिस हाट पर गया, वहीं होली की मस्ती छा गई। किसी ने मुझे अपने सीने में चिपकाया, किसी ने मुझे अपनी गर्म मुट्ठियों में भींचा। साधारण लोगों की बात कौन कहे, कभी मैंने भगवान काशी विश्वनाथ के चरणों का निवास पाया, कभी मैं उज्जैन के महाकालेश्वर के सिर पर चढ़ा, कभी काठमांडू के पशुपतिनाथ का सान्निध्य प्राप्त किया, कभी तिरुपति के व्यंकटेश्वर स्वामी के दर्शन का साधन बना, कभी पुरी के जगन्नाथजी के महाप्रसाद का उपकरण बना, तो कभी बदरीनाथ की दुर्गम चढ़ाइयों का सहारा बना।

जहाँ मैं पहुँचता, वहीं सभी मुझे अपने प्रणयपाश में बाँध लेना चाहते, सभी मुझपर अपना अनन्य प्रेम बरसाते कि मैं केवल उन्हीं का होऊँ—केवल उन्हीं का। सब मुझे अपनी स्नेह-बोझिल निगाहों में गिरफ्तार कर लेना चाहते। भिखारी मुझे अपनी झोली में बंद कर लेना चाहता, किसान मुझे अपने बटुए में दबा लेना चाहता, धनसेठ मुझे अपने सेफों में रख लेना चाहता, मक्खीचूस अपनी तहखानों में डाल देना चाहता, टाई-पैंटवाला छैल-छबीला अपनी नितंबवाली जेब में घुसेड़ लेना चाहता, तो सोसाइटी गर्ल अपने वैनिटी बैग में खिसका लेना चाहती। श्रीराम को तुलसी जैसे विरले भक्तों का अनन्य प्रेम भले मिला हो, किंतु मेरे अनन्य भक्तों की संख्या संसार में जितनी है, उसकी गणना भी संभव नहीं। लगता है, मेरी वंदना में ही यह श्लोक रचा गया है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

मेरे लिए त्याग की प्रतियोगिता छिड़ गई। मेरे लिए किसी ने ईमान छोड़ा, तो किसी ने सम्मान, किसी ने भगवान छोड़ा, तो किसी ने घर, किसी ने खेत छोड़ा, तो किसी ने खलिहान, किसी ने मैदान छोड़ा, तो किसी ने दूकान, किसी ने ज्ञान छोड़ा, तो किसी ने विज्ञान, किसी ने सच्चा साहित्य छोड़ा, तो किसी ने शुद्ध संगीत। भाई ने भाई को, तो बाप ने बेटे को, भाई ने बहन को, पत्नी ने पति को, शिष्य ने गुरु को, गुरु ने शिष्य को, मित्र ने मित्र को, गृहस्थ ने अतिथि को, महंथ ने संत को, विधायक ने दल को और उच्चाधिकारी ने पद को छोड़ा। किस-किस की बात आपको सुनाऊँ? किंतु, आप विश्वास मानिए, मैंने किसी को छोड़ने के लिए, किसी से संबंध तोड़ने के लिए कभी क़िसी को प्रोत्साहित नहीं किया।

मेरे बल पर मंदिर भी बने—मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारे भी। मेरे कारण विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय—सभी खुले। मेरे कारण जलाशय बने, अनाथालय बने, औषधालय बने। मेरे कारण भूखों की भूख मिटी, बीमारों की जान बची। अलबत्ता, यह बात दूसरी है कि कितनों की जान भी गई है मेरे कारण। राहजनी, पॉकिटमारी, लूट-खसोट, चोरी-डकैती की बात छोड़िए, मेरे कारण संसार में न मालूम कितने रोमांचक महायुद्ध हुए हैं, शायद आप नहीं जानते। भयानक महायुद्धों के पीछे मैं न होऊँ, तो कौन हो?

जी, मैं ही किसी राष्ट्र का जीवनरक्त हूँ, मैं ही किसी साधक का प्रेरणास्रोत हूँ, मैं ही महान आविष्कारों का महामंत्र हूँ। मैं बुढ़ापे में जवानी की ताजगी लाता हूँ, शांत शिराओं में मकरध्वज की ऊष्मा उड़ेलता हूँ। मुझसे ही अकुलीन कुलीन बनते हैं और अपूजनीय पूजनीय बनते हैं, मुझसे ही धर्म होता है और धर्म से ही सुखोपलब्धि होती है। मैं ही आपत्सिंधु में त्राणदायक जलयान बनता हूँ। मेरे कारण ही मनुष्य पंडित, गुणज्ञ, बहुश्रुत, सुवक्ता और सुदर्शन कहलाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हाँ, लेकिन एक बात के लिए खबरदार भी कर रहा हूँ कि मेरी तीन ही गतियाँ हैं—दान, भोग और नाश। मैं जब आपके पास होऊँ, तो खुलकर मेरा भोग कीजिए, खुलकर दान कीजिए। मुझे ही द्रव्य कहा गया है—सचमुच मैं द्रवणशील हूँ, अर्थात् बहना ही मेरा स्वभाव है। यदि आप मुझे रोककर रखेंगे, तो अवरुद्ध जल-प्रवाह की भाँति दुर्गंध उत्पन्न करूँगा। विनोबाजी ने ठीक ही कहा है कि मेरा खेल फुटबॉल की तरह होना चाहिए। गेंद को कोई अपने पास नहीं रखता। वह जिसके पास पहुँचता है, वही उसे फेंक देता है। पैसे की, अर्थात् मुझे भी इसी तरह फेंकते जाइए, तो समाज-शरीर में उसका प्रवाह बहता रहेगा और समाज नीरोग रहेगा। मुझे अपने पास संचित कर रखिएगा, तो वही हाल होगा, जो पानी भर जानेवाली नाव का होता है। अच्छा हो, आप सयाने लोग दोनों हाथ मुझे उलीचते चलिए—

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

—कबीर

किंतु, इतना ही नहीं कि रेलवे की टिकट-खिड़की पर पैसे नहीं रहने के कारण आपको अपनी यात्रा स्थगित कर देनी पड़े या पोस्ट ऑफिस के दरवाजे से निराश लौटकर आपको अपने मोहन के पास पाती भेजने से वंचित रह जाना पड़े। यदि मेरी रामकहानी आपको भा जाए, प्रेरणा की कोई चिनगारी मुझसे आपको मिल जाए, तो मैं फिलहाल अपने समय का सदुपयोग मानूँगा।

चने की रामकहानी

[आरंभ, महत्ता, उपसंहार]

जी, मैं चना हूँ। गुलाब की पंखुड़ी-सा, जवानी की अग्नि-लपटों-सा और प्रीति के सुहाने रंग-सा लाल ! किंतु, आपको क्या पता है कि मुझे आज तक उपहास के कितने सर्पदंश सहने पड़े हैं, उपेक्षा की कितनी शरशय्या स्वीकार करनी पड़ी है ? मैं कभी पूजा की थाली में चावल, तिल, जौ की बराबरी में नहीं रखा गया, न कभी नववधू के मस्तक पर आशीर्वाद के दूर्वाक्षत के रूप में बरसाया गया। न कभी किसी अल्हड़ किशोरी ने अल्पना की आकर्षणवृद्धि में मेरा उपयोग किया, वरन् 'चना-चबेना' कहकर हमेशा मेरे दैन्य, मेरे अनभिजात्य का पक्ष उभारा गया, 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता', 'थोथा चना बाजे घना' आदि कहकर किसी की हीनता को स्पष्ट करने के लिए मुहावरों तक में मुझे घसीटा गया। अपनी विपदा कितनी सुनाऊँ, किसे सुनाऊँ ? इस हृदयहीनता के युग में सहानुभूति के दो शब्द भी तो दुर्लभ हो गए—

Oh! gold is great but greater far
Is heavenly sympathy.

आपको मालूम हो या न हो, जब संसार के महापुरुष अपने बाल्यकाल में बुभुक्षा-राक्षसी के चंगुल में फँस गए थे, क्षुधा की दारुण ज्वाला में उनका जीवनकुसुम असमय ही झुलसनेवाला था, तब मैंने आत्मोत्सर्ग कर उनकी रक्षा की। सारी मानवजाति उनके समस्त दिव्य अवदानों से वंचित हो जाती, यदि मैं न होता। कहाँ गया था गोधूम, कहाँ गया था हविष्यान्न चावल ? गोस्वामीजी अपने बचपन में दारुण जठराग्नि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शांत करने के लिए द्वार-द्वार ठोकरें खा रहे थे। उस समय मैंने ही उन्हें सहारा दिया था। यदि आपको विश्वास न हो, तो उन्हीं की जुबानी मेरी बलिदानी कहानी सुन ले—

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि
भयो परिताप पाप जननी जनक को,
बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।

इतना ही नहीं, आपने शहंशाह शाहजहाँ का नाम तो अवश्य सुना होगा, जो प्रेम की अमर समाधि, काल के कपोल पर अविनश्वर अश्रुबिंदु की तरह ताजमहल बनाकर अमर हो गए। उनका एक कुपुत्र था औरंगजेब। आदिकवि वाल्मीकि ने लिखा है कि क्योंकि बेटा 'पुम्' नामक नरक से पिता का त्राण करता है, इसलिए 'पुत्र' कहा गया है। वस्तुतः, जो पितरों का सब ओर से परित्राण करता है, वही पुत्र है—

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितृन् यः पाति सर्वतः॥

किंतु, उस पुत्र ने अपने पिता शाहजहाँ को जीते-जी ही दाहक नरक में धकेल दिया, उनके पाँवों में बेड़ियाँ डाल दीं और उन्हें आगरा के किले में कैद कर दिया। एक बार औरंगजेब ने अपने बंदी पिता शाहजहाँ से पूछा था कि आप मनपसंद केवल एक अन्न बताएँ, जिससे आपका गुजारा हो जाए, तो कैदी बादशाह ने कहा था—'चना'! 'चना' शब्द सुनते ही औरंगजेब के तलवे की आग सर पर फैल गई और उसने क्रोध से थरथराते स्वर में कहा था—सारी चीजें चली गईं, किंतु बुड्ढे की जीभ का स्वाद नहीं गया!

जी हाँ! मुझे छोड़कर आपको कोई दूसरा अन्न नहीं मिलेगा, जिसका आप बहुविध बहुस्तरीय उपयोग कर पाएँ। जेठ की तपती दुपहरी में जो श्रमिक अपने शोणित को स्वेद बनाते रहते हैं, उनके लिए मेरा ही सत्तू मोहनभोग, मक्खन और मलाई है। यह 'शीतलबुकनी' सचमुच किसी फ्रिज में रखे, 'मिल्क' या 'मैंगोस्क्वैश' से कम सुखद, शीतल और पौष्टिक नहीं है। मैं सत्तू के रूप में सचमुच दीनों-दलितों का सखा हूँ, मैं ही गोप-ग्वालों को विपदा के इंद्रकोप से बचानेवाला गोवर्धनधारी कृष्ण-कन्हाई हूँ। बड़े-बड़े रेस्तराओं के शीशों में सजी हुई बासी मिठाइयों के मुकाबले फुटपाथी 'तुरंता भोजनालय' में रखे हुए हमारे मोहक चूर्ण के पिंड क्या कम आकर्षक हैं? सत्तू के पिंड पर खोंसी लाल लौंगी मिरचाई, मानो गौतम जैसे ज्ञानी तक को भरमाने के लिए श्वेत कुक्कुट बने शीतल चंद्र के सिर खोंसी लाल कलँगी हो।

इतना ही नहीं, जिसके अंतर की ज्वाला सारे धर्मग्रंथों को जला चुकी है; जो मतवाला मंदिर, मस्जिद और गिरजे के तंग घेरों को तोड़ चुका है; जो दीवाना पंडित, मोमिन और पादरियों के फंदों को काट चुका है; जिसने अपनी सारी हसरतें कुचल डाली हैं; जिसने अपने सारे अरमान खाक कर दिए हैं; जिसने निराशा की आँधियों से बचाव के लिए मधुशाला की शरण ली है; उसके जाम के साथ देने के लिए तश्तरी में मैं ही स्वादिष्ट चखना के रूप में उपस्थित होता रहा हूँ। आपको भले मेरा उसका साथ देना बुरा लगे, किंतु क्या करूँ, जिस घरफूँक अलमस्त के लिए हर दिन होली और हर रात दीवाली है, भला मैं उसका साथ कैसे न दूँ?

और, हाँ! यदि आप सभ्य समाज में अपने आभिजात्य का, अपने वैभव का, अपने कौशल का, अपने पाकशास्त्र का परिचय देना चाहते हैं, तो फिर मुझ जैसा अन्न आपको कोई न मिलेगा। आप जितने व्यंजन चाहें मुझसे बना लें, आप जितने मिष्टान्न चाहें, मुझसे बना लें। जो जितना बड़ा मोदकप्रिय है, वह उतना ही मेरा भक्त होगा,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मेरा दासानुदास होगा। बुद्धिदाता स्वयं गणेशजी भी मोदकप्रिय हैं। यह आपकी कला पर निर्भर है कि आप मुझसे सिर्फ छप्पन भोग तैयार कर सकते हैं या एक सौ छप्पन। मेरे रूपों का कोई अंत नहीं है, मेरी संभावना की कोई सीमा नहीं है। मैं सचमुच नानावेशधारी विष्णु हूँ। आप जिस रूप में चाहें, मैं आपके यहाँ अवतार ग्रहण कर आ जाऊँगा—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' का उदघोषक मैं सचमुच अर्जुनसखा नटनागर श्रीकृष्ण हूँ। 'अन्नं ब्रह्म' की व्यापकता का दिग्दर्शक सचमुच मैं ही हूँ, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

इधर आप वैज्ञानिकों के फेरे में बहुत पड़ते जा रहे हैं। जब तक वे अपने परीक्षणों से किसी वस्तु के बारे में प्रमाणपत्र न दें, तब तक आपमें विश्वास जमता ही नहीं। उनसे यदि आपकी मुलाकात हो जाए, तो पूछकर जान लें कि उनकी जाँच-पड़ताल से सिद्ध हो चुका है कि एक छटाँक मुझमें जो ताकत है, वह एक ग्लास गोदुग्ध में भी नहीं, एक जोड़ा श्वेत शालिग्राम या अंडे तक में नहीं।

मेरी सरलता, मेरी सहज उपयोगिता का तो कोई मुकाबला ही नहीं। आप चावल, जौ, मकई किसी को भिंगोकर सुरुचिपूर्वक खा नहीं सकते, किंतु मेरा उपभोग आप मुझे कुछ देर जलसेंक के तत्काल बाद कर सकते हैं।

हाँ! ऊपर से मेरी कठोर त्वचा को देखकर आप भले भड़क जाएँ, मुझे सचमुच लोहे का चना समझ लें, तो यह आपकी बुद्धि का विभ्रम है, दिमाग का दिवालियापन है। मैं तो सचमुच नारिकेलधर्मा हूँ, बदरिकाधर्मा नहीं। मेरे आवरण का कठोर होना कोई आश्चर्य की बात नहीं, यह मेरे अवगुण की निशानी नहीं, मेरी मधुरता का विरोधी नहीं। संसार में ऐसा कौन पदार्थ है, जिसकी मधुरता के साथ कुछ-न-कुछ रुक्षता न जुड़ी हो।

अतः, मैं अपने मुँह मियाँ मिट्ठू क्या बनूँ? जब मेरी सिफत आपकी जबान पर चढ़कर बोलने लगे, जभी मेरे गुणों का जादू आपको प्रशंसा के दो शब्द कहने को विवश करे, तब अपने को कृतार्थ मानूँगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूक्ति-संबंधी निबंध

दैव-दैव आलसी पुकारा

[आरंभ, भाग्यवाद, पुरुषार्थ, उपसंहार]

आपने देखा होगा ऐसे अनेक लोगों को, जिनकी आँखों में आँसुओं की मेहराब छाई रहती है, जिनके कपोलों पर अवसाद का कनात फैला रहता है, जिनके ओठों पर उदासी का सैलाव उमड़ता रहता है, उनका जीवन अभावों का, रिक्तताओं का, आवश्यकताओं का विश्वकोष-भर होता है; वे पूरे मलूकदासी संप्रदाय में दीक्षित होते हैं, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं और कहा करते हैं कि जो भाग्य में लिखा है, प्रारब्ध में बदा है, वही होगा; कुछ करना व्यर्थ है—भाग्य ही सर्वत्र फलता है, विद्या और पौरुष नहीं, तभी तो समुद्र का मंथन होने पर विष्णु ने लक्ष्मी प्राप्त की और शंकर ने विष—

भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्॥

इतना ही नहीं, जिनके घर वैसी गृहिणी हैं, जो अन्नदान से तीनों लोकों की रक्षा करती हैं, वे शंकरजी भी हाथ में खप्पर लेकर भिक्षा माँगते फिरते हैं, अतः भाग्य का लिखा नहीं मिटता—

सीमन्तिनी यस्य गृहेऽन्नपूर्णा त्रिलोकरक्षां कुरुतेऽन्नदानैः।
भिक्षाचरः सोऽपि कपालपाणिर्ललाटलेखो न पुनः प्रयाति॥

करील-वृक्ष में यदि पत्ते नहीं हैं, तो इसमें वसंत का क्या दोष? उल्लू यदि दिन में नहीं देख पाता, तो सूर्य का क्या दोष ? वर्षा का जल यदि पपीहे के मुख में नहीं पड़ता, तो मेघ का क्या दोष ? विधाता ने जो पहले भाग्य में लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है ?

पत्रं नैव यदा करीलविटपे दोषो वसन्तस्य किम्।
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्।
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः॥

—**भर्तृहरि**

भाग्य यदि साथ नहीं दे रहा है, तो धन के लिए बहुत दौड़-धूप मचाना व्यर्थ है। भाग्य के बिना केवल दौड़धूप से ही यदि लक्ष्मीजी प्राप्त होतीं, तो बराबर दौड़ते रहनेवाला कुत्ता भी धनी हो जाता—

मा धाव मा धाव विनैव दैवं,
नो धावनं साधनमस्ति लक्ष्म्याः।
चेद्धावनं साधनमस्ति लक्ष्म्याः
श्वा धावमानोऽपि लभेत लक्ष्मीम्॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भाग्य की रेखा अमिट है। जो जन्मपत्र में अंकित है, आखिर उसे कौन मिटा सकता है? करम की गति टारे नहीं टर सकती है—

करम गति टारे नाहि टरी।
मुनी बसिष्ठ-से पंडित ज्ञानी सोच के लगन धरी,
सीता-हरन, मरन दसरथ को बन में बिपति परी। —कबीर

किंतु, गोस्वामी तुलसीदास अकर्मण्यता की इस दलदल में, भाग्यवाद के इस भँवर में पड़े मानवों के बीच कर्मवाद का पांचजन्य फूँकते हैं; उनमें ऐसी शक्ति देते हैं कि वे इन अगति लानेवाली प्रवृत्तियों का पूर्णतः उच्छेद कर सकें। वे कहते हैं कायर मनुष्यों के लिए एक ही आधार है, आलसी मनुष्यों के लिए एक ही रहस्य है—कर्मठता, अर्थात् उद्योग! कहा गया है कि उद्योगी पुरुषसिंह लक्ष्मी का उपार्जन करता है, परंतु कायर मनुष्य भाग्य के भरोसे बैठा रहता है, अतः भाग्य को ठोकर मारकर उद्योगी पुरुष अपने कार्य में दृढ़ता से निमग्न हो जाता है और यदि फिर भी उसे सफलता नहीं मिलती, तो वह उसे भाग्य का नहीं, वरन् अपनी कार्यपद्धति का दोष मानता है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
र्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥ —भर्तृहरि

जो व्यक्ति भाग्य के भरोसे बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठा रहता है और, जो हिम्मत बाँधकर खड़ा हो जाता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है। भाग्य कुछ बना-बनाया नहीं मिलता, वरन् उसके निर्माता तो हम स्वयं हैं। जैसा डिजरायली ने कहा है—

We make our fortunes and call them fate.

अकबर ने कहा है—

वही कानूनेफितरत है, जिसे तकदीर कहते हैं।
जिसे किस्मत समझते हैं, वो तदबीरों का हासिल है॥

बरतन रखने से उतना नहीं घिसता, जितना आदमी आलस में पड़ा रहने से घिस जाता है। उसकी सारी कार्यशक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और वर्षों से पड़े निरर्थक यंत्र की तरह जंग से जाकड़ हो जाता है।

अतः, जब तक हम आलस नहीं छोड़ेंगे, तब तक हम जीवन में सफलता के स्वर्णिम सोपान पर आरूढ़ नहीं हो सकेंगे। आलसी वाजिदअली शाह की दुर्गति से क्या हम अपरिचित हैं? आलस्य के कारण ही कोई देश पराधीन होता है, उसकी क्रियाशक्ति नष्ट होती है, उसके उत्पादन और निर्माण का कार्य रुकता है और वह अवनति के गर्त में गिर पड़ता है। संसार के आज जितने भी संपन्न एवं प्रगतिशील देश हैं, सबने अपने मानसकोष से 'दैव' शब्द को निकाल दिया है, उन्होंने आलस्य की वर्णमाला नष्ट कर दी है और वे विश्व के समक्ष ईर्ष्य तथा पूज्य बन रहे हैं।

हम भी अपने आलस्य का परित्याग करें और दैव का सहारा छोड़ दें। वीर तो स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करते हैं और ईश्वर स्वयं उनसे पूछकर उनकी भाग्यलिपि लिखता है—

खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर के पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है। —इकबाल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जहाँ चाह वहाँ राह

[प्रारंभ, चाह की महत्ता, उपसंहार]

कोई अपने दुर्भाग्य को कोस रहा है, कोई अपनी पारिवारिक दीनता को दोषी बता रहा है, कोई सहारे के अभाव को अपनी असफलता का आधार मान रहा है—बहुतेरे असफल व्यक्ति इसी तरह अनेकानेक कारणों को अपनी असफलता का आधार मान रहा है—बहुतेरे असफल व्यक्ति इसी तरह अनेकानेक कारणों की कल्पना कर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं। वे अपने जीवन में कुछ कर नहीं पाते। वे समाज के लिए संसार के लिए कुछ अवदान दे नहीं पाते।

ऐसे मनुष्यों को जीवन में कोई राह नहीं मिलती, कोई चारा नहीं दीखता। वे दूसरों से अपेक्षा करते हैं कि कोई उन्हें किसी प्राप्ति का मार्ग दिखाए, सफलता की सीढ़ी बताए, जिससे वे उसपर आसानी से चढ़ सकें। किंतु, ऐसे लोगों को यह भलीभाँति जानना चाहिए कि जहाँ चाह है, वहीं राह है। हमारी इच्छाशक्ति स्वयं हमारे लिए मार्ग बना देती है। अच्छे कार्य में धन की जितनी आवश्यकता नहीं होती, उतनी इच्छाशक्ति की होती है। एमर्सन ने ठीक ही कहा है कि इतिहास, पुराण सभी साक्षी हैं कि मनुष्य के दृढ़ संकल्प के आगे देव-दानव सभी पराजित होते रहे हैं। दृढ़ इच्छाशक्ति ने भगवान तक को घंटों कच्चे धागे में बाँधकर नचाया है।

हाँ, इतना ध्यान रखना होगा कि हमारी चाह बरसाती बादल का एक टुकड़ा न हो, जिसे हवा का एक झोंका जिधर चाहे उड़ाकर ले जाए। अतः, यदि हमारी इच्छा-शक्ति क्षुद्र और दुर्बल होगी, तो हमारी मानसिक शक्तियों का कार्य भी वैसा ही होगा। स्वामी विवेकानंद का दिव्य वचन है कि पवित्र और दृढ़ इच्छा सर्वशक्तिमान है।

अतः, यह नीति ठीक ही है कि हमारी चाह ही रास्ता बना जाती है। अंधकार से आच्छन्न मानव ने कभी इच्छा व्यक्त की थी कि प्रकाश हो और प्रकाश हो गया था (Let there be light and there was light.)। मनुष्य की इस चाह, इस लगन, इस उत्कट इच्छा-चमत्कार की अनगिनत कहानियाँ हैं। जब आततायी रावण श्रीरामवल्लभा सीता को हरकर लंका ले गया, तब राम को पता चला कि मार्ग में समुद्र व्यवधान बनकर खड़ा है। राम के अंतर्मन में सीता-प्राप्ति की चाह ने सागर पर सेतु-निर्माण किया था। चाणक्य के पास आखिर था क्या? किंतु, नंद-साम्राज्य के विनाश के उत्कट संकल्प ने उनके लिए मार्गनिर्माण कर दिया था। हमारे विप्लवी नेताजी सुभाषचंद्र बोस के पास क्या साधन था? किंतु, अँगरेजों को भगा देने की दृढ़ चाह ने उनसे इतनी बड़ी 'आजाद हिंद फौज' की स्थापना करा दी थी। पं० मदनमोहन मालवीय के पास कौन-सा कुबेरकोष था? किंतु, हिंदू-विश्वविद्यालय की स्थापना की लगन ने सारे विघ्नों को काटकर मार्ग बना दिया। इसलिए कहा गया है—

है जय पाना, जो यह ध्याता,
मैं कर लूँगा या तन दूँगा,
सच्चा खजाना विश्वास लाना,
इच्छा बली तो संसार जीतो।

—सत्यदेव परिव्राजक

यह हो सकता है कि कठिनाइयों के दुर्ग हमारे मार्ग में अवरोध बनें, हमारे सहयोगी हमारा साथ छोड़ दें, किंतु फिर भी हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अकेला चला था, अकेला चलूँगा,
सफर के सहारो, न दो साथ मेरा।
सहज मिल सके वह नहीं लक्ष्य मेरा,
बहुत दूर मेरी निशा का सवेरा।
अगर थक गए हो, तो तुम लौट जाओ,
गगन के सितारो, न दो साथ मेरा।

—विश्वनाथ मिश्र

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कल्पना-संबंधी निबंध

यदि मैं भारत का प्रधानमंत्री होता

[आरंभ, कठिनाई, कार्यसूत्र, उपसंहार]

किसी राष्ट्र का प्रधानमंत्री होना काँटों का ताज पहनना है, तलवार की धार पर चलना है, ज्वालामुखी के मुँह पर शीर्षासन करना है, लेकिन मानव-महासागर के महादेश—समस्याओं की शरशय्या पर गिरे विशाल देश—भारतवर्ष का प्रधानमंत्री होना तो और भी आपत्तियों के चक्रवाल से घिरना है, कठिनाइयों के भँवरजाल में फँसना है।

कबीरदास ने ठीक ही कहा था—'जाको कछू न चाहिए, सो ही शाहंशाह।' मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, अतः इतने बड़े जनतंत्र के राजसिंहासन पर आसन मारने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, किंतु राष्ट्रहित के लिए मुझे यदि सर्वस्वसमर्पण भी करना पड़ जाए, विपत्तियों का पहाड़ भी उठाना पड़ जाए, हलाहल का उफनता प्याला भी गटकना पड़ जाए, आग के दरिया में भी कूदना पड़ जाए, तो कभी नहीं हिचकूँगा। मौत तो एक ही बार किसी की जिंदगी में आती है। यदि इस मरणशील जीवन में आदमी देश के लिए कुछ कर जाए, तो मृत्यु के लिए लाख-लाख दूत भी उसकी अमरता की पताका झुका नहीं सकते।

अतएव, यदि जनता के अकाट्य आग्रह के कारण, उसके सहज फेनोज्ज्वल स्नेह के कारण मुझे इस महान देश का प्रधानमंत्री ही बनना पड़ जाए, तो मैं कुछ आवश्यक कार्य करूँगा। मैं वैसा व्यक्ति नहीं, जो केवल दिवास्वप्नों का रंगमहल उठाता हो, असंभाव्य कल्पनाओं का हवाईमहल खड़ा करता हो, अपूरणीय योजनाओं का शीशमहल उठाता हो, मैं तो कुछ गिने-चुने सिद्धांतसूत्रों को ही कार्यान्वित करना चाहूँगा। सुनता हूँ कि मरणासन्न रावण के पास जब उपदेश-ग्रहण के लिए लक्ष्मण पहुँचे थे, तब रावण ने कहा था कि "केवल मन में विचार मत लाना, वरन् उसे शीघ्र ही पूरा करने की भी चेष्टा करना। मैं बराबर सोचता रहा कि स्वर्ग में सीढ़ी लगाऊँगा, किंतु यही सोचता था कि जिसके दासानुदास सारे देव हैं, वह तो किसी दिन भी सीढ़ी लगा देगा और यही सोचते-सोचते मेरी मरणबेला आ गई।" कहानी सच्ची हो या झूठी—लेकिन, है बड़े काम की।

मेरे निर्माणसूत्र में केवल तीन शब्द होंगे—निर्णयन, उन्मूलन और संवर्धन। किंतु, इस त्रिसूत्र की व्याख्या के पहले एक बात कह देना आवश्यक समझता हूँ। कोई ऑपरेशन तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक औजार अच्छी तरह निस्संक्रांत न हों। कीटाणुयुक्त औजार से चीरफाड़ करने पर घाव तो छूटेगा नहीं, उल्टा पौतिक (दुर्गंध या सड़न से युक्त : सेप्टिक) हो जाने का डर बना रहेगा। काँग्रेस के शासन की मशीनरी इतनी दूषित और ढीली हो गई है कि कोई उत्तम परिणाम नहीं निकल रहा है। देश को गिरवी रखकर विदेशों से मनमाना कर्ज तो ले लिया गया, लेकिन जब कल-कारखाने बने तब रिश्वत, भ्रष्टाचार, ढिलाई, बेईमानी, लूट-खसोट इत्यादि के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कारण उत्पादन इतना कम होने लगा कि वे घाटे में चल रहे हैं। देश की सारी योजनाएँ असफल हो रही हैं। जनता का धन कुछ धनसेठों की तोंद में समाता जा रहा है। अतः, कुछ भी कदम उठाने के पहले शासनयंत्र को पूरी तरह कसना होगा, बेईमान, घूसखोर और भ्रष्ट अधिकारियों को कड़ी-से-कड़ी सजा देनी पड़ेगी तथा खुफिया विभाग को पूरी तरह चौकस करना पड़ेगा। देश के सामान्य प्रशासक स्वार्थी और अकर्मण्य नेतृत्व का अनुकरण कर भ्रष्ट होते जा रहे हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥

—गीता

(श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य भी उसी के अनुसार आचरण करते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग उसी के अनुसार चलने लगते हैं।)

अतः, मैं अपने देशकल्याण को ध्यान में रखकर जो कोई निर्णय लूँगा, उसका पालन दृढ़ता से करूँगा। बंदरघुड़कियों से यदि मैं डरने लगूँ, तो काम नहीं चलेगा। आज संसार का कोई देश ऐसा नहीं है, जो अपना राजकाज किसी दूसरे देश की भाषा में चलाता हो। इजरायल और जापान जैसे छोटे-छोटे देशों की भी अपनी राजभाषा है, किंतु हम अभी तक हिंदी के प्रयोग में शिथिलता बरत रहे हैं। अतः, मुझे निर्णय करना ही पड़ेगा कि राष्ट्रीय स्तर पर सभी कामकाज केवल राजभाषा हिंदी में हों। अपने राज्य का काम वहाँ की क्षेत्रीय भाषा में हो। विश्वज्ञान को उपलब्ध करने के लिए मैं अँगरेज़ी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, जापानी, चीनी, किसी एक भाषा को विश्वविद्यालयी स्तर पर आवश्यक बना दूँगा। शिक्षा का माध्यम हिंदी और अन्य प्रांतीय भाषाएँ राजभाषाएँ रहेंगी। अंतरराष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी के सिवा और किसी विदेशी भाषा का प्रयोग देशप्रेम-विघातक माना जाएगा। स्तरनिर्वाह के लिए भारतीय शासन-सेवा में केवल राजभाषा हिंदी का ही प्रयोग होगा। मैं संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को अविलंब स्थान दिलाने का प्रयत्न करूँगा। नवयुग के संदेशवाहक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ठीक ही कहा था—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥

मैं अपने राष्ट्र में उन्मूलन का तूफान उठा दूँगा—भ्रष्टाचार-उन्मूलन, अस्पृश्यता-उन्मूलन, सांप्रदायिकता-उन्मूलन, जाति-उन्मूलन, दहेज-उन्मूलन, अशिक्षा-उन्मूलन, अन्नाभाव-उन्मूलन, दरिद्रता-उन्मूलन, बेकारी-उन्मूलन, विषमता-उन्मूलन, भिक्षावृत्ति-उन्मूलन, क्षेत्रवाद-उन्मूलन इत्यादि। जब तक हम इन कुरीतियों पर निर्मम आघात नहीं करते, तब तक राष्ट्र का कल्याण संभव नहीं। जातिप्रथा तथा अस्पृश्यता दंडनीय अपराध है। जातिप्रथा और अस्पृश्यता में विश्वास रखनेवाले को सरकारी सेवाओं से वंचित रखा जाएगा। वे ही सरकारी सेवाओं में लिए जाएँगे, जिन्होंने अंतरजातीय विवाह किया होगा। प्रत्येक शिशु को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा दी जाएगी। जो माँ-बाप अपने शिशुओं को पाठशालाओं में नहीं भेजेंगे, उन्हें पहले चेतावनी और बाद में दंड दिया जाएगा। दो बच्चों के बाद नसबंदी अनिवार्य कर दी जाएगी। शिक्षा की दिशा बदल जाएगी। लड़कों को टिड्डीदल की तरह विश्वविद्यालय में भेजकर अशांति नहीं उत्पन्न की जाएगी, बल्कि व्यावसायिक शिक्षा देकर, घर-घर में कुटीर-उद्योग की स्थापना कर बेकारी का अभिशाप मिटा दिया जाएगा। भिक्षावृत्ति को दंडनीय अपराध माना जाएगा। पाकिस्तान की तरह हमारे देश में भिखारी-यूनियन बनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। काम करने योग्य भिखारियों को काम दिया जाएगा, अपाहिज और लाचार व्यक्तियों के लिए सरकार की ओर से भोजन और आश्रय का प्रबंध किया जाएगा। 1969 ई० से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मध्यप्रदेश-सरकार ने इधर कदम बढ़ाकर हमारा नेतृत्व किया है। मुझे मद्यपान भी रोकना पड़ेगा। जिस मद्य-निषेध के लिए काँग्रेसी पिकेटिंग किया करते थे, अँगरेजी-शासन के खिलाफ आग उगला करते थे, वे ही जब शासन में आ गए, तब थोड़े कर-लाभ के लोभ में उन्होंने यहाँ मधुशालाओं का बाजार बसा दिया। इसने हमारे सामाजिक एवं नैतिक जीवन को बड़ा ही दूषित किया है। साइरस ने ठीक ही कहा था—समुद्र की अपेक्षा शराब ने अधिक मनुष्यों को डुबाया है (Wine has drowned more men than the sea.)।

अतः, उन्मूलन को व्रत के रूप में स्वीकार कर मैं देश का कायाकल्प कर दूँगा। तब मेरा अंतिम सूत्र होगा—संवर्धन। मैं विज्ञान के वरदानों से अपने राष्ट्र की धरती पर स्वर्ग उतार देना चाहता हूँ। मैं नई-नई पद्धतियों से अपनी कृषि की उपज बढ़ाऊँगा, अपने कारखानों की उत्पादन-क्षमता बढ़ाऊँगा। मैं कृषि के योग्य खेतों का विकास करूँगा। राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों को चरागाह बनाऊँगा, विंध्य की पहाड़ियों पर सेब के बागीचे लगवाऊँगा, हिमालय की तराइयों में धान उपजवाऊँगा। मैं उपेक्षित पहाड़ियों, बड़े-बड़े गड्ढों को समतल कर आवास का प्रबंध करूँगा। आवास आकाश की ओर अधिक फैले, अवनि की ओर कम, इसपर मैं ध्यान रखूँगा। मैं शांति और अहिंसा के अपने पारंपरिक आदर्श में आस्था रखते हुए भी देश की सामरिक शक्ति का संवर्धन अवश्य करूँगा। मैं इछापुर के कारखाने में बंदूक के बदले जूते बनवाना कभी स्वीकार नहीं करूँगा।

हो सकता है कि मेरे मार्ग में अवरोधों के विंध्य खड़े हो जाएँ, हो सकता है कि मेरे सीने को भी अब्राहम लिंकन तथा कैनेडी की तरह किसी नासमझ की गोलियाँ पार कर जाएँ, किंतु कोई चिंता नहीं। मैं अपने प्रधानमंत्रित्व के थोड़े समय में यदि प्राणदान के मूल्य पर भी भारत का मस्तक विश्व के समक्ष ऊँचा कर सका, यदि इसके भीतर शांति, सुरक्षा, सुख और सौंदर्य का साकेत उतार सका, तो अपना अहोभाग्य मानूँगा। कोई डिक्टेटर मुझे भले ही देश से निकाल देना चाहे, किंतु अपने देश की रक्षा के लिए उसकी भी मुझे चिंता नहीं।

एक प्याली चाय

[आरंभ, महत्ता, अवसान]

चाय !

चाय का उच्चारण होते ही मेरा रोम-रोम उसी प्रकार पुलकित हो उठता है, जिस प्रकार वैदिक देवताओं का मन सोमरस का नाम सुनते ही हर्षोत्फुल्ल हो उठता होगा या गौरांग महाप्रभुओं का चित्त सुरादर्शन से ही मत्त हो उठता है।

छलकती चाय की प्याली में तरलता है, उष्णता है, लाली है। ये मानो मनुष्य की जीवन्शक्ति के प्रतीक हैं। जीवन की तरलता, जवानी की गर्मी और प्रेम की कत्थई लाली जहाँ हो, जिसके पास हो, उसका क्या कहना ! स्वर्ग उसके चरण चूमता है, बहिश्त उसके इशारे पर मुसकराता है।

मचलती चाय की प्याली में गरीबों का दिल लबालब भरा है—भले, उसकी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कीमत कम ही क्यों न हो। तन के गरीब और मन के शाहजादों की मस्ती कहीं देखनी हो, तो देखें चाय की एक नन्हीं-सी प्याली में।

जी करता है, किसी को बुलाएँ। आनेवाला दूर—बहुत दूर है। मन कितना भारी-भारी-सा लगता है, बिलकुल बोझिल। फिर भी आशावान मन हारता नहीं। रेस्तराँ के एक कोने में दुबका कोई प्रतीक्षा की निदारुण घड़ियाँ काटना चाहता है। ऐसे दारुण क्षणों में कोई सहायक नहीं, मददगार नहीं और तब एक प्याली चाय इठलाती आती है, कहती है—'मेरे दोस्त! तुम्हारी परेशानी मैं बाँट लेती हूँ, घबराओ नहीं। तुम जानते हो, द्वापर के श्रीकृष्ण को? वे जब राधा की प्रतीक्षा में बेचैन हो उठते, तो क्या करते थे, जानते हो? अपने अधरों से मुरली लगा लेते थे। उनकी पीड़ा कितनी कम हो जाती थी! तुम भी अपने प्यासे अधरों में मुझ चाय को लगाओ, मैं बहुत-कुछ तुम्हारी व्यग्रता शांत कर दूँगी।''

बड़े इंतजार के बाद प्रिय द्वार पर आया है। खुशियों के फूल नस-नस में खिल गए हैं। 'कभी हम उनको, कभी अपने घर को देखते हैं' वाला हाल हो गया है। वह आया है, उसका स्वागत करें, तो कैसे? कितना सामान जुटाएँ, कितना सरंजाम करें—मन चंचल-चंचल हो उठता है, कोई निर्णय नहीं हो पाता। और, तब चाय कानों में कह जाती है—''प्रियवर! छप्पन भोग बटोरने की आवश्यकता नहीं। वह तो इतना नाजुक है कि तुम्हारे इन गुरु गरिष्ठ भोगों को पचा भी नहीं पाएगा। घबराओ नहीं, तुम मुझे हाजिर करो। मैं ऐसा प्रेमसेतु बना जाऊँगी कि तुम भी याद रखोगे।'' बेचैन मन चैन पा जाता है।

मिलन के महीने पलों में सिमट गए। न दिन का पता, न रात की खबर। पर, कोई किसी के पास रहेगा कब तक? उसे तो जाना ही है। किंतु, उसकी विदाई भी तो शानदार होनी चाहिए, गोकुल के कन्हैया और कण्व की शकुंतला की विदाई से भी कुछ अच्छी। और, तब मन में एक खयाल पैदा होता है—टी पार्टी!

जब आपका मूड ठीक नहीं हो, आपकी मनःस्थिति बिगड़ी हो, आप लाख चेष्टा करके भी कविता की दो पंक्तियाँ रच न पाते हों, आपके उपन्यास की कथा आगे न बढ़ पाती हो, बस एक प्याली चाय लीजिए। देखिए, क्या करामात होती है! इतना ही नहीं, बहुत देर से कविगोष्ठी चल रही है, वातावरण में कुछ विरसता-सी आ गई है, कविगण की आँखों पर निद्रादेवी अपना इंद्रजाल फैलाने लगी है। चिंता की कोई बात नहीं। बस उबलती-मचलती चाय का एक दौर चल जाने दीजिए। फिर तो उखड़ी-उखड़ी-सी महफिल फिर से रंग पर आ जाएगी। अतः, चाहे वह सर्जन का क्षण हो, संप्रेषण का अवसर हो या आस्वादन की घड़ी हो—चाय हमारे लिए अपरिहार्य बन जाती है।

इस तरह, जिस समय याद करो—यह तुम्हारी खातिर तैयार है। इसलिए तो यह इठलाती है, बल खाती है। इसकी इठलाहट में कोई गरूर नहीं, बल्कि एक रवानी है—मस्ती है। संसार में चाय के प्रशंसकों की यदि विशाल जनसंख्या है, तो निंदकों की भी कमी नहीं।

उधर 'नई कविता' पर व्यंग्य करने के लिए इसकी खबर ली जाती है—

एक कप टी
तुमने दी
हमने पी
ही-ही-ही?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह मुँहजली कॉफी आभिजात्य के नाम पर चाय का बहिष्कार करना चाहती है; किंतु चाय में जो स्वाद है, जो सिफत है, उसे भला वह क्या पाए !

एक मोहक सपना

[आरंभ, मोहक दृश्य, संलाप, समापन]

कहते हैं कि सपने अपने नहीं होते, किंतु किसी-किसी सपने की याद इतनी मनोमोहक होती है, जिसके कारण हमारे जीवन के मरुस्थल में अमृतवर्षा हो जाती है। एक मधुर सपने से निराशा की अमानिशा में मधुज्योत्स्ना झर पड़ती है। उस मोहक रंगीन सपने की याद के स्वर्ग से हम कभी भगाए नहीं जा सकते, उसकी शाश्वत सुगंध से हम कभी वंचित नहीं किए जा सकते। न तो उसपर किसी शासन के द्वारा कर्फ्यू लगाया जा सकता है और न उसपर किसी प्रकार का वारंट ही लागू किया जा सकता है। उसके पंखों के सहारे तो हमारे प्राण के परिंदे जीवन के विशाल व्योम में विहार करते रहते हैं।

इस लघु भूमिका से ही आप इतने समुत्सुक हो गए होंगे कि आपके सब्र का बाँध टूट रहा होगा। अतः, बहुत देर तक आपकी उत्कंठा को रोक रखना ठीक नहीं। तो सुनिए, उस मोहक स्वप्न का विवरण, जो मेरे जीवन में वरदान की छोटी लहर की भाँति, आशीर्वाद की नन्हीं किरण की भाँति आया था और फिर तिरोहित हो गया था। मेरा मकान एक छोटी-सी खूबसूरत पहाड़ी पर है। अपने कमरे में कुर्सी पर बैठा हूँ। सूरज की नई रक्तिम रश्मियों में शुभ्र हिमपिंडों को सिंदूर का ढेर होते देख रहा हूँ। बर्फ की कालीन पर सूरज की किरणों का झरना मुझे बेहद भा रहा है। अंतर्मन की सारी विरसता दूर होती ही जा रही थी कि सहसा किसी मोहिनी की कुसुमकोमल, उजली, धुली-धुली-सी बाँहें मेरी ग्रीवा में जयमाला-सी झूल गईं। लगा, जैसे आँखों के समक्ष ज्योति का निर्झर झर रहा हो, रूप का आलोक बरस रहा हो ! वैसा अनोखा सौंदर्य अभी तक आँखों ने निहारा नहीं था।

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं;
जिसमें अनंत अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।

—प्रसाद : कमायनी

ऐसी रूपवती अप्सरा को देखकर ही कविकुलगुरु कालिदास ने कहा होगा कि इसके सर्जन के लिए चाँदनी बिखेरनेवाले चंद्रमा ही स्वयं ब्रह्मा बने होंगे या शृंगार-रस के देवता कामदेव ने स्वयं इसका निर्माण किया होगा या फिर वसंत ने ही इसे रचा होगा; भला वेद पढ़-पढ़कर पथराए और भोग-विलास से दूर रहनेवाले बूढ़े विधाता ने इसका निर्माण किस प्रकार किया होगा !

उसने अपनी मक्खन-सी कोमल ऊँगलियों से मेरी ठुड्डी पकड़ते हुए कहा—"देखो ! मैं तुम्हारे लिए, केवल तुम्हारे लिए इतने आयत अर्णवों को लाँघकर, इतनी फैली पहाड़ियों को रौंदकर तुम्हारे पास, तुम्हें वरण करने आई हूँ। एक बार देवयानी ने देवगुरु के तनय कच्च से अपना प्रणयनिवेदन किया था, किंतु उसे कृतज्ञता-ज्ञापन के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूखे शब्दों के सिवा मिला क्या ? तुम कभी ऐसा मत करना। नारीहृदय शीशे से भी अधिक तुनुक होता है, कमल की डंठल से भी अधिक कोमल होता है। देखो, उसे मत तोड़ना, उसे मत निराश करना !''

मैं तो हक्का-बक्का रह गया था। मैं बुरी तरह काँप रहा था। मेरे ओठों पर शब्द आने में सहम रहे थे। बहुत साहस बटोरकर मैंने कहा—''रूपसि ! मेरा जीवन तो किसी अनुष्ठान के प्रति संकल्पित है, मैं ऐसा पदार्थ हूँ, जो पूजा की वेदी पर चढ़ाने के निमित्त ही निर्मित किया गया है। मेरे देश की सीमा पर शत्रुओं का जमाव बढ़ता जा रहा है। मेरा मन, मेरा तन, मेरे प्राण सभी देश की सुरक्षा की ओर लगे हैं। मरे रोम-रोम में देश की वेदना का स्वर ही लहराता है, मेरे कण-कण में उसके लिए उत्सर्ग की रागिनी बजती है।''

रमणी ने मेरी आँखों में आँखें डालते हुए कहा—''इतने मूर्ख न बनो। यौवन की छाया बड़ी ही मादक, बड़ी ही मनोहारी होती है। मैं रस का गागर तुम्हारे सामने लाई हूँ—उसका आकंठ पान करो। क्यों नाहक तुम जवानी का फूल मृत्यु के मरघट में नष्ट करने को उतारू हो रहे हो।''

मैंने उस मोहिनी को उत्तर दिया, ''बाले ! स्मरण रखो, सैनिक केवल एक यंत्र है, जिसकी गति का निर्णय उसके नायक के वश में है। सैनिक जीवन और मृत्यु में कोई अंतर नहीं समझता और देश के लिए मृत्यु तो और भी सुन्दर, जिंदगी से कहीं अधिक हसीन है। मृत्यु से घबराहट क्यों; वह तो सोने की ताली है जिसके द्वारा अमरता का महल खुलता है। वह तो जीवन की चलती-फिरती तसवीर के लिए सुनहला फ्रेम है। वह तो प्रभु का मधुर आमंत्रण है। भला, उससे कतराना क्या ?''

''अतः, तुम मेरा खयाल छोड़ दो। मेरे देश में ऐसे अनेक युवक हैं, जिन्हें अपने जीवन में विवाह करने के सिवा और कोई काम नहीं है। जब कभी मैं मर जाऊँ, वीरगति को प्राप्त होऊँ, तुम अपनी सुकुमार आँखों को गर्म-गर्म आँसू बहाने का कष्ट न देना।''

वह रूपसी, वह यौवन की प्रतिमूर्ति मेरा उत्तर सुन ठगी-सी रह गई और फिर धीरे-से न जाने कहाँ विलीन हो गई। मेरी भी आखें खुलीं और मैंने पाया, मैं अपने बिस्तर पर पड़ा था, सुबह का सिंदूरी सूरज खिड़की से झाँक रहा था।

क्या मेरा सपना आपको भाया नहीं ? न भी भाए, तो आश्चर्य नहीं। सबकी रुचि समान थोड़े ही होती है ? किंतु, मेरे स्मृतिपट पर जब भी यह सपना कौंधता है, मेरे बियाबान जीवन का उपवन गुलजार हो उठता है।

फिर भी नींद नहीं आई

[आरंभ, मध्य, अंत]

अभी नींद की पहली परत जमी ही थी कि सहसा मैं सपनों की नीली झील के किनारे पहुँच गया। वहाँ एक भव्य रत्नजटित प्रासाद था, जिसपर मधुज्योत्स्ना स्वर्णमालती की लत्तरों-सी लिपटी हुई थी। मैं अगुरुगंध के कुहासे से भरे कक्ष में बैठा चाँदी के झालीदार झरोखे से अप्सराओं का जलकिल्लोल निहार रहा था। इसी बीच किसी ने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्वार पर हलकी-सी दस्तक दी। मुझे तत्क्षण महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' का यह गीत स्मरण हो आया—

'सुंदर, तुमि ऐसे छिले आज प्राते,
अरुन वरन पारिजात लये हाते।
निद्रित पुरी, पथिक छिलो ना पथे,
एका चलि गेले तोमार सोनार रथे।
बारेक थमिया मोर वातायन पाने,
चेये छिले तव करुण नयनपाते।
सुंदर, तुमि ऐसे छिले आज प्राते।

मुझे लगा, सचमुच मेरे द्वार पर उसका कनकरथ रुक गया था। वह मुझे वातायन से झाँककर, मेरे ऊपर मुसकराहटों की अमृतवर्षा कर मुझे निहाल कर देना चाहता था। अपने परिरंभ-पाश में वह मुझे जकड़ लेना चाहता था। अपनी मधुमिष्ट वाणी में मुझे डुबो देना चाहता था वह। मुझे रविबाबू की उस अभागिनी की बात याद थी, जिसे नींद नहीं टूटने के कारण न मालूम कितना पछताना पड़ा था। मैं पश्चात्ताप के हलाहल में अपने को निमग्न नहीं करना चाहता था। बड़ी उत्कंठा, बड़ी व्यग्रता, बड़ी विकलता से ज्योंही छटपटाकर उठा, त्योंही पाया कि सपनों की गजदंती मीनार भहराकर टूट चुकी है, सपनों की नीली झील अब कमरे का कठोर बिस्तर बन गई थी। अपने कमरे से बाहर निकल इधर-उधर मणि-खोए मनियारे की तरह चक्कर काटता रहा, किंतु काश वह आ पाती! मेरी बाँहों में बँध जाती!

बाहर पूर्णिमा की चाँदनी श्वेत नाग की तरह फण फैलाए खड़ी थी। उसने इतना विषवमन किया था कि क्षितिजों पर स्याही उतर आई थी। मैं नींद के बिखरे पन्नों को समेट लेना चाहता था, किंतु सारे प्रयत्न निष्फल होते रहे। नींद की महिमा के बारे में कही गई अनेकानेक उक्तियाँ याद हो आईं। दिनकर की 'उर्वशी' की ये पंक्तियाँ—

नींद जल का स्रोत है, छाया सघन है,
नींद श्यामल मेघ है,शीतल पवन है।

और फिर, शेक्सपियर के हेनरी 'चतुर्थ' तथा 'मैकबेथ' की नींद-संबंधी सूक्तियाँ— मानसपटल पर क्रमशः खिंच आईं—

O sleep, O gentle sleep!
Nature's soft nurse, how have I frightened thee,
That now no more wilt weight my eyelids down
And sleep my senses in forgetfulness?

☆ ☆ ☆

The innocent sleep,
Sleep that knits up the ravell'd sleeve of care,
The death of each day's life, sore labour's bath
Balm of hurt minds, great nature's second course,
Chief nourisher of life's feast.

फिर अँगरेजी के बहुप्रथित रूमानी कवि कीट्स के 'एनडेमियन' की पंक्तियाँ स्मृत हो उठीं—

O magic sleep! O comfortable bird,
That broodest o'er the troubled sea of the mind,
Till if hush'd and smooth.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नींद जल का स्रोत है, सघन छाया है, श्यामल मेघ है, शीतल पवन है, प्रकृति की सुकोमल परिसेविका है। यह ऐसा अथाह सागर है, जिसमें हम अपने दुःखों को डुबो देते हैं। यह व्याधिग्रस्त की माता, भोगी की प्रियतमा और आलस्य की बेटी है। श्रम की क्लांति को मिटानेवाली सुखद स्नानरूपा है, व्यथित मस्तिष्क के लिए महौषधि है। यह जादूगरनी है। यह ऐसी सुखद चिड़िया है, जो मन के विक्षुब्ध सागर पर तब तक विचरण करती है, जब तक वह शांत और सम न हो जाए। 'न वे आए, न नींद आई' की बेचैनी में गीता का श्लोकार्द्ध स्मरण हो उठा—या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।

सचमुच, इस मध्यरात्रि में तो संयमी ही जगते हैं। जब सारा संसार सोया रहता है, तब संयमी जागकर ब्रह्मचिंतन करता है, साधना की लौ जलाता है, तो क्या मेरी स्थिति भी किसी वीतराग संन्यासी की थी? 'दिल के बहलाने का गालिब यह खयाल अच्छा है।' मन यदि अपनी स्थिति किसी कोने में भी स्वीकार कर लेता, तो अच्छा था। किंतु, मेरा मन इतना बेईमान नहीं। मैं चाहकर भी अपने को प्रवंचना की गुफाओं में भटका नहीं पाता। मैं तारों की ओर निहारने लगा और मुझे अपनी ही लिखी पंक्तियाँ याद हो आईं—

ओ तारे!
तुम रात-भर जगते हो
तो संतोष है,
केवल मैंने ही धोखा नहीं खाया।

सारी रात धीरे-धीरे किसी-न-किसी प्रकार खिसक गई, फिर भी नींद नहीं आई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजनीति-समाज-संबंधी निबंध

अंत्योदय

[आरंभ, अंत्योदय का संकेल्प, प्रविधि, महत्त्व, निष्कर्ष]

अंत्योदय का शाब्दिक अर्थ है—अंत्य का उदय। अंत्य से तात्पर्य समाज के उस उपेक्षित वर्ग से है, जो समाज में हर दृष्टि से सबसे अंतिम है, सबसे नीचे है। अस्पृश्यता और गरीबी, विवशता और पिछड़ेपन से घिरी अधोगत जनता को उजाले में लाने का प्रयास अंत्योदय कार्यक्रम के अंतर्गत करने की योजना है। अंत्योदय कार्यक्रम का अर्थ है—आर्थिक दृष्टि से सबसे अंतिम आदमी का उन्नयन। इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्रत्येक गाँव के गरीब-से-गरीब परिवारों को सहायता देनी है। इस कार्यक्रम के परिणामस्वरूप निम्नतर आर्थिक जीवन जीनेवाले लोग भी गरीबी के दानव से मुक्त होकर मानवीय गरिमा के अनुरूप जी सकें, तो यही अंत्योदय की परिकल्पना की सार्थकता होगी। आजादी के बाद पैंतालीस वर्षों के गुजर जाने पर विशाल सामाजिक वर्ग ने सामाजिक व्यवस्था में प्रकाश की किरणें नहीं देखी हैं और उन्नति के धवल मार्ग पर चलना नहीं सीखा है। उसी विराट उपेक्षित समुदाय को मनुष्य कहलाने का अधिकार देने की दिशा में अंत्योदय कार्यक्रम एक साहसपूर्ण प्रयास है।

महात्मा गाँधी हमेशा समाज के उस अंतिम आदमी के उत्थान की बात करते थे, जिसमें स्वयं विकसित होने का सामर्थ्य नहीं होता। वे मानते थे कि समाज में सबसे अधिक ध्यान उन व्यक्तियों की ओर देना चाहिए, जो सबसे ज्यादा गरीब, उपेक्षित और शोषित हैं। निश्चय ही, भारत जैसे अल्पविकसित देश में कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा से भी नीचे है। आजादी की लहर और स्वातंत्र्योत्तर परिवेश के विकास-कार्यक्रमों से भी भारतीय जनसमूह के जो अंत्यज अप्रभावित रह गए हैं, उन सबको मानवीय सामाजिक धरातल पर अवस्थित करने का लक्ष्य अंत्योदय कार्यक्रम के सामने है। गरीबी की रेखा से भी नीचे जीवनयापन कर रहे लोगों का उत्थान ही इस कार्यक्रम का केंद्रीय संकल्प है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य है समाज के निर्धन व्यक्ति को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना। ऐसे सभी भारतवासियों की आर्थिक पुनःस्थापना का संकल्प निश्चय ही राष्ट्र की एक महनीय आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में उठाया गया कल्याणकारी कदम है।

अंत्योदय कार्यक्रम के अंतर्गत गरीबी के दानव के साथ संघर्षरत लोगों को आर्थिक निश्चितता की साँस दिलाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। विकास के लिए निरंतर संघर्षशील एवं आर्थिक सहायता से वंचित लोगों के लिए किया गया यह लाभकारी प्रयास मूलतः महात्मा गाँधी की ही परिकल्पना है। इसलिए गाँधी-जयंती के शुभ दिन 2 अक्टूबर, 1977 को इस योजना का शुभारंभ राजस्थान में हुआ। कालांतर में समूचे देश में अनेक स्तरों पर अंत्योदय कार्यक्रम को विस्तार मिला। इस कार्यक्रम में गरीबी की रेखा से नीचे जीनेवालों को जीवनयापन की सुविधाएँ दिलाने की अंतरिम कोशिश की जा रही है। राजस्थान में अब तक 81 हजार परिवार इस कार्यक्रम से लाभान्वित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हो चुके हैं। अंत्योदय-कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक गाँव के पाँच निर्धनतम परिवारों का चयन कर उन्हें आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में अग्रसर करने की स्पष्ट योजना है। बिहार में लगभग सत्तर हजार गाँव और टोले हैं। प्रत्येक गाँव के पाँच निर्धनतम परिवारों का उन्नयन किया जाए, तो राज्यभर में लगभग साढ़े तीन लाख परिवार लाभान्वित होंगे। इन परिवारों को ग्रामीण एवं कुटीर-उद्योग, गो-पालन, कुक्कुट-पालन, मत्स्य-पालन इत्यादि व्यवसायों को अपनाकर आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने की सलाह और सहायता दी जाएगी। निश्चय ही, अंत्योदय कार्यक्रम राष्ट्रीय विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जिस ओर बहुत पहले ही ध्यान आकृष्ट होना चाहिए था।

राष्ट्रव्यापी अंत्योदय-कार्यक्रम की अपनी बहुमुखी उपादेयता है। यह न केवल अंत्यजों में उन्नयन का विकासधर्मी प्रयास है, अपितु राष्ट्रीय प्रगति-चक्र को गतिशील बनाए रखने की सुनियोजित परिकल्पना भी है। कोई देश अपनी 50 प्रतिशत जनसंख्या के सहारे समृद्ध और आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। भारत में 50 प्रतिशत जनसंख्या का कोई योगदान राष्ट्रीय विकास में नहीं है और इसका कारण अर्धजनसंख्या की गरीबी का निम्नस्तर होना ही है। अंत्योदय कार्यक्रम के अंतर्गत वैसे सभी पददलितों-उपेक्षितों को ऐसी सुविधाएँ प्रदान करने की संकल्पना है, जिसमें गरीबों को अपना रोजगार चलाने की सुविधा प्राप्त हो। भीख माँगने की हीनावस्था से ऊपर उठकर उनकी आर्थिक स्थिति में स्वावलंबन उत्पन्न हो, यही अंत्योदय-कार्यक्रम का लक्ष्य है। निश्चय ही, यह लक्ष्य राष्ट्रीय विकास की गति को तीव्रतर करने में सहायक है और इससे देश की सामान्य अर्थव्यवस्था को बल मिलेगा।

अंत्योदय-योजना को व्यापक समर्थन और प्रशंसा मिली है, क्योंकि इससे भारत की सबसे अधिक निर्धन जनता को मनुष्य कहलाने के अवसर प्राप्त होंगे। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के अनुसार, अंत्योदय-कार्यक्रम संपूर्ण क्रांति के दूसरे चरण का महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम की महनीयता और उपादेयता का सीधा संबंध देश की निर्धनतम जनता के साथ है। गरीबी की जीवनरेखा से भी नीचे रहनेवाला लोगों का उदय राष्ट्र के स्वर्णिम भविष्य की स्पष्ट परिकल्पना है। अंत्योदय एक ठोस कार्यक्रम है, एक सुसंगठित क्रांति है, एक भविष्योन्मुख साहसपूर्ण कदम है।

प्रौढ़शिक्षा

[आरंभ, प्रौढ़शिक्षा का महत्त्व, कार्यक्रम, उपादेयता, निष्कर्ष]

प्रौढ़शिक्षा का अर्थ है प्रौढ़ों की शिक्षा। प्रौढ़शिक्षा के सामाजिक संकल्प के साथ यह प्रश्न जुड़ा हुआ है कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत किन लोगों को शिक्षित करने की आयोजन है। 'प्रौढ़' शब्द की सर्वसामान्य सीमा बालिग मताधिकार-प्राप्त लोगों से संपृक्त है। लेकिन, प्रौढ़शिक्षा के लिए स्वीकृत प्रौढ़ों की वयःसीमा 15 से 35 वर्ष की मान्य है। इस वयःसीमा के लोग भारत में 10 करोड़ से अधिक हैं, जबकि 1981 के आँकड़ों के अनुसार इस देश की कुल जनसंख्या लगभग 85 करोड़ है। प्रौढ़ों को शिक्षित करने के विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों से इस अवधारणा को बल प्राप्त होता है कि विद्या से बढ़कर कोई वैद्य नहीं है, उसकी साधना से बढ़कर कोई दवा नहीं। विद्या का महनीय अवदान उन बहुत-सारे लोगों तक नहीं पहुँच सका है,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिन्हें गरीबी के अँधेरे में विवशता की चक्की पीसनी पड़ी है। शिक्षा के मूलभूत संकल्पों और लाभों से वंचित जनता को अज्ञान और रूढ़ियों से मुक्त करने की दिशा में प्रौढ़शिक्षा का आयोजन एक साहसिक कदम है। यह राष्ट्र के अँधेरे कपाट पर रोशन हाथों की जोरदार दस्तक है। प्रौढ़शिक्षा समाज के उस मूक-समुदाय को वाणी प्रदान करने का प्रयास है, जिसकी अभिव्यक्ति के माध्यम मजबूरियों और अवनतियों के शून्य में विलीन हो गए हैं।

यह एक वास्तविकता है कि 15 से 35 वर्ष की आयु ही मनुष्य के जीवन की सर्वाधिक कार्यदक्ष अवधि है। यह वयःसीमा राष्ट्र की रीढ़ है, मनुष्य की कार्यकुशलता का स्वर्णकाल है। कृषि और उद्योग, उत्पादन और नियंत्रण—सभी क्षेत्रों में इसी वयोवर्ग के लोगों की प्रतिभा और श्रम का सहारा सर्वोपरि होता है। अतएव, इस वयोवर्ग के लोगों का अशिक्षित एवं बौद्धिक दृष्टि से अल्पविकसित रह जाना देशव्यापी अवनति का कारण बन सकता है। इसी कल्याणकारी संकल्प के साथ प्रौढ़शिक्षा के राष्ट्रस्तरीय कार्यक्रमों को स्वीकृति मिली है कि प्रौढ़शिक्षा-संबंधी कार्यक्रमों की सफलता के अनंतर देश की कुल जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अपनी अभिशप्तावस्था से उबरकर शिक्षा के ज्योतिर्लोक में विचरण कर सकेगा। प्रौढ़शिक्षा भारत जैसे विकासशील देश की एक अनिवार्यता है। प्रौढ़शिक्षा का अर्थ केवल पढ़ने-लिखने की साक्षरता और गणित का सामान्य ज्ञानभर नहीं है; अपितु जीवन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने और लोगों के दृष्टिकोण को विस्तृत करने के संदर्भ में भी प्रौढ़शिक्षा का विशिष्ट औदात्य है। जीवन के वैविध्यपूर्ण परिदृश्यों की व्यापक जानकारी के लिए शिक्षा का दीपवत् महत्त्व किसी से छिपा नहीं है। इसलिए प्रौढ़शिक्षा के लोकमंगलकारी राष्ट्रीय कार्यक्रमों का व्यापक स्वागत हुआ है।

राष्ट्रीय प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रमों का श्रीगणेश 2 अक्टूबर, 1978 से हुआ। सप्तम पंचवर्षीय योजना में प्रौढ़शिक्षा पर 200 करोड़ से भी अधिक रुपये व्यय करने का निश्चय किया गया था और पाँच वर्षों में 15 से 35 वर्ष की उम्र के लगभग दस करोड़ लोगों को शिक्षित करने का संकल्प सामने था। प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रम सामान्यतः सभी अशिक्षित प्रौढ़ों के हितार्थ आयोजित है; लेकिन महिलाओं, हरिजनों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के अशिक्षित प्रौढ़ों को प्राथमिकता दी जा रही है। इन कार्यक्रमों का लक्ष्य यही है कि भारतीय जनता की वह विशाल मध्य कड़ी देश के विकास में सम्यक सहचर बन सके, जिसे अपनी अशिक्षा के कारण अनुकूल अवसर नहीं मिल पाता। 1981 ई॰ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 63.77 प्रतिशत भाग अशिक्षित था। 1981 ई॰ में भारत में कुल 42.43 करोड़ लोग अनपढ़ थे। अतः, लोगों को अशिक्षा के अंधकार से निकालने के लिए ही प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रम चलाया गया है। इस कार्यक्रम की तीन मुख्य संकल्पनाएँ हैं—साक्षरता, कार्यदक्षता और नागरिक जागृति। प्रौढ़शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य अनपढ़ प्रौढ़ों को सामान्य लेखन और पठन-पाठन की योग्यता प्रदान करना है। साथ ही, उनकी कार्यकुशलता में गतिशीलता की चेतना जगाने और उन्हें अपने सामाजिक अधिकारों-कर्तव्यों की जानकारी देने का लक्ष्य भी प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रम का अंग है। प्रौढ़शिक्षा के कार्यक्रमों को न केवल सरकारी प्रोत्साहन प्राप्त है, अपितु अनेक स्वैच्छिक समाजसेवी संस्थाएँ भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। विश्वविद्यालयों के अंतर्गत राष्ट्रीय सेवा-योजना ने भी इस कार्यक्रम को व्यापक विस्तार दिया है।

राष्ट्रव्यापी प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रम की उपादेयता को एक व्यापक फलक पर स्वीकार किया गया है। शिक्षित होने के अनंतर सभी प्रौढ़ देशवासी कृषि, उद्योग, उत्पादन, बाजार इत्यादि की नई तकनीकी जानकारी से परिचित हो सकेंगे। अशिक्षा के कारण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिन अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक कुरीतियों ने भारतीय जनता के विकास-मार्ग को अवरुद्ध कर रखा है, उनका निराकरण प्रौढ़शिक्षा द्वारा ही संभव है। नवीन मानवीय मूल्यों और राष्ट्र की नई विचारभूमि से परिचय भी शिक्षा के बिना संभव नहीं। इसी कारण, प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रम के परिकल्पकों ने इस आवश्यकता का अनुभव किया कि प्रौढ़ नर-नारियों को अक्षर-ज्ञान कराया जाए, समाजोन्मुख जीवन-दृष्टि दी जाए। यह स्थिति अपने-आप में अत्यंत दयनीय कही जा सकती है कि ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विकासशील विश्व में भारतीय जनता का बहुत-बड़ा भाग अज्ञानता के अंधकार में निवास करे। 15 से 35 वर्ष की वयःसीमा के जो लोग अपनी संपूर्ण शक्ति केवल दोनों वक्त की रोटी जुटाने में व्यय कर रहे हैं, उनकी शक्ति और प्रतिभा को ज्ञान के प्रकाश से विकास की दिशा में मोड़ना ही प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रम का लक्ष्य है।

भारत जैसे विकासशील देश की सबसे बड़ी समस्या जनसंख्या का विकट दबाव है। हमारे यहाँ प्रतिवर्ष जनसंख्या की दृष्टि से एक नया आस्ट्रेलिया महादेश बन जाता है। जनसंख्या के इस विकटतर दबाव में प्रौढ़ों का अज्ञानांधकार देश की विकास-गति मंद करने का एक उल्लेखनीय कारण है। इस अंधकार के समूल विनाश के लिए ही प्रौढ़शिक्षा का कार्यक्रम स्वीकृत किया गया है। इस संकल्पना का उद्देश्य सामाजिक वातावरण की कार्यक्षमता को बढ़ाना और अशिक्षितों को शिक्षा की ज्योति देना है। समूचे देश के सामने प्रौढ़शिक्षा एक वृहत्तर चुनौती है। इस चुनौती का सामना दृढ़विश्वास और राष्ट्रहितैषी संकल्प के साथ ही किया जा सकता है। तभी प्रौढ़शिक्षा का बहुकल्याणकारी लक्ष्य अपने प्रकर्ष का स्पर्श कर सकेगा।

आरक्षण

[आरंभ, स्वरूप, समस्याएँ, अनुपयोगिता, निष्कर्ष]

आरक्षण ! पैंतालीस वर्षों की आजादी के बाद उद्‌भूत विलक्षण राजनीतिक मायावितान ! यह मायावितान समसामयिक राजनीति और सामाजिक संकट का अवदान है। आरक्षण जातीय वर्गभेद की खाई को बृहत्तर बनाकर सिंहासन पर अखंड आसीन होने की साजिश का परिणाम है। यह एक ऐसा दुष्चक्र है, जो किसी भी गतिमान देश—विकसशील समाज को पंगु बना देने के लिए पर्याप्त है। कार्लाइल ने एक बार कहा था कि यदि तुम किसी समुदाय को निष्क्रिय बना देना चाहते हो, तो उसे अतिरिक्त सुविधाएँ दे दो, सुविधाओं के व्यामोह में समुदाय कर्मपथ से विरत हो जाएगा। आरक्षण इसी निष्क्रियता का आह्वान है, राष्ट्रीय चरित्र को धूमिल करने का सुनियोजित षड्‌यंत्र है, सामाजिक विकास का चक्का जाम करनेवाला कदम है।

इतिहास साक्षी है कि धर्म और राजनीति के महंथों ने समाज का अकल्याण ही अधिक किया है। उन्होंने सदा कोई-न-कोई हथकंडा अपनाकर निरीह जनता को गुमराह किया है, लोगों को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा किया है। आरक्षण एक ऐसा ही षड्‌यंत्रपूर्ण आयोजन है। आरक्षण का सर्वप्रचलित अर्थ है विशेष जनसमुदाय के लिए विभिन्न सरकारी सेवाओं तथा प्रविष्टियों में स्थान सुरक्षित होना। भारतीय संविधान में एतद्विषयक 24 प्रतिशत आरक्षण अनुसूचित जातियों (हरिजनों) एवं अनुसूचित जानजातियों (आदिवासियों) के लिए पहले से ही स्वीकृत है। यह स्वाभाविक ही था

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि सदियों से प्रताड़ित हरिजनों और गिरिवनवासियों को कुछ अतिरिक्त सुविधाएँ दी जाएँ। इसी कारण जब उत्तम परीक्षाफलों के अभाव में भी हरिजनों और आदिवासियों को सामाजिक न्याय के लिए आरक्षण दिया गया, तो कहीं विस्फोट नहीं हुआ। लेकिन, जब बत्तीस वर्षों की स्वतंत्रता के बाद 1978 ई० में बिहार की जनतापार्टी-सरकार ने पिछड़ी जातियों के लिए 26 प्रतिशत आरक्षण की प्रस्तावना की तो व्यापक प्रतिरोध उत्पन्न हो गया। यह आक्रोश स्वाभाविक था। राज्यव्यापी आंदोलन हुए। 23 बसें जला दी गईं, लगभग साढ़े तीन सौ बसें क्षतिग्रस्त हुईं, अनेक सरकारी संस्थानों-शिक्षालयों में अग्निकांड उपस्थित हुआ, कई स्थानों पर रेल-लाइनें उखाड़ी गईं और व्यापक राष्ट्रीय क्षति हुई। इस समूचे विनाशचक्र का उत्तरदायी था आरक्षण।

आरक्षण से उत्पन्न एक नई समस्या मंडल आयोग के प्रतिवेदन के आधार पर पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी सेवाओं में 27% प्रतिशत आरक्षण देने की व्यवस्था है। पूर्वप्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के शासनकाल में मंडल आयोग की अनुशंसा को कार्यान्वित करने के निश्चय के फलस्वरूप राष्ट्रव्यापी स्तर पर जन आन्दोलन प्रारंभ हो गया। चतुर्दिक यह स्वर गुंजायमान होने लगा कि जातिगत आरक्षण की जगह आर्थिक आधार पर आरक्षण व्यवस्था हो। सरकार के मंडल आयोग संबंधी अनुशंसा को कार्यान्वित नहीं होने देने के संदर्भ में मामला न्यायालय में पहुँचा। यथार्थवादी दृष्टिकोण यही है कि सरकार आर्थिक पक्ष को भी आरक्षण का आधार बनाए। यही जनहित और राष्ट्रहित में है।

आरक्षण की समस्या का सीधा संबंध उन बहुसंख्य नवयुवकों के साथ था, जिन्हें अपना भविष्य अंधकारमय दीखने लगा था। प्रतिभा और परिश्रम के बावजूद इन नवयुवकों को महज इस कारण अनुकूल अवसरों से वंचित करने की साजिश आरक्षण की योजना ने उपस्थित कर दी कि ये नौजवान आरक्षण-प्राप्त जातियों में उत्पन्न नहीं हुए थे। इस ज्वलंत समस्या का एक समाधान तत्कालीन केंद्रीय विधिमंत्री शांतिभूषण ने उपस्थित किया कि पिछड़ी जातियों के लिए 26 प्रतिशत आरक्षण तो रहेगा, लेकिन कुछ शर्तों के साथ। 3 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए, 3 प्रतिशत स्थान आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों के लिए और 20 प्रतिशत स्थान आयकर न देनेवाले पिछड़ी जाति के लोगों के लिए आरक्षित करने का सुझाव विधिमंत्री ने दिया। निश्चय ही, यह सुझाव भी बहुत समीचीन नहीं है, क्योंकि इस भ्रष्टाचारी और षड्यंत्रपूर्ण देश में आय-कर से बचने के अनेक रास्ते हैं। इन रास्तों पर चलकर कुपात्रों को अवसर देने की योजना ही आरक्षण का केंद्रीय लक्ष्य है।

बिहार की जनसंख्या के 30 प्रतिशत लोग निर्धनता-रेखा के नीचे ही हैं। इन गरीबों की विकास-यात्रा की ओर ध्यान न देकर जिस राज्य के राजनीतिज्ञ जातीय भावनाओं में मशगूल हैं, उस राज्य का विकास भला कैसे संभव है? जिस समाज में प्रतिभा की जगह जाति की पूजा होती है, वह समाज निरंतर कुंठा तथा निराशा की आग में जलता रहेगा। आरक्षण जैसी अंध साजिशें कुर्सी से चिपके रहने में कुछ लोगों की सहायता तो कर सकती है, किंतु इससे सामाजिक उन्नयन की आशा नहीं की जा सकती। होना तो यह चाहिए कि गरीबों को पढ़ने-लिखने एवं प्रगति करने के यथासंभव अवसर दिए जाएँ और पद केवल योग्यतानुसार। लेकिन, आरक्षण के जरिए तो हम मेधाशून्य व्यक्तियों को शिक्षक, चिकित्सक, अभियंता आदि बनाकर देश का सत्यानाश करने जा रहे हैं। इस स्थिति की भलीभाँति परीक्षा कर ही जातिवाद का जहर फैलानेवाले आरक्षण की युक्तियुक्तता पर विचार करने की आवश्यकता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चुनाव

[आरंभ, आयुसीमा, प्रकार, वर्तमान स्थिति, उपसंहार]

चिड़िया चुनती है दानों को
पर यह चुनते नादानों को।

—रमई काका

चुनाव गणतंत्रीय शासनप्रणाली की एक प्रमुख विशेषता है। जिस देश में तानाशाही शासन होता है, उस देश में अपना मत देने का अधिकार ही नहीं होता, तानाशाह की इच्छा ही सब कुछ होती है, उसमें जनता के विचार का कोई महत्त्व नहीं होता।

अब्राहम लिंकन ने गणतंत्र की परिभाषा इस प्रकार की है—गणतंत्र जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का राज्य है। अतः, गणतंत्र में यह आवश्यक है कि देश के शासन का संचालन वहाँ की जनता की इच्छा पर हो। इसके लिए निर्वाचन की पद्धति अपनाई जाती है। आज विधानसभा हो या लोकसभा, सभी के लिए प्रत्याशियों का चुनाव एकमात्र मार्ग बन गया है।

वर्तमान काल में सभी गणतांत्रिक राज्यों ने वयस्क-मताधिकार के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है। इस सिद्धांत के अनुसार, देश के सभी वयस्क—चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, धनी हों या निर्धन—मत देने के अधिकारी होते हैं। हाँ, संसार में आज भी कुछ देश ऐसे हैं, जहाँ स्त्रियों को मत देने का अधिकार नहीं है। ऐसे देशों में स्विट्जरलैंड तथा जापान हैं।

हर देश ने मताधिकार-योग्य वयस्कता की एक ही उम्र नहीं मानी है। अमेरिका, इटली, फ्रांस और भारत में मताधिकार की उम्र 18 वर्ष है; रूस, इंगलैंड और टर्की में 18 वर्ष; स्विट्जरलैंड और जर्मनी में 20 वर्ष; नार्वे में 23 वर्ष; फिनलैंड में 24 वर्ष तथा हालैंड, डेनमार्क, स्पेन और जापान में 26 वर्ष है। सभी देशों में पागलों और भीषण अपराधियों को वोट देने का अधिकार नहीं होता।

मतदान मुख्यतः दो प्रकार का है—1. प्रत्यक्ष और 2. अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष मतदान में मतदाता स्वयं मत देकर अपना प्रतिनिधि चुनता है। विधानसभाओं और लोकसभा के प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान-पद्धति से होता है। अप्रत्यक्ष मतदान में सर्वप्रथम मतदाता अपने प्रतिनिधियों को चुनता है। वे चुने हुए प्रतिनिधि पुनः अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष मतदान में दो बार चुनाव होता है। भारत में राष्ट्रपति का चुनाव इसी अप्रत्यक्ष मतदान-पद्धति से होता है।

हमारा देश 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ। 26 जनवरी, 1950 को यहाँ 'संपूर्णप्रभुत्वसंपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य' की घोषणा की गई। स्वतंत्रता के पश्चात् पहला आम चुनाव 1952 ई० में हुआ। प्रत्येक राज्य में लगभग 75 हजार की जनसंख्या पर विधानसभाओं के लिए सदस्य चुने गए तथा 5 लाख की आबादी पर संसद के सदस्य चुने गए। विधानसभाओं में जिस दल का बहुमत हुआ, उसने अपने नेता, अर्थात् मुख्यमंत्री का चुनाव किया। इसी तरह संसद में जिस दल का बहुमत हुआ, उसने अपने दल का प्रधानमंत्री चुना।

चुनाव के ऊपर मंत्रिपद निर्भर करता है। मंत्री होने के प्रलोभन पर ही दलों का संतुलन निर्भर करता है। यदि विधानसभा या लोकसभा के सदस्य नहीं हुए, तो पैरवी में बल नहीं रहता, पैसे छींटने के हथकंडे नहीं चल पाते हैं, प्रभाव की चाँदनी मैली पड़ जाती है, कोठी छिनती है, कार छिनती है। इसलिए चुनाव-दंगल में बाजी मार लेने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के लिए प्रत्याशी सारे तिकड़म लगाते हैं, सभी प्रकार की वैध-अवैध पद्धतियों का सहारा लेते हैं। चुनाव की स्थिति का वर्णन हास्यरस के कवि बरसानेलालजी ने इस प्रकार किया है—

नेता पोपटलालजी गए इलेक्शन हार,
वापस थी करनी पड़ी वह सरकारी कार,
वह सरकारी कार, अकड़कर जिसमें बैठे
साले और सालियाँ रहते जिसपर ऐंठे
कहैं बरसानेलाल, करें कोठी भी खाली,
घर में बैठे भजन करे लाला औ' लाली।

यदि हम अपने देश के चुनाव पर ध्यान दें, तो इस पद्धति के प्रति घृणा हो जाती है। जिनके पास पैसे और लाठियाँ हैं, उनसे इस चुनाव युद्ध में जीतना बड़ा कठिन हो जाता है। चुनाव के समय वोट हथियाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे काम में लाए जाते हैं। उम्मीदवार मतदाताओं की भावनाओं को उभारकर वोट ऐंठना चाहते हैं। जब चुनाव आता है, तब बड़-बड़े शेर भींगी बिल्ली बन जाते हैं, जिनके दर्शन दुर्लभ रहते हैं, वे भी द्वार-द्वार डोलते फिरते हैं, जिनकी बातों में कर्कशता भरी होती है, उन्हीं के मुख से मधु टपकने लगता है।

यदि इससे भी काम न चला, तो जोर-जुल्म से मतदाताओं को मतदान-केंद्र में प्रवेश न करने देकर तथा पीठासीन-पदाधिकारियों को डरा-धमकाकर जबरदस्ती मतदान-पत्रों पर मुहर मारकर मतदान-पेटिका में डाल देते हैं। आज इसी तरह के विजेता शासनसूत्र अपने हाथ में लेकर देश में अन्याय का नग्न तांडव कर रहे हैं। उर्दू के महाकवि इकबाल ने लिखा है—

जमहूरियत वह तर्जे-हुकूमत है कि जिसमें
बंदों को गिना करते हैं, तौला नहीं करते।

प्रजातंत्र में हर मनुष्य का मोल बराबर है—चाहे वह पंडित हो या मूर्ख, विचारवान हो या विचारशून्य, पैसे पर बिकनेवाला हो या पूरा ईमानदार। इसमें केवल माथा गिन लिया जाता है। किंतु, आज यह भी स्थिति नहीं रह गई है। प्रत्यक्ष माथा गिनने की भी जरूरत समाप्त हो रही है। अब तो केवल कागज पर ठप्पा गिनने की स्थिति होती जा रही है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, ''चुनाव जनता को राजनीतिक शिक्षा देने का विश्वविद्यालय है।'' हरिभाऊ उपाध्याय ने कभी कहा था—''चुनाव युद्ध नहीं, तीर्थ है, पर्व है—यह पानीपत नहीं, कुरुक्षेत्र नहीं, यह प्रयाग है, त्रिवेणी है, कुंभ है।'' बीच में चुनाव में जो गिरावट आई हो, किंतु अब हम उम्मीद करते हैं कि अब चुनाव पंडित नेहरू एवं उपाध्यायजी के कथनों को सार्थक करेगा।

बेकारी की समस्या

[आरंभ, स्थिति, कारण, निदान, उपसंहार]

जिन आँखों की अटारियों पर खुशियों की ज्योति छिटकती रहती थी, आखिर वे ही तैलहीन दीए की तरह बुझी-बुझी क्यों हैं ? जिन मुखाकृतियों पर प्रसन्नता की पूर्णिमा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छाई रहती थी, आखिर उन्हीं पर अमावस्या की काली रजनी क्यों घिर आई है ? जिन कमनीय कपोलों से सेब की ललाई टपकती रहती थी, उन्हीं पर विवर्णता की स्याह रेखाएँ क्यों उभर आई हैं ? जिन ओठों पर कहकहों के पटाखे अहरह छूटते रहते थे, वे ही तारहीन विपंची की तरह विषण्ण मौन क्यों हैं ? सारे प्रश्नों का एक ही उत्तर मिलेगा—बेकारी।

बेकारी की बीमारी ने कितने बेकारों के जीवनरस को चूसकर नारंगी के छिलके की तरह दरकिनार कर दिया है। उनके सपनों का शीशमहल भहरा चुका है, उनके अरमानों की होली जल चुकी है। अभी जवानी पूरी तरह खिल भी नहीं पाई थी कि बुढ़ापे ने आकर दबोच दिया। उनकी आँखों के सामने अंधकार का लहराता हुआ समुंदर है। व्यंग्यबाणों से छिदा-भिदा शरीर चलता-फिरता शवमात्र रह गया है। उनकी जीवन-सारंगी के अधिकांश तार टूट चुके हैं, उससे कोई भी सुरीला सरगम नहीं निकल रहा है।

लंदन-विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पीएच० डी० की उपाधि पाए व्यक्ति ने नौकरी न मिलने के कारण बाप के ताने से परेशान होकर जहर खा लिया, एक इंजीनियर ने कुतुबमीनार से कूदकर प्राण त्याग दिए, एक प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण स्नातक ने रेल की पटरियों के नीचे अपनी जान दे दी, एक बेरोजगार टेकनिशियन ने गले में फंदा लगाकर आत्महत्या कर ली। कितने बेकार नवयुवकों को कहते सुना कि अब जहाज से कूदकर गंगामैया की शरण में जान देने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया है। दिन-रात परिवार और समाज के व्यंग्यबाणों से घायल बेकारी की जिंदगी नरक की यातना बन जाती है।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार ही कब तक 1 करोड़ 40 लाख से भी अधिक व्यक्ति बेकारी के शिकंजे में जकड़े रहेंगे ? दूसरे स्रोत के आँकड़ों के अनुसार बेकारी की संख्या एक करोड़ से पाँच करोड़ तक तथा अन्य आँकड़ों के अनुसार ऐसे बेकारों की संख्या एक करोड़ से एक करोड़ सत्तर लाख तक जाती है। यदि यही स्थिति रही, तो इस देश में बेकारों की इतनी विशाल वाहिनी तैयार हो जाएगी कि उसका कोई ठिकाना नहीं। बेकारों में शिक्षित और अशिक्षित बेकार—दोनों तरह के लोग हैं। अशिक्षित बेकारों में ही गाँव के अधिकांश लोग ऐसे हैं, जिन्हें सालभर काम नहीं मिलता। रोपनी-कटनी के समय तो उन्हें काम मिलता है, किंतु वर्ष के अधिकांश में ये यों ही बैठे रहते हैं। जिस जमीन पर एक व्यक्ति को लगा रहना चाहिए, उसपर पाँच-पाँच, सात-सात व्यक्ति इसलिए फँसे हुए हैं कि उन्हें दूसरा रोजगार नहीं मिलता। इसे हम अप्रत्यक्ष बेकारी भी कह सकते हैं। यदि इन सबको सम्मिलित करके ठीक से हिसाब जोड़ा जाए, तो अर्थशास्त्रियों के अनुसार इस 85 करोड़ की आबादीवाले देश में 17 करोड़, यानी पचमांश व्यक्ति बेरोजगार है। कामदिलाऊ दफ्तरों के खाते से पता चला है कि अभी इस देश में 53118 इंजीनियर, 7 लाख 75 हजार मैट्रिकुलेट तथा 1 लाख 86 हजार ग्रेजुएट सड़कों पर 'हाय नौकरी, हाय नौकरी' करते हुए धूल फाँक रहे हैं।

बेकारी-निवारण के लिए इसके कारणों पर विचार करना बहुत जरूरी है। हमारे देश में जनसंख्या का भीषण विस्फोट हो रहा है। परिवार-नियोजन के कार्य असफल सिद्ध हो रहे हैं। 1967 ई० में भारतवर्ष की जनसंख्या 50 करोड़ थी। 1981 ई० में 70 करोड़ से भी अधिक हो गई थी। 1991 ई० 85 करोड़ के लगभग है। प्रतिवर्ष हमारे देश में लगभग 1 करोड़ 20 लाख मेहमान आ रहे हैं। यदि जन्म की यही त्वरा रही, तो 2000 ई० में हमारे देश की आबादी एक अरब के करीब हो जाएगी। जनसंख्या-विस्तार के अनुपात में उत्पादन में वृद्धि संभव नहीं है और उत्पादन के क्षेत्रों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के अभाव के कारण बेकारी का बढ़ना स्वाभाविक है। कुछ लोग जनसंख्या-वृद्धि में बेकारी की समस्या को जोड़ना आवश्यक नहीं समझते। उनका सोचना तभी सार्थक होता, जब बिना पेट का बच्चा पैदा होता। एक नए कवि ने इसपर ठीक ही व्यंग्य किया है—

बेकारी की कठिन समस्या
का हल होगा सच्चा।
घर-घर में यदि जन्म ले सके
बिना पेट का बच्चा॥

हमारे देश में पहले मनुष्य की औसत आयु सत्ताईस साल थी, किंतु अब यह बढ़कर बावन साल हो गई हैं। आयु-प्रत्याशा (life expectancy) बढ़ने के कारण हैं—हैजा, चेचक, मलेरिया तथा प्लेग जैसी अनेक नरसंहारक बीमारियों का उन्मूलन। इसलिए आबादी का उमड़ता पारावार बेकारी की अभिवृद्धि का जबरदस्त कारण है।

मशीनों के आविष्कार तथा कल-कारखानों के कारण उद्योग-धंधे चौपट हो गए। मशीन के एक हाथ ने सैकड़ों हाथों का काम छीन लिया तथा अनेक लोगों को बेरोजगार कर भूखों मरने के लिए गलियों में फेंक दिया। गाँधीजी ने इसीलिए मशीनीकरण का विरोध किया था। उद्योग-धंधे में स्वचालन (automation) तथा श्रम बचानेवाली पद्धतियों (labour-saving devices) से बहुत-सारे लोग बेरोजगार हो गए हैं। एक कंप्यूटर मशीन पचासों क्लर्कों को, श्रमिकों को बेकार कर सकती है। इधर अंकेक्षण के लिए हर सरकारी कार्यालय में कंप्यूटर का उपयोग होनेवाला है। कितने बेचारों के मुँह की रोटियाँ छिन जाएँगी।

बेकारी का एक प्रमुख कारण है आज की दूषित शिक्षा-पद्धति। यह मैकॉले की शिक्षा-पद्धति अँगरेजी-शासन की फाइलें चलनेवाले क्लर्कों का निर्माण कर पाती है। पंडित नेहरू जब कहते थे कि 'हमें बी० ए० नहीं, वैज्ञानिक और टेकनिकल विशेषज्ञ चाहिए', तब इसका एक ही अर्थ होता था कि हमारी शिक्षण-पद्धति काहिल, उपयोगी धंधों को चलाने के ज्ञान से रहित व्यक्तियों को तैयार करती है। अतः, जब तक शिक्षा व्यापाराभिमुखी (business-oriented) नहीं होगी, तब तक बेकारों की सेना बढ़ती ही जाएगी।

बेकारी का कारण समग्र राष्ट्रीय साधनों का अनुपयोग भी है। रोजगार के सारे स्रोतों का उपयोग करना जरूरी है। बंजर, रेगिस्तान, परती तथा पहाड़ी भूमि को काम में न लाने के कारण भी बेकारी का समाधान नहीं हो पा रहा है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति का एक और भयानक दोष है कि कोई भी पढ़ा-लिखा (डिग्रीधारी) व्यक्ति अब कोई हाथ-पैर हिलानेवाला स्वतंत्र रोजगार करना नहीं चाहता। उसे दो-तीन सौ रुपये महीने पर क्लर्क बनना अच्छा लगता है, लेकिन अपनी जमीन जोतना, छोटे-छोटे उद्योग-धंधे चलाना, व्यापार-वाणिज्य करना अच्छा नहीं लगता। इस किताबी शिक्षा ने श्रम के प्रति उपेक्षा और अवज्ञा का भाव भर दिया है। श्रमनियोजित कार्यों को प्रतिष्ठा-विनाशक समझा जा रहा है। ब्राह्मण होकर चमड़े का रोजगार करे, क्षत्रिय होकर होटल चलाए—यह अपमानजनक माना जाता है। जाति-पाँति की रूढ़िवादी धारणा, पुराने धार्मिक अंधविश्वास तथा शिक्षा से उपजी अहम्मन्यता ने श्रम का ऐसा अवमूल्यन कर दिया है कि बेकारों की पलटन तैयार होती ही जा रही है। अतः, सचमुच ऐसी शिक्षा का नाश होना चाहिए, जो केवल नौकरी के लिए बनी है। राष्ट्रकवि गुप्तजी ने ठीक ही कहा है—

शिक्षे! तुम्हारा नाश हो,
जो नौकरी हित ही बनी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बेकारी का यह विषवृक्ष छतनार न होता जाए, इसके लिए इसके कारणों की जड़ पर ही कुठाराघात करना होगा। भूतपूर्व राष्ट्रपति वराहगिरि बेंकटगिरि ने बेकारी का समाधान सुझानेवाली पुस्तक 'जॉब फॉर आवर मिलियन्स' (*Job For our Millions*) में बेकारी की बीमारी की रामबाण औषधि के रूप में एक आदर्श वाक्य दिया है—'हर घर एक कुटीर-उद्योग तथा जमीन की हर एकड़ एक चरागाह' (Every house—a cottage industry, every acre of land—a pasture)। इससे अशिक्षित वर्ग की पूरी तथा आधी, दृश्य तथा अदृश्य बेकारी का बहुत बड़ा समाधान हो सकता है, साथ-ही-साथ यह शिक्षित लोगों के लिए बहुत बड़ा आश्रय-स्थल सिद्ध हो सकता है। वस्त्र-निर्माण, मधुमक्खीपालन, रेशम के कीट का पालन, मछलीपालन, पशुपालन, काठ के सामान तथा खिलौने आदि के निर्माण की ओर प्रेरित होने पर युवकों के लिए कार्य के अपार झरोखे खुल जाते हैं। खेत के छोटे-छोटे टुकड़ों की चकबंदी-हदबंदी से बची जमीन, परती तथा पहाड़ी जमीन पर सहयोगी सघन कृषि के द्वारा छोटे-छोटे किसानों को भी वर्षभर काम मिल सकता है।

केवल बी॰ ए॰ और एम॰ ए॰ बनानेवाली शिक्षा को सीमित कर व्यवसाय पर आधृत औद्योगिक प्राविधिक शिक्षा देनी होगी। श्रम को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखना होगा। युवकों में अपने दाहिने हाथ की शक्ति पर विश्वास का यदि बल भरा जाए, तो फिर स्वतः नियुक्ति की लाखों संभावनाएँ नजर आ सकती हैं। आत्मनिर्भर, श्रम को भगवान समझनेवाले, नई प्रेरणाओं से ओतप्रोत युवकदल जब तक काम में नहीं भिड़ेंगे, तब तक बेकारी की यह सुरसा अपना विकराल मुँह फैलाती ही जाएगी। बेकारों के लिए बीमे की बात कही जाती है, कुछ बेकारी-भत्ता दिए जाने की बात कही जाती है, किंतु ओस चाटने से कहीं प्यास बुझती है? भ्रमणशील एक्सचेंजों की बात कही जाती है कि बेकारों का पंजीयन करें, बेकारों की गुणात्मक और संख्यात्मक क्षमता का पता लगाएँ और उसके आधार पर योजनाएँ बनाकर बेकारी के दानव को मार भगाने की चेष्टा की जाए। यह आवश्यक है; किंतु इससे भी अधिक आवश्यक है आय और उसके साधनों का समीकरण और विकास, ताकि उनसे नए लोगों को काम और रोजगार मिल सके।

लॉटरी

[आरंभ, हानि, उपसंहार]

"जी, केवल एक रुपया लगाकर आप अपना भाग्य आजमाइए। कौन कहता है किं आपकी किस्मत का दरवाजा कभी खुल नहीं सकता, कौन कहता है कि आप कंगाल-के-कंगाल ही बने रहेंगे, कौन कहता है कि पारे की तरह चंचल लक्ष्मी आपकी बाँहों में मुसकराती हुई समा नहीं जाएगी? बस, चौबीस घंटे के अंदर आपकी तकदीर का रोशनदान खुलने ही वाला है—संपत्ति के सूरज की सुनहली रश्मियाँ आपके दरिद्र जीवन के अँधियारे को उजागर करने ही वाली हैं। एक रुपया तो आप पान खाकर थूक देते हैं, बीड़ी-सिगरेट के धुएँ उड़ाकर फेंक डालते हैं। वहीं एक रुपया आपको रातोंरात लखपती बना डालेगा।"—इस प्रकार के मोहक वाक्यों के चारे पर किसी का भी मन मछली की तरह फँस जाता है, इसके झाँसे में किसी का भी मन पंछी की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तरह उलझ जाता है, इसकी छलनाओं के ख़ंदक में किसी का मन-मतंग गिरकर कैदी बन जाता है।

देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ऐसे लोगों का है, जिनकी आय बहुत कम है। वे अपनी गाढ़ी कमाई के रुपयों से अधिक-से-अधिक टिकट इसलिए खरीदते हैं कि उनके अमीर बनने की संभावना अधिक-से-अधिक हो जाए। वे ऐश्वर्यशाली बनने की अपनी इंद्रधनुषी कल्पना के कनकलोक में विचरण करने लगते हैं। वे तरह-तरह की योजनाओं की कल्पना से अपने अंतःकरण का आँगन सजाते रहते हैं। कभी उनके मन में भव्य वातानुकूलित भवन निर्मित करने का विचार उठता है, तो कभी सुखद कीमती कार खरीदने का खयाल पैदा होता है। कभी चारों धाम की तीर्थयात्रा कर परलोक सँवारने का भाव जगता है, तो कभी बेटे को बिलायत भेजकर उच्च शिक्षा दिलाने का सपना मचलता है। उनका मन बाजरे के लहलहाते खेतों की तरह दिवास्वप्नों की बयार में झूमता रहता है, किंतु लॉटरी निकलने के दिन दुर्भाग्यवश यदि उनका नंबर नहीं निकला, तो उनकी गुलाबी कल्पनाओं का काँचमहल चकनाचूर हो जाता है, उनकी आशाओं का ताशमहल बिखर जाता है। ऐसे बेचारों की स्थिति एंटन चेखव के 'लॉटरी का टिकट' कहानी के नायक-नायिका से भी बदतर हो जाती है। बेचारे की हालत कहानी के उस पात्र की तरह होती है, जिसने अपनी जायदाद बेचकर शराब की दूकान खोली थी। उसकी आय से वह सपनों की दुनिया में सैर कर ही रहा था कि एक बैल आया और उसने शराब के सारे घड़े फोड़कर उसके ख्वाब के शीशमहल को मटियामेट कर दिया।

प्रलंब प्राप्त्याशा के पश्चात् आई हुई यह हताशा उसकी जीवंतता का तंतुजाल छिन्न-भिन्न कर देती है। अपार धनलाभ के मायामृग से प्रवंचित व्यक्ति व्यसन, मानसिक तनाव और अनिद्रा का शिकार बन जाता है। उसकी स्थिति कबीर की नायिका-सी हो जाती है—'दिन नहिं चैन, रात नहिं निंदिया, तलफ-तलफकर भोर किया।'

यह लॉटरी मनुष्य को भाग्यवादी बना डालती है, उसे अंधविश्वास का आखेट बना डालती है। टिकट खरीदते ही वह हस्तरेखाविशारदों एवं ज्योतिषियों के पास दौड़ने लगता है। लोलुप ज्योतिषी ऐसे आतुर असामी को पाकर काफी धन ऐंठते हैं। उसके 'लकी नंबर' और 'लकी दिन' की भविष्यवाणी कर अपनी मुट्ठी गरम करते हैं। एक खाई से निकला हुआ व्यक्ति दूसरी खाई में गिर जाता है।

यह लॉटरी राज्य-सरकारों के सुसाधनसंपन्न शोषण के तरकस से निकला हुआ विषैला बाण है। यह शकुनि का वह पासा है, जिसपर बड़े-बड़े धर्मराज युधिष्ठिर भी फँस जाते हैं और उनकी द्रौपदी का चीरहरण तक हो जाता है। यह वह मोहिनी है, जिसके रूपाकर्षण में कितने बेचारों को नारद की तरह बंदरमुँहा बनकर उपहास का गरल पीना पड़ता है।

लॉटरी के समर्थकों का कहना है कि इससे लोगों द्वारा नगण्य रुपये लगाए जाते हैं, किंतु इनसे राज्य-सरकारें बड़े ही उपयोगी सार्वजनिक कार्य करती हैं।

ठीक ही है कि जिस देश में घूसखोरी, चोरबाजारी और तस्कर-व्यापार से कमाए गए दूषित पैसों से मंदिर, धर्मशाला या पनशाला बनवाना उचित और प्रशंसनीय है, वहाँ लॉटरी का टिकट बेचकर विकासकार्य में लगाना अनुचित कैसे माना जाएगा? उत्तरप्रदेश ने स्वास्थ्य-सेवा, दिल्ली-सरकार ने कम मूल्य के मकान बनवाने, केरल ने सार्वजनिक स्वास्थ्य, तमिलनाडु ने पाठशाला-निर्माण के नाम पर लॉटरी चालू की है, किंतु इससे आई हुई आय राज्य-सरकारों की सामान्य तृषा की शांति में खर्च होती जा रही है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देश के कुछ नेताओं एवं समाजशास्त्रियों ने इसका विरोध किया है, इसकी वैधता को चुनौती दी है, किंतु उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर ही रह जाती है। यह घोर आश्चर्य है कि जहाँ जूआबाजी नाजायज है, वहाँ लॉटरी जायज। लॉटरी ऐसी जूआबाजी है, जिसे किसी माँद में छिपकर खेलने की जरूरत नहीं, इस जूएबाजी के ऊपर तो सरकार की छत्रच्छाया है। लॉटरी वह जहर की शीशी है, जिसके ऊपर मधुर पेय का लेबुल चिपका है। इसके पान के परिणाम में अनभिज्ञ व्यक्ति इसके फेर में पड़कर अपना सत्यानाश कर डालता है।

राज्य लॉटरी वह पौराणिक दानवी है, जो अपनी तीक्ष्ण दंष्ट्राओं से जीवित मनुष्यों का जीवनरक्त अच्छी तरह चूसने में समर्थ है। यह रावण का दूत है, जो निरीह मुनियों से गर्म शोणित का कर उगाहता है। यह वह पारपत्र है, जिसके द्वारा सरकार निर्लज्ज पापाचार के लोक में रमण का विशेषाधिकार प्राप्त कर लेती है। यह वह सड़ाँध है, जो हमारे समाज में चारों ओर दुर्गंध के कीटाणु फैलती है। यह नैतिकता की जड़ काटनेवाली कुदाली है, यह भाग्यवादिता की नींव मजबूत करनेवाली रसायनचूर्णिका है। यही कारण है कि अलास्का ने 1899 ई० में, हवाई द्वीप ने 1900 ई० में, स्वीडेन ने 1841 ई० में, बेल्जियम ने 1830 ई० में तथा स्विट्जरलैंड ने 1865 ई० में इसे बंद कर दिया। दुराचार का जो विषघट शताब्दियों पहले दफना दिया गया था, उसे ही हमारे देश ने फिर बाहर निकाला है—समता का समुद्घोष करनेवाला हमारा देश ही ऐसा कर सकता है।

हम तो चाहते हैं कि हमारी राज्य-सरकारें दीन-हीन जनता को अपार धनलाभ के मृगमोह में फँसाकर उसके दुर्बल आर्थिक ढाँचे को और झटका न दें; उन्हें सब्जबाग दिखाकर अपना उल्लू सीधा न करें, उन्हें भाग्यवाद, निराशा और असंतोष का विषैला उपहार न दें, दरिद्र जनता को और दरिद्र न बनाएँ, नंगी जनता को और भी निर्वस्त्र न करें तथा अधमरी जनता की खाल उतारकर स्वयं पौ-बारह न हों।

परिवार-नियोजन

[विषय-प्रवेश, कारण, पक्ष-विपक्ष में तर्क, उपसंहार]

अशिक्षित, निर्धन, रुग्ण, अपंग।
बढ़ाते व्यर्थ करुण भू-भार॥
नरक क्यों बने न जन-भू-स्वर्ग।
नहीं जब प्रजनन पर अधिकार॥

—सुमित्रानंदन पंत, लोकायतन

अत्यंत प्राचीन काल में जब देश की जनसंख्या बहुत कम थी, तब एक व्यक्ति को दो बच्चे हों या पाँच—इसपर बहुत सोच-विचार नहीं किया जाता था, किंतु जब आज देश की जनसंख्या विस्तृत होकर पर्याप्त संकटकारिणी स्थिति में आ गई है, तब इस ओर सोचना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान में इतने लोग मारे गए कि वहाँ अधिक बच्चे पैदा करने के लिए सरकार की ओर से पुरस्कार की घोषणा की गई। 1972 ई० के दिसंबर में उगांडा के राष्ट्रपति अमीन ने अपनी चारों पत्नियों से कहा कि जो वर्ष में एक बच्चे को जन्म नहीं देगी, उसका

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तलाक कर दिया जाएगा। किंतु, आज की स्थिति में दो या तीन बच्चे के बाद जन्मनिरोध कराने के लिए पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है और आप जिधर गुजरिए, उधर ही लाल तिकोन का निशान देखिए और पढ़िए 'छोटा परिवार : सुख का आधार', 'सुखी जीवन के लिए डॉक्टर की सलाह मानिए', 'दो या तीन बच्चे, बस', 'हम दो, हमारे दो', 'मुन्ना-मुन्नी मम्मी-पापा के हम दो।'

आज दुनिया की आबादी बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है। भारत का तो और भी बुरा हाल है। देश-विभाजन के पश्चात् 1947 ई० में हमारे देश की आबादी लगभग 36 करोड़ थी, जो 1981 ई० तक बढ़कर 70 करोड़ से भी अधिक हो गई। यदि हिसाब लगाया जाए, तो हमारे यहाँ एक मिनट में लगभग 23 बच्चे पैदा होते हैं। एक वर्ष में लगभग एक करोड़ बीस लाख व्यक्ति पैदा हो रहे हैं। इस तरह, भारत के अंदर जनसंख्या की दृष्टि से एक महादेश पैदा होता जा रहा है (आस्ट्रेलिया महादेश की आबादी केवल एक करोड़ है।)। हर वर्ष इतने मेहमानों के आ जाने के कारण उनके लिए हर वर्ष सवा करोड़ क्विंटल अन्न, उन्नीस करोड़ मीटर वस्त्र तथा पचीस लाख नए गृहों का प्रबंध अनिवार्य हो जाता है। इनके अतिरिक्त, उनके लिए दवाइयाँ, शिक्षा तथा नौकरियों की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। यदि यही रफ्तार रही, तो अगले पंद्रह वर्षों में हमारे देश की आबादी 100 करोड़ हो जाएगी। जनगणना-विशारदों का कथन है कि पाँच सौ वर्षों में पृथ्वी पर मनुष्य कीड़े की तरह रेंगते नजर आएँगे। जिस गति से जनसंख्या बढ़ती है, उस गति से पैदावार नहीं बढ़ सकती। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थस का कहना है कि यदि जनसंख्या में ज्यामितिक दर से वृद्धि होती है, तो उत्पादन में अंकगणितिक दर से। अर्थात्, जिस रफ्तार से उत्पादन बढ़ता है। मनुष्य के जन्म लेते ही उसके भोजन, वस्त्र, आवास आदि की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जमीन तो रबर है नहीं कि उसे हम जितना चाहें, खींचकर बढ़ा लें !

अतः, सुखमय परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिए परिवार-परिसीमन परमावश्यक है। जिस व्यक्ति के पास बच्चों की पलटन खड़ी है, उसके सामने समस्याओं की भी पलटन खड़ी है। बच्चों के भोजन, वस्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए पिता प्रबंध नहीं कर पाता। अतः, उसका सारा जीवन चिंताओं का कारागार बन जाता है, नरक का द्वार बन जाता है। एक हास्य रस के कवि ने कहा है—

उनके दर्जनभर बच्चे,
जब मिलकर चिल्लाते हैं।
मेरे माइंड की बिजली के
सब बल्ब फ्यूज हो जाते हैं॥

परिवारों से ही समाज बनता है और समाज से ही राष्ट्र। यदि परिवार ही दुःखी है, तो समाज सुखी कैसे हो सकता है ? फिर दुःखी समाज से सुखी राष्ट्र की कल्पना असंभव है। जिस देश में आबादी बहुत बढ़ जाती है, वहाँ की सरकार के सामने तरह-तरह की समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। उसे अन्न के लिए अन्य देशों के समक्ष भिक्षापात्र फैलाना पड़ता है और हम समझ सकते हैं कि भिखारी का क्या स्वतंत्र व्यक्तित्व और गौरव हो सकता है।

नियुक्ति के क्षेत्र सीमित हैं, इसीलिए अधिक आबादी के कारण देश में बेकारों की वाहिनी तैयार हो जाती है, जो देशहित की जड़ पर कुठाराघात आरंभ कर देती है। अधिक बच्चों के कारण पिता का सारा जीवन जिस प्रकार चुसी हुई नारंगी की तरह होता है, उसी प्रकार अत्यधिक जनसंख्यावाले देश का जीवन उलझनों की कहानी भर होता है, समस्याओं की सुरसाएँ उसे कभी आगे बढ़ने नहीं देतीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतः, जनसंख्या की इस बाढ़ को रोकने में ही व्यक्ति, समाज और देश, सभी की भलाई है—इसमें कोई संदेह नहीं। कुछ अंधविश्वासी लोगों का कहना है कि मनुष्य तो परमात्मा की सृष्टि है, उसकी इच्छा का विकास है। ऐसे भी लोग हैं, जो संतान चाहते हैं, किंतु जीवनभर एक चूहा भी पैदा नहीं करते; क्योंकि विधाता नहीं चाहता कि उन्हें संतान हो। अतः, कृत्रिम पद्धतियों से प्रजनन पर नियंत्रण परमात्मा के प्रति विद्रोह है, उनकी इच्छा की अपूर्ति है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि यदि परिवार-नियोजन हुआ होता, यदि दो या तीन बच्चों के बाद जन्मनिरोध किया जाता, तो मानवसमुदाय रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे महापुरुष से वंचित होता। कुछ यह भी कहते हैं कि घबराने की जरूरत नहीं, दुनिया में सबसे बड़ी जनसंख्यावाला देश चीन है, उससे मुकाबले के लिए आबादी बढ़ाना जरूरी है। कुछ लोग कहते हैं कि अभी तो नए-नए ग्रह-उपग्रह खोजे जा रहे हैं, जो पृथ्वी से हजारों गुना बड़े हैं, समुद्र के भीतर भी बस्ती बनाने की योजनाएँ बनाई जा रही हैं—अतः जन्मनिरोध करना व्यर्थ है; क्योंकि हमारे देश में इतने मनुष्य चाहिए, जो विभिन्न ग्रहों, उपग्रहों तथा सागरतलों में अपना बहुमत बना सकें।

किंतु, इन सब दलीलों से कीड़े-मकोड़े की तरह बच्चे पैदा करते चलना, उचित पोषण के अभाव में धँसी आँखोंवाले बच्चों की जमात से घर भर देना, देश को समस्याओं के चौमुहाने पर खड़ा कर देना मूर्खता ही नहीं, वरन् समाजद्रोह है। हर संभव उपाय से इसे रोकना ही कल्याणकर है।

भारत-सरकार ने अपनी प्रथम तीनों पंचवर्षीय योजनाओं में इसपर बहुत व्यय किया है। प्रथम योजना में पैंसठ लाख रुपये, द्वितीय योजना में पाँच करोड़ रुपये तथा तृतीय योजना में पचास करोड़ रुपये खर्च किए गए। उसने अपनी चौथी पंचवर्षीय योजना में भी परिवार-नियोजन पर काफी धन खर्च किया। इसके लिए जन्मनिरोध की औषधियाँ, शल्य-चिकित्सा, नसबंदी, लूप-पद्धति आदि अपनाई गई हैं। नसबंदी को जनप्रिय बनाने के लिए सरकार रुपये भी देती है। नसबंदी के लिए पुरुषों तथा स्त्रियों को रुपये देने की भी व्यवस्था की गई है। स्त्रियों को लूप लगवाने के लिए भी रुपये दिए जाते हैं। इतना ही नहीं, पुरुषों की नसबंदी के लिए पंद्रह तथा स्त्रियों को लूप लगवाने के लिए अठारह रुपये दिए जाते हैं और नसबंदी के लिए पुरुषों या स्त्रियों को ले जानेवालों को भी कुछ रुपये दिए जाने का प्रबंध किया जाता है। जन्मनिरोध के लिए मुफ्त टिकिया बाँटी जाती है। इसके अतिरिक्त, परिवार-नियोजन के लिए प्रखंडस्तर पर अनेक परिवार-नियोजन-केंद्र खोले गए हैं और इससे थोड़ा लाभ भी हुआ है। कुछ लोग गाँधीजी की भाँति आत्मनियंत्रण इसका इलाज बताते हैं, किंतु यह पद्धति बहुत थोड़े लोगों के लिए है। अधिकांश लोगों को कृत्रिम पद्धतियों का सहारा लेना ही पड़ता है। परिवार-नियोजन को सफल बनाने के लिए मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना आवश्यक है। अब शिक्षित व्यक्ति इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। दो बच्चों के बीच समय का अंतराल बढ़ाना जितना आवश्यक है, उतना ही कम उम्र में लड़के-लड़कियों के विवाह पर रोक भी। मेरा तो विचार है कि दो बच्चे से अधिक पैदा करनेवाले माँ-बाप को कानूनन दंडनीय माना जाना चाहिए। इस दिशा में हमारी राज्य-सरकारें भी सोच रही हैं। बिहार सरकार यह घोषणा करने पर विचार कर रही है कि तीन से अधिक संतानों के लिए राशन-कार्ड नहीं बनेगा। दो बच्चेवालों को पुरस्कार देने की बात चल रही है। जापान ने इस समस्या का समाधान गर्भपात को वैध बनाकर किया है। भारत सरकार ने भी गर्भपात को वैध बना दिया है। सिंगापुर सरकार ने दो बच्चों से अधिक संतान पैदा करनेवाले को दंड का भागी करार दिया है। ऐसी ही कार्रवाइयों से जनसंख्या की बाढ़ रुक सकती है। इस विषय में धर्म भी बहुत बड़ा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अड़ंगा है। पोप, खलीफा और शंकराचार्य सभी वैज्ञानिक प्रणाली से संततिनिरोध के विरोधी है। ग्रामीण जनता के मन से इस धारणा को हटाना पड़ेगा कि पुत्र से 'पुम्' नामक नरक से त्राण होता है। पुत्र अवश्य हो, इसी कोशिश में लाखों व्यक्तियों को पाँच-छह लड़कियाँ पैदा करनी पड़ती है। खैरियत यही है कि लोग समय की माँग समझकर इनके कट्टरपंथ में नहीं पड़ रहे हैं। अतः, सरकार तथा अन्य सामाजिक संगठनों को इसके सस्ते-सुलभ साधन घर-घर पहुँचाने के साथ सतर्क प्रचार में तीव्र होना चाहिए, ताकि धार्मिक या अन्य प्रकार के अड़ंगे भी समाप्त हों।

आज के संदर्भ में बड़ा ही आवश्यक हो गया है कि परिवार-नियोजन के लिए व्यापक अहानिकर और सुलभ प्रबंध किया जाए। हमारे वैदिक ऋषियों ने जहाँ कम आबादी में संतान को मोक्ष का कारण कहा, वहाँ घनी आबादी की हालत में कहा था—जिसे बहुत संतानें होती हैं, वह नरक जाता है। बाद के नरक का क्या ठिकाना, अधिक संतानवालों का जीवन यहीं नरक बन जाता है, इसमें संदेह नहीं। अतः, हमें कौरवों की भाँति शताधिक संतानों की आवश्यकता नहीं है, बल्कि मर्यादापुरुषोत्तम राम, वीरव्रती लक्ष्मण, आदर्श बंधु भरत एवं महान साधक शत्रुघ्न की तरह केवल दो संतानों से अधिक की आवश्यकता नहीं, यदि एक रहे तो और अच्छा। एक सिंह के समक्ष सौ-सौ चूहों की क्या बिसात।

दहेज-प्रथा

[आरंभ, इतिहास, पिता की दयनीय स्थिति, कुपरिणाम, उपाय]

भारतीय समाज को जिन कुप्रथाओं ने अतिशय कुरूप बना दिया है, जिन कुरीतियों ने इसके सुंदर तन को कुष्ट के धब्बों से विरूप कर दिया है, उनमें दहेज-प्रथा का नाम बड़ी आसानी से लिया जा सकता है। कन्यापक्ष की ओर से वरपक्ष को जब तक मुँहमाँगा द्रव्य न दिया जाए, तब तक कन्या के विवाह की बात ही न पक्की हो—यही दहेज-प्रथा है। यह ऐसी घिनौनी पद्धति है कि इसका मूलोच्छेद जितना जल्द हो, उतना ही अच्छा।

कुछ लोगों का कहना है कि दहेज-प्रथा हमारे देश के लिए नई नहीं है। इसका प्रचलन तो पुरातन काल से चला आ रहा है। यह हमारे गरिमामय स्वर्णिम इतिहास का भव्य स्मारकचिह्न है। दहेज-प्रथा और कुछ नहीं, वरन् माँ-बाप के अपनी बेटी के प्रति प्रेम-प्रदर्शन की समृद्ध परिपाटी है। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि दहेज-प्रथा हमारे देश में वैदिक काल से ही चली आ रही है। यास्क ने अपने निरुक्त में 'दुहिता' शब्द की निरुक्ति में बताया है—जो अपने पिता से धन दुहती हो, वह दुहिता है। अर्थात् पुत्री के पर्याय 'दुहिता' शब्द के अर्थ से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में भी पिता अपनी पुत्री को विवाह के अवसर पर प्रचुर धन देता था। पार्वती के विवाह पर उनके पिता हिमवान ने दासी, घोड़े, रथ, हाथी, गाएँ, वस्त्र, मणि आदि तरह-तरह की चीजें तथा अन्न और सुवर्ण के बरतन रथों में भरकर दहेज में इतने दिए थे कि उनका वर्णन नहीं हो सकता—

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि वस्तु बिभागा॥
अन्न कनक भोजन भरि नाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

—रामचरितमानस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जब विवाह के बाद राजा जनक की पुत्रियों की विदाई होने लगी, तब उन्होंने अपार संपत्ति दहेज में जनकपुर से भेजी। नख से शिख तक सजे हुए एक लाख घोड़ों और पचीस हजार रथों के अलावा दस हजार मतवाले हाथी साजे गए, जिन्हें देखकर दिग्गज लज्जित हो जाएँ। स्वर्ण, वस्त्र, मणियाँ गाड़ियों और रथों में भर-भर कर भेजे गए। भैंसों, गायों तथा अन्य चीजों का लेखा-जोखा ही क्या !

संपन्न माँ-बाप विवाह के बाद कन्या की विदाई के समय दहेज के रूप में वस्तुएँ दिया करते थे। अभाव के दंश में पलते हुए पिता के ऊपर कोई अनिवार्य बंधन नहीं था। जिसके पास अपार या अधिक संपत्ति हो, वह यदि परिणय के पश्चात् अपनी पुत्री को स्वेच्छापूर्वक सामान देता है, तो उससे आज भी किसे विरोध हो सकता है ? पहले ऐसा नहीं था कि जब तक शंकर या शंकर के पिता हिमवान से तथा राम या राम के पिता दशरथ जनक से दस-बीस करोड़ रुपये अग्रिम दहेज के रूप में न लेते, तब तक पार्वती और सीता का विवाह ही नहीं होता, बारात ही नहीं सजती। अतः, आज की विकृति से पुराकालीन स्वस्थ स्थिति की तुलना निरर्थक है।

आज तो उच्च वर्ग की बात कौन कहे, साधारण और मध्यम वर्ग भी इस कुप्रथा का शिकार हो रहा है। जिसके घर में कई बेटियाँ हो गईं, समझिए उसका दिवाला निकल गया, उसके यहाँ से लक्ष्मी महारानी शीघ्र ही प्रस्थान करनेवाली हैं तथा उस परिवार को दीनता-दानवी अपनी विकराल दंष्ट्राओं में दबोचनेवाली है। बेटे का बाप बेटे की मनचाही कीमत माँगता है, उसके विवाह के लिए अजीबोगरीब शर्तें रखता है। लगता है कि कुँवारे लड़के आदमी नहीं, वरन् बैल हैं और उनके पिता बैलों के मटरगस्त सौदागर। इन कुँवारे बैलों की मोल-मोलाई खूब होती है। भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रतियोगिता में सफल युवकों का सर्वाधिक बाजार-भाव है। ज्यों-ज्यों लड़के ऊँची कक्षाओं में पहुँचते जाते हैं, उनका भाव तेज होता चलता है। इधर मेडिकल और इंजीनियरिंग छात्रों का बाजार-भाव बढ़ा है। लड़की का पिता होना आज भीषण अभिशाप बन गया है। लड़के का पिता ऐंठे, तो ऐंठे, हमारे पढ़े-लिखे नवयुवक भी अपनी सारी तमन्नाओं की, अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति अपने भावी श्वसुर से ही करा लेना चाहते हैं। बाप की फरमाइश अलग, तो बेटे की फरमाइश अलग। पता नहीं, कितनी मेहनत के बाद वे कार, रेडियोग्राम, फ्रिज, एयरकूलर, टेलीविजन, मोटरसाइकिल आदि खरीद पाएँगे; क्यों नहीं इस मोटे आसामी से ही वसूल कर लिया जाए। वर को अपनी जीवनसंगिनी वधू की चिंता नहीं है, उसे चाहे लड़की कैसी भी क्यों न मिल जाए, किंतु दहेज जरूर मुँहमाँगा मिलना चाहिए।

एक ओर कुँवारे कल्पनालोक में विचरण करते हैं, उनके पिता तरह-तरह के मनसूबे बाँधते रहते हैं, दूसरी ओर कन्याएँ अपने भाग्य को कोसती रहती हैं, उनके पिता दर-दर की ठोकरें खाते रहते हैं। तरह-तरह के उपहास सहते हैं, धनसंचय की चिंता में घुलते रहते हैं। बेटी के बाप का जीवन नारकीय हो जाता है; उनकी पेशानी पर असमय वार्धक्य के चिह्न उभर आते हैं, भव्य मुखाकृति पर झुर्रियों के गड्ढे बन जाते हैं। लगता है, इन हास्यकवि विनायक राव को कभी इस दहेज-प्रथा के विष-बुझे तीर का निशाना नहीं होना पड़ा, इसीलिए इन्होंने ऐसा लिख दिया। भला कोई कन्या का भुक्तभोगी पिता ऐसा लिख सकता है ?

अहो सोच कन्या-विवाह का वृथा हृदय नर धरते हैं॥
सर्वशक्तियुक्त ईश कृपानिधि जोड़ी निर्मित करते हैं॥
भावी वर को जन्म प्रथम दे कन्या पीछे रचते हैं॥
'नायक' सोच करो मत कोई विधि के अंक न बचते हैं॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बेटी का जन्म भी उसी रक्त-मांस-हड्डी के तन से हुआ है, जिससे बेटे का। जिस बेटी को माँ-बाप अपने प्यार की छाँह तले, पलकों के पाँवड़े पर जीवनलता की तरह पालते हैं, उसकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबंध करते हैं, उसी मोम की डली, गुलाब की कली हरिणी को जब किसी योग्य वर के हाथ पिता सौंपना चाहता है, जब वह उसे मधुर ज्योति का वरदान देना चाहता है तब उसके सामने रुपए के तोड़े, नोटों के बंडल और सोने की ईंटों की माँग की जाती है। स्वर्ग की इस अनोखी नारी के लिए नर की बिक्री का शर्मनाक नाटक खेला जाता है। सचमुच, यह दहेज भारतीय समाज के जिस्म पर भयानक कोढ़ है, यह उसके पाक दामन पर कलंक का धब्बा है। यह विवाह के नाम पर घृणित घूस है, कन्यापक्ष के गर्दन पर चलनेवाली छुरी है।

इस दहेज-प्रथा के इतने कुपरिणाम हुए हैं कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दहेज के डर से कितनी देवीमूर्तियाँ जन्मग्रहण करते ही नमक चटाकर मार डाली गई हैं। कुछ लड़कियों का अबोध बचपन में ही विवाह कर दिया जाता है। दो-दो, चार-चार महीने की लड़कियों का विवाह तिलक के डर से कर दिया जाता है; क्योंकि अधिक उम्र में तिलक की दर बहुत बढ़ जाती है। इस बाल-विवाह का परिणाम होता है कि अनेक लड़कियाँ वैधव्य के दारुण दावानल में तिल-तिलकर जलती रहती हैं। उनकी ज़िंदगी दीर्घ तृष्णा, दुर्बलता, उपेक्षा और अनवरत अश्रुप्रवाह की करुण कहानी बनकर रह जाती है। कुछ लोग अधिक दहेज नहीं दे पाने के कारण अपनी कुसुम-सी रूपवती कन्या को किसी बूढ़े खूसट के गले मढ़ देते हैं। बेचारी कन्या की सारी इच्छाएँ अतृप्त रह जाती हैं, उसकी कल्पनाओं का शीशमहल भहराकर गिर जाता है, उसके जीवन के बंदरगाह में भयानक तूफ़ान मच जाता है, उसके जीवन के कमलवन पर सहसा तुषारपात हो जाता है। अर्थाभाव के कारण कुछ लड़कियों का विवाह नहीं हो पाता। बालविवाह, अनमेल विवाह तथा आजीवन विवाह न होने के कारण भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिलता है, स्त्रियों को रूप के बाजार में भटकना पड़ता है, उन्हें अंतर्जलन शांत करने के लिए दुर्वृत्तियों की अंधगलियों में चक्कर मारना पड़ता है। मातृत्व की मर्यादा से शून्य तथा पतिप्रेम से वंचित नारियों के हाहाकार की आग की लपटों से हमारा समाज अब तक क्यों नहीं क्षार-क्षार हो चुका, आश्चर्य होता है!

प्रेमचंद जैसे कुशल साहित्यकार ने दहेज-प्रथा की अनगिनत बुराइयों की दारुण गाथा अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' में प्रस्तुत की। शांताराम ने अपनी 'दहेज' नामक फिल्म में इसकी बुराइयों का पर्दाफाश किया। सरकार इसके विरुद्ध कानून बनाने पर विवश हुई है। रेडियो, दूरदर्शन, समाचारपत्र और नेताओं के भाषण ने इस कुप्रथा पर आग उगले, किंतु अब तक यह विषवृक्ष जला नहीं, इसका कलंक धुला नहीं, यह दाग मिटा नहीं। जबतक हमारा नवयुवकवर्ग इस प्रथा के विरुद्ध संकल्प नहीं लेता, जबतक वह बिना दहेज के आदर्श विवाह का उदाहरण नहीं प्रस्तुत करता और जबतक सरकार तिलक लेनेवालों को कड़ी-से-कड़ी सजा की कारगर व्यवस्था नहीं करती तबतक यह समाज को खोखला करनेवाली, रक्त चूसनेवाली, अपाहिज करनेवाली प्रथा चलती ही रहेगी।

अतः, इधर कुछ सरकारों ने दहेज को अवैध घोषित किया है। बिहार-सरकार ने शिक्षकों की आचारसंहिता में घोषित किया है कि दहेज लेनेवाले दंडनीय होंगे। यह दहेज-प्रथा शीघ्र ही समूल नष्ट होगी, ऐसी उम्मीद की जाती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सांप्रदायिकता

[आरंभ, इतिहास, कारण, समाधान, उपसंहार]

हमारे राष्ट्र को जिन दुर्बल करनेवाली विषम व्याधियों ने बुरी तरह ग्रस लिया है, उनमें सांप्रदायिकता का नाम सर्वोपरि है। सांप्रदायिकता वह विषवल्लरी है, जो हमारे सामूहिक जीवन पर छाकर सर्वनाश का समावर्तन करनेवाली है। सांप्रदायिकता हमारे राष्ट्रीय विकास के रथ को रोकनेवाली राक्षसी है, यह प्रगति की उषाबेला पर छानेवाली कुज्झटिका है, यह एकता की मजबूत डोर को काटनेवाली कराल कैंची है, यह भ्रातृत्व की गर्दन पर चलनेवाली तेज छुरी है, यह उदारता की गाड़ी को कालकोठरी में धकेल देनेवाली संकीर्णता की दुहिता है। यह उस भूकंप की माया है, जो सामाजिक संरचना की गाँठों को निर्ममता से अस्त-व्यस्त कर देती है।

सांप्रदायिकता का अभिप्राय होता है—किसी संप्रदाय, धार्मिक मतवाद के प्रति इतना अविचल आग्रह, जो असहिष्णुता को जन्म देता है, अन्य धार्मिक मतों को सहन नहीं कर सकता, यहाँ तक कि उनका मूलोच्छेद तक कर देना चाहता है। इस प्रकार, सांप्रदायिकता हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी आदि धर्मों के प्रति कट्टरपन हो सकता है, किंतु हमारे देश में हिंदू-मुस्लिम-विद्वेष एवं संघर्ष ही सांप्रदायिक अभिशाप के रूप में प्रमुखतः दिखलाई पड़ रहे हैं।

यह सांप्रदायिकता मुस्लिम-शासन में हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाने, इस्लाम नहीं स्वीकार करने पर दीवारों में चुनवाने तथा मौत के घाट उतारने का कुकांड उपस्थित कर चुकी है। अँगरेजों ने इस सांप्रदायिकता का सहारा लेकर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच फूट का बीज बोकर मनमाना शासन किया था। जब वे 1947 ई० में इस देश से बोरिया-बिस्तर गोल करने लगे, तब भी उन्होंने इस सांप्रदायिकता को अपने तरकस के अंतिम तीर के रूप में प्रयुक्त किया। उनका निशाना अचूक रहा। भारतमाता के वक्षःस्थल के दो टुकड़े हुए—भारत और पाकिस्तान। हिंदू-मुस्लिम दोनों भूल गए कि वे एक ही डाल के फूल हैं, एक ही माता के लाल हैं।

हिंदू-मुसलमान दोनों आपस में जानी दुश्मन की तरह भिड़ गए थे और आपस में रक्त की होली मच गई थी। नोआखाली और तारापुर की घटनाएँ मानवता की हत्या की घटनाएँ हैं। आदमी वहशी हो गया था, जंगली जानवर से भी बर्बर। इनसान मर गया था। तब भला अपनापन का दामन चाक होने से बच कैसे जाता? इस सांप्रदायिकता की आग में हमें अनगिनत प्रतिभाओं के साथ राष्ट्रपिता बापू तक की आहुति देनी पड़ी थी। स्वतंत्रता के नवजात शिशु के माथे पर शरणार्थियों के प्रबंध का विकट भार आ गया था, तंगदस्ती की हालत में उसे करोड़ों रुपये की चपत लगी थी। इस भयावह रोमांचकारी दृश्य के साथ सांप्रदायिकता के बीभत्स नाटक का पटाक्षेप हो जाता, तो एक बात थी, किंतु इसका विस्तार होता ही गया। सांप्रदायिकता के भूचाल के झटके इस देश की आजादी के बाद भी बार-बार लगते रहे हैं। सांप्रदायिकता का यह ज्वालामुखी कभी इलाहाबाद तो कभी मेरठ, कभी अलीगढ़ तो कभी अहमदाबाद, कभी नागपुर तो कभी जबलपुर, कभी राँची तो कभी जमशेदपुर में अपना दाहक लावा उगलता ही रहा और न मालूम कितने घरों को तबाह करता रहा। 1968 ई० के सितंबर महीने में किलों, मीनारों और मस्जिदों के नगर अहमदाबाद में सांप्रदायिकता का ऐसा समुद्री तूफान आया कि हजारों लोग बलि के बकरे की तरह जबह किए गए, लगभग तीन हजार दूकानें और मकान जले तथा पंद्रह हजार लोग बेघरबार हुए। उनकी कराह और कड़वाहट की कहानी क्या कभी भुलाई जा सकेगी? फिर पता नहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कब, कहाँ यह अग्निवृष्टि हमारे राष्ट्रीय जीवन की बची-खुची फसल को पूरी तरह स्वाहा कर जाए !

किसी भी व्याधि की चिकित्सा के पूर्व उसका निदान आवश्यक है। सांप्रदायिकता की इस बीमारी के कई कारण हैं। मुल्ला-मौलवी, महंथ-धर्मगुरु सभी ने धर्मों को बेतुका बना दिया है। उन्होंने मुहम्मद, ईसा और राम-कृष्ण के नाम पर दलों का संगठन कर लिया है, उनकी गलत व्याख्या का बाजार बसा लिया है। अब कोई नहीं है, जो ईश्वर के साथ हो। राजनीतिक पार्टियों की तरह वे अपने-अपने मुहम्मद, ईसा, राम-कृष्णवाले दलों की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाते हैं, तरह-तरह के मायाजाल फैलाते हैं। अपनी गद्दी कायम रखने के लिए वे अपने चेलों से दूसरे चेलों के सर फोड़वाते हैं। वे इसे 'धर्मयुद्ध' का पवित्र नाम देते हैं और धर्मप्रचार में शरीर त्याग करनेवालों की मुक्ति का प्रलोभन देते हैं। आज धर्म के नाम पर इतना अधर्म हो रहा है कि हैरानी होती है। सोहनलाल द्विवेदी ने 'युगाधार' में ठीक लिखा है—

मस्जिद से मंदिर लड़ते हैं
गिरजा से लड़ते विहार-मठ,
धर्म अनर्थ कर रहा कितना
करते हैं अधर्म पामर शठ।

धर्म के ठेकेदारों के अलावा राजनीतिक दलाल भी सांप्रदायिकता के विषवृक्ष के पालन के लिए कम जिम्मेवार नहीं। कुछ राजनीतिज्ञ कभी अल्पसंख्यकों को उकसाकर, कभी बहुसंख्यकों की पीठ ठोंककर दोनों धर्मों, जातियों के लोगों को आपस में लड़ाकर अपनी नेतागिरी बरकरार रखना चाहते हैं। उन्हें राष्ट्रहित का जरा भी खयाल नहीं होता, वे तो सांप्रदायिकता की आग में हाथ सेंककर मजा लेना चाहते हैं। कुछ नेताओं को इसी बहाने अपने को अल्पसंख्यकों का रहनुमा साबित करने का मौका मिल जाता है और उनके लिए चुनाव-युद्ध में भी विजयी होना आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त समाज में कुछ ऐसे विकृत तत्त्व होते हैं, गुंडे-बदमाश होते हैं, जो किसी के सीने में छुरा भोंककर हिंदू-मुस्लिम-दंगे का रूप दे देना चाहते हैं, जिससे कि उन्हें लूटने-खसोटने का अवसर आसानी से मिल जाए। इधर राम-जन्मभूमि और बाबरी मस्जिद के नाम पर सांप्रदायिकता का जैसा तांडव देखा गया, वह अकल्पनीय ही नहीं, वह हेय है।

सांप्रदायिकता की इस महामारी को दूर करने के लिए कई उपाय हो सकते हैं। प्रथम तो हमें धर्म के मूल रहस्य को समझना होगा, हमें व्यापक मानव-धर्म में विश्वास रखना होगा, हमें नई आध्यात्मिक दृष्टि विकसित करनी होगी। महर्षि अरविंद ने अपने सांप्रदायिकताविहीन अध्यात्मवादी चिंतन को अपनी पुस्तक 'द ह्यूमन साइकिल' में इस प्रकार व्यक्त किया है—"धार्मिकता मनुष्य की आत्मा में ईश्वरीय राज्य का नाम है; किसी पंडा, पोप या मुल्ला की सलतनत का नहीं।" वे फिर कहते हैं, "धार्मिक संप्रदायों के झगड़े उन बरतनों के झगड़ों के समान हैं, जिनमें हरेक यही कहता है कि अमरता देनेवाला सुधारस सिर्फ उसी में भरा है। हम बरतनों के पीछे क्यों लड़ें, हमें सुधारस चाहिए, चाहे वह किसी बरतन में हो !"

सांप्रदायिकता के इस उपचार के लिए साहित्य और संगीत का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होगा। जिस हिंदू-मुस्लिम ऐक्य का उद्घोष कबीर, रहीम, रसखान, ताज, रवींद्रनाथ, यशपाल, राही मासूम रजा आदि ने किया, जिसके प्रेम के गीत महान संगीतकार तानसेन और मशहूर कव्वाल हब्बीबुल्ला गाते रहे, उसी के जलप्रवाह में भारतीय जीवन को पूरी तरह नहला देने की जरूरत है, ताकि सांप्रदायिकता की कीटाणुमिश्रित मैल धुल जाए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सरकार सांप्रदायिकता के विषबीज बोनेवाली शिक्षण-संस्थाओं, राजनीतिक संगठनों, प्रकाशनों और पत्रों पर रोक ही न लगाए, वरन् उनसे संबद्ध व्यक्तियों को दंडित भी करे। कुछ साल पहले भारत सरकार ने उन्नीस दैनिकों तथा पाँच नियतकालिकों को सांप्रदायिक होने के कारण विज्ञापन देना बंद कर दिया था। प्यार की ऐसी हल्की चपत से ये दोषी माननेवाले नहीं। भारतवर्ष के प्रत्येक हिंदू और मुसलमान के मन में यह भाव बैठा देना पड़ेगा कि हिंदुस्तान सभी का है, सभी हिंदुस्तानी एक ही माता की कोख से जनमी संतान हैं। जो केवल 'हिंदूराज्य' या मध्यकालीन 'मुगलिया सलतनत' का स्वप्न देखते हैं, वे महान अपराधी हैं। यह समय कितना सुहाना मालूम पड़ता है, जब हिंदू मुसलमान के ताजिए से कंधे लगाए दौड़ते हैं, फकीरों की दरगाहों पर मन्नतें माँगते हैं तथा मुसलमान सुहाग की चूड़ियाँ बेचते हैं, शहनाई बजाते हैं और विवाह के जोड़े में सजाकर हिंदू-दूल्हे को विवाह के लिए भेजते हैं। हिंदू-मुसलमान यदि दूध में शक्कर की तरह घुल-मिल पाएँ, तो हमारा राष्ट्रीय जीवन प्रफुल्लित-पुष्पित हो जाए। इसे कभी न भूलें—

इसी मुल्क में हुए और हम यहीं रहेंगे आगे भी,
लड़-मर कर सह चुके बहुत क्या और सहेंगे आगे भी ?
अब मत भोगो अपने हाथों अरे बहुत तुमने भोगा,
हिंदू-मुसलमान दोनों का यह संयुक्त राष्ट्र होगा।

—**सियारामशरण गुप्त**

संविधान ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया है लेकिन स्थिति का नकारात्मक पक्ष यह है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना के बावजूद देश में अभी तक धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना नहीं की जा सकी है। विभिन्न धार्मिक समुदायों में संघर्ष का वातावरण यदाकदा चिंताजनक तनावों और अशांति को जन्म दे सकता है। राजनीतिज्ञों का एक ऐसा वर्ग है जो धार्मिक तनावों का अपने हितों की पूर्ति हेतु प्रोत्साहन देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे धार्मिक भावनाओं को उकसाकर वोट की राजनीति में शून्यलिप्त रहते हैं। पिछले दिनों सहारनपुर-भागलपुर में सांप्रदायिकता का जो तांडव नृत्य हुआ वह हमारे लिए एक शोचनीय स्थिति है। देश में सांप्रदायिक सौहार्द की स्थापना में समाज के हर वर्ग के लोगों को योगदान देना चाहिए। साथ ही राजनीतिज्ञों को भी संयमित राजनीतिक आचरण का परिचय देना चाहिए। रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद के मसले को दोस्ताना ढंग से निबटाना होगा।

अस्पृश्यता

[आरंभ, दुर्गति, कारण, उपाय, उपसंहार]

अस्पृश्यों-अछूतों को भले ही स्वामी दयानंद ने 'महाशय' जैसे महिमाशाली शब्द से संबोधित किया, महात्मा गाँधी ने भले ही इन्हें 'हरिजन' जैसा पतितपावन नाम दिया, किंतु क्या वे सचमुच महाशयों की मंडली में आ सके, सवर्णों की सभाओं में सम्मानित हो सके ? अछूतों की दारुण दशा से दयार्द्र होकर भले ही राष्ट्रपिता ने उनके लिए मुक्ति का द्वार खोला, राष्ट्रपिता के पदचिह्नों के पक्के अनुयायी आचार्य विनोबा भावे ने उन्हें अपनी बलिष्ठ बाँहों का सहारा भी दिया, सरकार ने 1955 ई० में अस्पृश्यता-उन्मूलन-अधिनियम पारित कर उनके ऊपर कानून की छतरी भी तान दी, ताकि वे विरोधों की हिमवृष्टि का सामना सुगमतापूर्वक कर सकें, किंतु क्या समता पर आधृत प्रजातंत्रीय प्रणालीवाले हमारे देश के तन पर पड़ी अस्पृश्यता की काली लकीरें

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिट सकीं ? क्या अछूत भारतीय समाज में दूध-पानी की तरह मिल सके ? क्या भारतीय समाज ने इन्हें अपने में पचा लिया—इन्हें आत्मसात् कर लिया ? क्या रोटी-बेटी के व्यवहार में आज सवर्ण और असवर्ण समस्तरीय हो गए हैं ? समस्तरीय होने का अवकाश उन्हें कानून और राज्य भले ही दे, पर समाज तो नहीं दे रहा है। यही कारण है कि कानून और राज्यसत्ता को विवश होकर असवर्णों, अल्पसंख्यकों एवं आदिवासियों के निमित्त चुनाव, सरकारी सेवा, शिक्षण आदि में आरक्षण की व्यवस्था करनी पड़ रही है।

अस्पृश्यता के कारण चाहे जो भी हों—प्रजातीय हों, धार्मिक हों या सामाजिक प्रथाएँ हों, जैसा कि एच० हट्टन ने अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष में जाति' में लिखा है, "The Origin of the position of exterior castes is partly racial, partly religious and partly a matter of social custom."—किंतु है यह बड़ा घृणित और जघन्य। इस अस्पृश्यता ने भारतवर्ष की लगभग आधी आबादी को नरक के जिस खौलते कड़ाह में अब तक पकाया है, उसकी कल्पना से ही रोमांच हो उठता है। इस देश के तथाकथित ऊँचे वर्णों ने इन अछूतों को इतनी यमयातनाएँ दी हैं कि सुनकर पत्थर का कठोर कलेजा भी सहसा पिघल सकता है।

कहीं इन अछूतों के लिए वे मार्ग वर्जित थे, जिनपर ऊँची जातियों के लोग चल सकते थे। इन अछूतों के गले घंटियाँ बाँध दी जाती थीं। जहाँ तक घंटियों की आवाज जाती थी, वहाँ तक अपवित्र समझा जाता था। उन्हें सार्वजनिक जलाशयों का उपयोग नहीं करने दिया जाता था। यदि ये किसी कुएँ की जगत पर चढ़ जाते, तो कुआँ अशुद्ध हो जाता था। पूजा-प्रायश्चित्त के पश्चात् उस कुएँ का जल पेय माना जाता था। मंदिरों का द्वार इनके लिए निषिद्ध था। जिन दीनदयालु पतितपावन अशरणशरण भगवान ने शबरी के जूठे बेर खाए थे, जिन्होंने कोल-भीलों को गले लगाया था, उन्हीं के द्वार इनके लिए वर्जित थे। जिन भगवान ने मोची और ब्राह्मण दोनों को एक प्रकार से बनाया, जब दोनों उसकी अपनी संतानें हैं, उन्हीं में एक-दूसरे पर रोक हो, बिलकुल विचित्र बात है ! अछूतों के लिए विद्यालयों में अध्ययन की व्यवस्था नहीं थी। उनके घर गाँव से बाहर होते थे। यदि वे किसी चौकी से सट जाएँ, तो चौकी धुलवानी पड़ती थी, यदि उनसे बरतन छू जाएँ, तो बरतनों को आग में शुद्ध करना पड़ता था। इतना ही नहीं, यदि उनकी परछाईं ब्राह्मणों पर पड़ जाती, तो पातक लगता था, उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता था। एक-दो साल पहले मध्यप्रदेश में तीन अछूतों के सीनों पर गोलियाँ इसलिए दाग दी गईं कि उन्होंने नीच होकर भी राजपूतों की तरह मूछों पर ताव दे रखा था। आंध्र में एक हरिजन लड़के पर बरतन की चोरी का आरोप लगाकर उसे एक वृक्ष से बाँधकर जीते-जी जला दिया गया। आज भी उनका दमन और शोषण समाप्त हो गया हो, उनके प्रति घृणा और उपेक्षा का संचित कोष रिक्त हो गया हो—ऐसी बात नहीं है।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि अस्पृश्यता हमारे राष्ट्र का अभिशाप है। यह हिंदू-जाति का कलंक है। यह हिंदुत्व में घुसी हुई सड़ाँध है। इससे हिंदू-धर्म ऐसे ही चौपट हो रहा है, जैसे संखिया से दूध। जहाँ अस्पृश्यता की भावना आ गई, मानवता वहाँ से विदा हो जाती है। कोई व्यक्ति मानवता का दंभ भी करे और अस्पृश्यता भी कायम रखना चाहे, तो वह ढोंगी है। अस्पृश्यता ऐसी विसूचिका है, जो राष्ट्र को शक्तिहीन करती जा रही है। यह ऐसी अपस्मार की व्याधि है, जो हमारा पिंड नहीं छोड़ रही है।

सारे जीवों की सृष्टि करनेवाला एक ही परमात्मा है। वैज्ञानिक अनुसंधान भी यह सिद्ध करते हैं कि तात्त्विक दृष्टि से ब्राह्मण और भंगी के रक्त में कोई अंतर नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपने को सर्वोच्च सिद्ध करने तथा दूसरों को दासानुदास बनाने के षड्यंत्र ने ही असहाय मानवों को अस्पृश्य घोषित किया है। पाखंड ने इसे धार्मिक आवरण देकर अपने शोषण का सौदा किया है।

अतः, यदि हमारे राष्ट्र की लगभग आधी जनसंख्या की जिंदगी पीड़ा की अछोर कहानी हो, आँसू की उमड़ती घनघटा हो, तो देश के जीवन में आनंद का वसंत कभी नहीं उतर सकता। इसके लिए कानून भी बहुत कारगर नहीं हो सकता, उनकी आर्थिक दशा सुधारने से भी लाभ नहीं हो सकता, उनके लिए आरक्षण और वृत्तियों से भी बहुत दूर तक समाधान नहीं हो सकता। अस्पृश्यता की जड़ उखाड़ने के लिए हमें जाति-प्रथा के मूल पर ही कुठाराघात करना पड़ेगा, ऊँच-नीचवाली भ्रांति का उच्छेद करना होगा, रूढ़ियों की कब्र खोदनी होगी, लोगों के मन से संकीर्णता दूर करनी होगी तथा मानसिक वातायन सब ओर खोल देना पड़ेगा। देश में कुछ हरिजन रहें और कुछ अन्य जन, ऐसा नहीं होना चाहिए। अस्पृश्यता का नामो-निशान मिटाने के लिए या तो सभी को हरिजन बनना पड़ेगा या सभी को ब्राह्मण। भारतवर्ष के सभी मनुष्य भारतीय हैं—उनकी एक ही जाति, एक ही वर्ण, एक ही धर्म है। धर्म तो जीवन-धारण का पर्याय है—सम्मिलित जीवन जीने का सार है; उसे हिंदू, मुस्लिम, ईसाई और सिख के कठघरे में बाँधना ठीक नहीं।

अस्पृश्यता भारतीय समाज पर युगों से घिरी महामारी है, घोर अभिशाप की डरावनी छाया है। इसका मूलोच्छेद जितना शीघ्र हो सके, उतना ही शीघ्र भारत के भाग्य का नवीन सूर्योदय होगा, इसमें संदेह नहीं।

जातिवाद : एक अभिशाप

[आरंभ, स्थिति, कारण, उपसंहार]

भारत-मस्तक का कलंक यह
जाति-पाँतियों में जन खंडित,
जहाँ मनुज अस्पृश्य चरणरज
राष्ट्र रहे वह कैसे जीवित।

—सुमित्रानंदन पंत : लोकायतन

आज हमारे देश का संपूर्ण हिंदूसमाज जातिवाद के भयानक भुजंग के विषदंश से मूर्च्छित हो गया है। इसका सारा शरीर इसके जहर से स्याह हो गया है। चाहे वह साम्यवादी हो या समाजवादी, काँग्रेसी हो या जनसंघी, सभी जाति के आधार पर टिकट का बँटवारा करते हैं, चुनाव-संग्राम में विजयी होने की योजना बनाते हैं। मंत्रिपरिषद के गठन में जाति के आधार पर कोटा दिया जाता है। परीक्षा में जाति के आधार पर उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण किया जाता है, प्रथम-द्वितीय बनाया जाता है, जाति के ही आधार पर ऊँचे स्थान पर नियुक्ति की जाती है। प्राध्यापक हो या प्राचार्य, मंत्री हो या कुलपति, न्यायाधीश हो या सेवा-आयोग का अध्यक्ष या सदस्य—हर पद अब जातिवाद के तराजू पर तौलकर दिया जाता है।

जाति की रस्सी पकड़कर इन दिनों साधारण प्रतिभाहीन व्यक्ति भी ऊँचे-ऊँचे पदों के पहाड़ों पर चढ़े जा रहे हैं। जिनके भुजदंड में शक्ति नहीं, जिनके मानस में बल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं, जो बड़े ही पापी हैं, वे इस जाति की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार कर जाना चाह रहे हैं। इसलिए दिनकरजी ने ठीक ही लिखा है—

जाति-जाति रटते जिनकी पूँजी केवल पाषंड।

× × ×

जाति-जाति का शोर मचाते केवल कायर, क्रूर।

कुछ लोगों का कहना है कि जाति-प्रथा हमारे देश में सनातन काल से चली आ रही है, किंतु उन्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जाति का निर्माण गुण और कर्म के आधार पर हुआ था (चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः—गीता)। भगवान बुद्ध और महावीर ने भी कहा कि मनुष्य जन्म से ही नहीं, वरन् कर्म से ही ब्राह्मण या शूद्र होता है। कबीरदास ने ठीक ही कहा है कि हर मनुष्य में एक ही रक्त-मांस-मज्जा है, उसकी उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है; अतः उसमें ऊँच-नीच का भेदभाव बरतना ठीक नहीं—

एकै बूँद, एकै मल-मूतर, एक चाम, एक गूदा।
एक जोति तें सब उतपना, कौन ब्राह्म, कौन सूदा॥

चारों वर्णों की उत्पत्ति परमात्मा के शरीर से हुई है। मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। चारों मिलकर परमात्मा के विराट शरीर की सृष्टि करते हैं। अतः, किसी को नीचा और किसी को ऊँचा मानना ठीक नहीं है।

किंतु, इतना ही नहीं, ब्राह्मणों में भी कान्यकुब्ज सरयूपारीण, मैथिल, शाकद्वीपीय आदि उपजातियाँ बन गई हैं; क्षत्रियों में भी चंदेल, बुंदेल आदि कितने भेद हैं; वैश्यों में भी कितने प्रकार है और शूद्रों के तो अनगिनत भेद हैं। जाति के भीतर जाति और इनमें आपसी कलह और वैमनस्य, झगड़े और टंटे।

यह बात बड़ी बेतुकी लगती है कि जब सब मुसलमान एक हैं, सब ईसाई एक हैं, तब फिर हिंदुओं में इतने भेद मानने की जरूरत क्या है। एक ओर जातिभेद ने मनुष्य की प्रतिभा, उसकी क्षमता एवं उसके परिश्रम को पुरस्कारों से वंचित किया है, बेईमानी को बढ़ावा दिया है, तो दूसरी ओर अपने ही भाई-बंधुओं को नीचा ठहराकर अपमानित तथा पदमर्दित किया है और तीसरी ओर बहुत-सारे लोगों को नीच और अछूत ठहराकर दंडित किया है तथा उन्हें अन्य धर्म स्वीकार करने को विवश किया है। इसीलिए, इस जातिविद्वेष के हल से जोती हुई जमीन पर इस्लाम का अंकुर जिस तरह पनप सका, उस तरह संसार की किसी और भूमि पर नहीं। यही कारण है कि आज हमारा राष्ट्र एक राष्ट्र नहीं, वरन् अनेक जातियों-उपजातियों की खंडित इकाइयों का समूहमात्र है। भारत एक महाद्वीप है, जिसमें विभिन्न जातियों के अनगिनत द्वीप मिले हुए हैं; एक ऐसा महासागर है, जिसमें विभिन्न जातियों की सरिताओं का जल अपना-अपना रंग दिखा रहा है। हम एक हिंदू हैं, परंतु रोटी-बेटी एक नहीं है; न साथ खाना-पीना, न साथ उठना-बैठना है, न एक-दूसरे में विवाह-शादी! भारत ऐसा कारखाना है, जहाँ विभिन्न जातियों के संघर्षों के यंत्र कोलाहल कर रहे हैं। जातिवाद के ज्वालामुखी पर बैठा भारत आज अपने विनाश की अंतिम घड़ियाँ गिन रहा है, इसमें कोई संदेह नहीं।

जातिवाद भारत के आँचल पर लगा वीभत्स धब्बा है, यह इसके मस्तक का कलंक है। यह इसके शरीर का कोढ़ बन गया है। यह भयानक अभिशाप है। यदि हम भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखना चाहते हैं, यदि इसकी अंतर्वीणा की मधुर झंकार सुनना चाहते हैं, तो इसके लिए यह आवश्यक है कि हम सभी को हिंदू कहकर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुकारें—किसी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, चमार, तेली, धोबी, केवट आदि कहना छोड़ दें; सरकार कानून द्वारा जाति-प्रथा समाप्त कर दे, खानपान में भेदभाव न बरता जाए, सभी हिंदू आपस में विवाह-संबंध कायम करें। जब जाति रहेगी ही नहीं, तब अंतरजातीय विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता। वैसी अवस्था में अनुसूचित जातियों के लिए चुनाव, पढ़ाई या नौकरी में आरक्षण समाप्त कर दिया जाए, आवेदनपत्रों में जाति का खाना न बनाया जाए, समाज में एक नई चेतना का मंत्र फूँका जाए, नई जागृति का पांचजन्य फूँका जाए। हम सभी भारतवासी मन से जाति-संस्कार की काई हटा दें, तभी भारत एक बेदाग आईने की तरह चमकता दीख पड़ेगा। हम डॉ॰ भगवानदास के इस कथन से पूर्णतः सहमत हैं कि वर्तमान काल में जाति-प्रथा जिस रूप में प्रचलित है, उसका एकांत रूप से विनाश करना ही होगा। यदि भारतीय जनता को नवीन जीवन प्राप्त करना है, तो उसे वर्णभेद के वर्तमान स्वरूप को मिटा देना होगा; क्योंकि यह उन्नति के हर मार्ग पर भयंकर रूप से बाधक सिद्ध हो रहा है। यदि हम जाति-प्रथा समाप्त नहीं करते, तो हमारे राष्ट्र की उच्छित्ति निश्चित है।

समाजसेवा

[आरंभ, महत्त्व, क्षेत्र, उपसंहार]

एक वाक्य हम सदा सुनते आए हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, किंतु क्या हमने कभी इस वाक्य की अर्थव्याप्ति पर ध्यान दिया हैं? हम छोटे-से सूक्त्यात्मक वाक्य के चाहे जितने भी अर्थ खींचते जाएँ, किंतु इतना तो स्पष्ट ही है कि मनुष्य की सारी विकास-कथा उसके समाज की सुनहली पटभूमि पर ही विनिर्मित हुई है। जल में कुछ काल रहने के पश्चात् भले ही मत्स्यशिशु स्वयमेव संतरण जान जाए, नीड़ में कुछ समय बिताने के बाद विहगकुमार भले ही व्योमविहार आरंभ कर दे, किंतु मानव तो बिलकुल लोथ बनकर पड़ा रहेगा, यदि उसे चलना न सिखाया जाए, वह बिलकुल निर्वाक् हो जाएगा, यदि उसे बोलना न सिखाया जाए। वह सारे शिष्टाचारों से अनभिज्ञ—सारी विद्याओं से विरहित एक ऐसा प्रस्तरखंड बन जाएगा कि उसे सृष्टि का शिरोभूषण कौन स्वीकार करेगा? मानव विधाता की सारी सर्जनाओं की मुकुटमणि है, इसका कारण उसका समाज है। अतः, जिस समाज ने हमें मानव कहलाने का अधिकार ही नहीं दिया, वरन् सृष्टि का सर्वोत्तम वरदान बनने के अनुकूल बनाया, उसके प्रति हमारा कितना उत्तरदायित्व है, इसे हमें कदापि नहीं भूलना चाहिए।

वस्तुतः, वही मानव मानव है, जिसके प्राणों में समाजसेवा का दिव्य संगीत अहरह गूँजता रहता है, जिसकी नस-नस में समाजसेवा का मंगलवाद्य बजता रहता है। धन-संपत्ति, शारीरिक सुख और मान-बड़ाई आदि के प्रलोभन से समाजसेवा करना कतई उचित नहीं। आसक्ति और अहंकार से युक्त समाजसेवा कदर्थित हो जाती है। इसीलिए, विनोबा भावे ने ठीक ही कहा है कि सेवावृत्ति जितनी निरहंकार रहेगी, उतनी ही उसकी कीमत बढ़ेगी। सेवा ही वास्तविक संन्यास है। 'संन्यासी केवल अपनी मुक्ति का इच्छुक होता है, पर सेवाव्रतधारी अपने को परमार्थ की बलिवेदी पर चढ़ा देता है'—महान उपन्यासकार प्रेमचंद ने ठीक ही कहा है। अतः, अहंकारशून्य होकर एवं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैयक्तिक लाभ को ध्यान में न रखकर ही समाजसेवा श्रेयस्कर है। हमारे मन-प्राणों से यदि यह अनुगूँज अनुक्षण निकलती रहे, तो क्या कहना !—

जब लगे तब हाथ परहित में लगे,
है जनमता जीवन जनहित के लिए।
लोक क्या परलोक भी बन जायगा,
जी लगाकर लोक की सेवा किए॥
धन कमाएँ तो करें उपकार भी,
यह अगर है काल तो वह लाल है।
धन तजे पर लोकसेवा तज न दें,
हाथ की यह मैल है, वह माल है॥

—हरिऔध

समाजसेवा का पथ कोई कुसुमपथ नहीं है, वरन् यह तो अनलपथ है। गोस्वामीजी ने ठीक ही कहा है—'सेवा धरम कठिन जग जाना।' समाजसेवी को बहुत-कुछ छोड़ना पड़ता है। उसे वैयक्तिक लाभ के बहुत-सारे झरोखे बंद करने पड़ते हैं। उसे भोगविलास का पृथुल पर्यंक छोड़ना पड़ता है और काँटों का ताज पहनना पड़ता है। लोकरंजन के लिए श्रीराम ने अपनी नयनशलाका, हृदयकौमुदी, आसन्नप्रसवा सीता तक का परित्याग किया था, क्या हम नहीं जानते ? समाजसेवा के लिए भगवान कृष्ण, महात्मा ईसा, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी तथा मार्टिन लूथर किंग ने न मालूम कितनी बार जहर का प्याला पिया था, क्या यह बात हमसे छिपी है ? किंतु, इस समाजसेवा के कंटकाकीर्ण मार्ग को वही अपना सकता है, जिसने समाजसेवा को ईश्वरसेवा का पर्याय मान लिया है।

समाजसेवा का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है। इसका आरंभ हमारे घर से होता है और यह गाँव तथा नगर से बढ़ते-बढ़ते राज्य की सीमा तक पहुँच जाता है। इतना ही नहीं, राज्य के प्राचीरों को लाँघते हुए देश की परिधि तक पहुँच जाता है; बल्कि हम कह सकते हैं कि अपने दामन में यह सारे संसार को लपेट लेता है।

हमारे समाज में अज्ञानता की इतनी काई फैली हुई है, अंधविश्वास की ऐसी कुहेलिका छाई हुई है, भ्रष्टाचार की ऐसी बीमारी फैली हुई है कि समाजसेवी इनसे बचने के लिए शुतुरमुर्ग की तरह सर नीचा नहीं कर लेगा बल्कि वह इनके खिलाफ जेहाद बोलेगा। वह लोगों के बीच ऐसा वातावरण बनाएगा कि उनमें स्वयं प्रेरणा जगे, जागृति की लहर फैले। आज भी हमारे समाज में विधवा-प्रथा, दहेज-प्रथा, जाति-प्रथा, सांप्रदायिकता के विषैले कीटाणु फैल रहे हैं। समाजसेवी इन्हें नष्ट करने की जी-तोड़ चेष्टा करेगा। दीनता-दानवी के चंगुल में फँसे लोग भी परिवार-नियोजन करना पाप समझते रहे हैं; लाख-लाख बेकार श्रम को निकृष्ट मानकर अपनी बलिष्ठ भुजाओं पर विश्वास न कर मामूली नौकरियों के लिए दफ्तरों के दरवाजों पर दस्तक देते चल रहे हैं। समाजसेवी इनके विरुद्ध वातावरण तैयार करेगा। वह इनके विरुद्ध गोष्ठियों का आयोजन करेगा, वह लोगों को आत्मनिर्भरता की दीक्षा देगा।

अतः, सच्चा समाजसेवी अहर्निश अपने समाज से दुःख दैन्य, अशिक्षा, बीमारी को भगाने का भगीरथ प्रयत्न करता रहता है। वह सदा पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की चेष्टा में तल्लीन रहा करता है। वह जानता है कि व्यक्ति की एक-एक बूँद मिलकर ही समाज की सरिता बनी है, उसका एक-एक फूल मिलकर ही समाज का गजरा बनता है, उसकी एक-एक लौ से ही समाज का ज्योतिपर्व सजता है। समाज में एक वर्ण ऐसा है, जिसके पास भूख से अधिक भोजन है तथा दूसरा ऐसा, जिसके पास भोजन से अधिक भूख है। जब तक यह स्थिति बनी रहेगी, तब तक समाज सुखी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं हो सकता। समाज में संतुलन और सच्चा समाजवाद लाने के लिए एक सच्चे समाजसेवी को सूली पर झूल जाने में भी संकोच नहीं होगा। यदि उसने मुरझाए ओठों पर मुस्कराहटों की चाँदनी बिछा दी, यदि बुझी-बुझी आँखों में प्रसन्नता की मंदाकिनी बहा दी, तो इसे वह अपना अहोभाग्य समझेगा। यदि उसने एक प्यासे को पानी पिला दिया, तो इसे वह अपना पितृतर्पण समझेगा, यदि उसने एक भूखे की भूख मिटा दी, तो इसे वह पिंडदान समझेगा, यदि वह किसी पंगु की बैसाखी बन सका, तो अपने जीवन की सार्थकता समझेगा, यदि वह किसी अंधे की लाठी बन सका, तो अपना भाग्य सराहेगा।

अतः, हमें सदा स्मरण रखना चाहिए कि अच्छा समाज शरीर जैसा है। यदि उसका एक अंग दुर्बल या पीड़ित है, तो उसका सारा शरीर दुर्बल और पीड़ित रहेगा। यदि कहीं, एक स्थान पर रक्त-प्रवाह रुक जाए, तो संपूर्ण शरीर का अस्तित्व संदेहजनक हो जाएगा। अतः, हम अपने को समाज से काटकर सोचने की आदत छोड़ें। समाजसेवा वस्तुतः और कुछ नहीं, स्वयंसेवा ही है। यदि हम अपना कल्याण करना चाहते हैं, तो समाजसेवा, के अनुष्ठान को अपनी हर साँस में बसा लें। स्वामी रामतीर्थ ने ठीक ही कहा है—"तुम समाज के साथ ही ऊपर उठ सकते हो और समाज के साथ ही तुम्हें नीचे गिरना होगा। यह तो नितांत असंभव है कि कोई व्यक्ति अपूर्ण समाज में पूर्ण बन सके। क्या हाथ अपने-आपको शरीर से पृथक् रखकर बलशाली बन सकता है? कदापि नहीं।"

महँगाई

[प्रारंभ, स्वरूप, समस्याएँ, उपसंहार]

महँगाई !

सुरसा की तरह मुँह फैलाती महँगाई। रक्तप की तरह रक्त चूसती महँगाई।

जिधर जाइए, जहाँ जाइए, आम आदमी की जिह्वा पर मँहगाईरूपी काल-सर्पिणी की चर्चा आपको सुनाई पड़ेगी। महँगाई की मार से बचे लोगों की संख्या बहुत कम है। बड़े-बड़े धन्नासेठों, मुनाफाखोर व्यापारियों, ठेकेदारों, घूसखोर अफसरों, तुंदिल तस्करों और भ्रष्ट राजनेताओं को छोड़कर भारतवर्ष का शेष संपूर्ण जनजीवन महँगाई की चक्की में पिस रहा है। उत्तम भोजन, उत्तम वसन और उत्तम निकेतन तो दूर की कौड़ियाँ हैं, महँगाई के कारण सामान्य जनों को दो वक्त की रोटी नसीब नहीं। तन ढकने के लिए कपड़े और सर छिपाने के लिए छत का सहारा भी महँगाई ने दूभर कर रखा है। करोड़ों लोग पशुवत् जीवन बिता रहे हैं, आदमी होकर भी आदमी से बदतर जिंदगी पाल रहे हैं। कहा जाता है कि रामराज्य में बिना मूल्य वस्तुएँ बाजार में उपलब्ध हो जाती थीं। मुगलों और अँगरेजों के शासनकाल में भी एक रुपए में बीस-पचीस सेर अनाज तथा पाँच-छह आने में एक गज कपड़ा मिल जाता था, लेकिन आज की स्थिति ऐसी हो गई है कि आदमी कीमतों के सामने बौना हो गया है। आजादी के पूर्व चीन में मुद्रास्फीति का एक ऐसा दौर आया था कि लोग एक बोरा नोट ले जाते थे और एक जोड़ा जूता खरीद लाते थे। हमारे यहाँ भी यही हालत न हो जाए,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को एक उपहार देने की पेशकश की, जिसे 'नई शिक्षानीति' की संज्ञा दी गई। शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन की बात तो आजादी के बाद से लगातार की जाती रही है, किंतु व्यापक सुधार के लिए सरकारी स्तर पर पहली बार कुछ ठोस कदम उठाने का निर्णय किया गया है।

प्रधानमंत्री बनने के तुरत बाद जनवरी, 1985 में श्री राजीव गाँधी ने राष्ट्र के नाम अपने संदेश में कहा था कि वह वर्तमान शिक्षा-पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन करेंगे। नौकरी से डिग्री को अलग करने की उनकी योजना के पक्ष-विपक्ष में विभिन्न दलीलें दी जा रही हैं। कुछ विद्वान जहाँ डिग्री को नौकरी से अलग करने के लिए उतावले प्रतीत हो रहे हैं, वहीं कई अन्य इसके विरुद्ध चेतावनियाँ दे रहे हैं। जहाँ तक राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा में एकता लाने और क्षेत्रीयता समाप्त करने की बात है, उसका एक स्वर से स्वागत किया गया है। प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में कहा था कि शिक्षा को हमारी राष्ट्रीय एकता में सहायक होना चाहिए। इसमें नैतिकता और आचारों का समावेश होना चाहिए। इन कार्यों को सफल बनाने के लिए पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन करना चाहिए।

1968 ई० में केंद्रीय सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षानीति पर प्रस्ताव पारित कर जिन मुद्दों पर विशेष बल दिया था, उनमें प्रमुख मुद्दे थे—14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा, शिक्षकों के वेतन तथा स्तर की रक्षा के हेतु सतर्कता, प्रतिभाओं की पहचान कच्ची उम्र से ही करके उनके विकास के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराना, कार्यानुभव तथा राष्ट्रीय सेवा को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाना, पाठ्यपुस्तकों का सभी स्तरों पर संशोधन एवं सुधार, एकरूप शिक्षा-पद्धति लागू करने की दृष्टि से 10 वर्ष की सामान्य शिक्षा-व्यवस्था, इसके बाद दो वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा तथा 3 वर्ष का डिग्री-पाठ्यक्रम लागू करना। इस प्रस्ताव में देश में साक्षरता बढ़ाने हेतु शिक्षकों एवं छात्रों को साक्षरता-अभियान में शामिल करने तथा युवकों को स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षित करने की भी योजना थी। इसके अलावा विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए व्यापक आधार प्रस्तुत करते हुए पूर्णकालिक छात्रों को प्रमुखता प्रदान की गई।

लेकिन, पिछले कुछ वर्षों की घटनाएँ, खासकर उच्च शिक्षा के संदर्भ में हमें बेहद निराश करती हैं। ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं कि विद्या के इन मंदिरों का नियंत्रण विद्वज्जनों के हाथों से निकलकर तथाकथित राजनेताओं के भक्तों के हाथों में चला गया है। यही कारण है कि आज शिक्षा-जगत् तथा शैक्षणिक संस्थानों की स्वायत्तता समाप्ति की ओर अग्रसर है। योग्य छात्रों के रास्ते में आरक्षण की दीवार खड़ी है। सरस्वती के मंदिरों में राजनीतिक दलों के प्रवेश ने गुटबाजी को बढ़ावा दिया है। और तो और, शिक्षक-संघों के पदाधिकारियों की भाषा भी उद्दंड छात्रों की तरह बेलगाम होती जा रही है। परीक्षाएँ साल-सालभर चलती हैं। पढ़ाई के नाम पर शून्य घिरता जा रहा है। सामूहिक नकल, परीक्षा-परिणामों की घोषणा में देर, परीक्षकों को डराना-धमकाना, छुरा-घोंपना, गोली मारना आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे मेधावी छात्रों के सामने प्रश्नचिह्न तिरता जा रहा है।

विश्वविद्यालयी शिक्षा-पद्धति का स्तर क्रमशः ह्रास की ओर अग्रसर है, जिससे शिक्षाविदों के समक्ष परेशानी का धुँधलका बढ़ता जा रहा है।

ऐसी स्थिति में एक नई विकसित शिक्षानीति लागू की जाने की आवश्यकता पर बल दिया जाना आवश्यक है। लेकिन, कुछ लोगों का कहना है कि 15 अगस्त, 1985 को तत्कालीन केंद्रीय शिक्षामंत्री कृष्णचंद्र पंत ने 'शिक्षा की चुनौतियाँ' नामक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपने नए दृष्टिकोण के जिस मशविरे को पेश किया, उसमें कोई चीज ऐसी नहीं है, जिसे नई कहा जा सके। शिक्षा के बिना जीवन अधूरा ही नहीं, अजीवन है, लेकिन अन्य क्षेत्रों की नाँई चूँकि हम इस क्षेत्र में भी अपने प्राचीन आदर्शों से विमुख हो गए हैं, इसलिए हमारी शिक्षा-नीतियाँ भी दिशाहीन हो गई हैं और शिक्षानीति का मसौदा भी इसका अपवाद नहीं है।

शिक्षा का अर्थ होता है—नई पीढ़ी में नई सामाजिक चेतना जागरित करके उसे भविष्य की जिम्मेवारियों को वहन करने की बौद्धिक क्षमता प्रदान करना और उसका ऐसा मानसिक विकास करना, जो उसे राष्ट्र की बहुआयामी प्रवृत्तियों के संचालन की योग्यता प्रदान कर सके। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर भारत में जो शिक्षानीति निर्धारित की गई, वह इन लक्ष्यों की पूर्ति में पूर्णतः विफल रही। इस तथ्य को संसद में पेश किए गए मसौदे में भी स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिए, प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल शिक्षाव्यय का 56 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा के लिए रखा गया था, छठी पंचवर्षीय योजना में यह घटकर 36 प्रतिशत रह गया। आजादी के तुरत बाद देश में 30 करोड़ लोग अनपढ़ थे, आज 43.7 करोड़ अनपढ़ हैं। यही गति रही, तो इस शताब्दी के अंत तक भारत में 50 करोड़ से अधिक अनपढ़ होंगे।

इन विषम परिस्थितियों में नौकरियों को डिग्री से पृथक् करना, राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय की स्थापना तथा केंद्रीय विद्यालय-पद्धति का प्रत्येक जिले में विस्तार आदि ऐसी कई अन्य बातें हैं, जिनपर जोर देकर राजीव गाँधी ने स्वागतयोग्य कदम उठाए थे। राजीवजी ने शिक्षा को सर्जनशील बनाने पर भी जोर दिया था। उनका कहना था कि व्यावसायिक शिक्षा का पुनर्घटन कर उसे उद्योग और कृषि से पृथक् रखा जाए। नई संचार तकनीक को विद्यालयों में लागू करने का भी उन्होंने सुझाव दिया था। ये सुझाव कहाँ तक उपयोगी होंगे, यह तो भविष्य ही बताएगा, किंतु इतना जरूर कहा जा सकता है कि इन सुझावों से शिक्षापद्धति में सुधार करने पर जोर देनेवालों को एक नैतिक बल मिला है; क्योंकि आज की शिक्षा एक तो उद्देश्यहीन है, दूसरे महँगी भी। शिक्षा तो ऐसी होनी चाहिए, जो सर्वसुलभ हो और व्यक्ति के मन को सुसंस्कृत कर सके और उसे स्वावलंबी तथा सर्वसुलभ बना सके। यह तभी संभव है, जब शिक्षा-प्रणाली वस्तुपरक और आत्मपरक—दोनों पद्धतियों पर आधृत हो और शिक्षा का माध्यम पूर्णरूपेण भारतीय भाषाएँ हों।

भारत इक्कीसवीं शती की ओर

[प्रस्तावना, आवश्यकता, उपसंहार]

श्री राजीव गाँधी ने भारत को इक्कीसवीं शती की ओर ले जाने की तैयारी करने की बात कही थी। इसके लिए उन्होंने आधुनिक तकनीक, कंप्युटर, इलेक्ट्रॉनिक्स, बायो-इंजीनियरिंग और अंतरिक्ष-विज्ञान में प्रगति करने की चर्चा उठाई थी। उनका विश्वास था कि सभी क्षेत्रों में उच्चतम तकनीक तथा श्रमशक्ति में आधुनिकीकरण अपनाकर देश को इक्कीसवीं शती की चुनौतियों के लिए तैयार किया जा सकता है। कुछ लोगों ने इक्कीसवीं शती में देश को ले जाने की बात को लालीपॉप की संज्ञा दी है और उनका कहना है कि जो देश बीसवीं शती में प्रगति के स्तर पर ही नहीं पहुँच

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सका, उसे इक्कीसवीं शती में ले जाने की बात करना महज एक खयाली पुलाव है। लेकिन, ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि नौ वर्षों में ही संसार इक्कीसवीं शती में प्रवेश करने जा रहा है और इसके लिए भारत तैयार रहे अथवा नहीं ?

क्यों न हम एक ऐसी शती की कल्पना करें, जिसमें हाथ का, पैर का काम करना कोई शर्म की बात नहीं होगी; बल्कि जिसमें सबको रचनात्मक काम उपलब्ध होगा। क्यों न हम एक ऐसा संसार रचें, जिसमें सबको न केवल रोटी, कपड़ा और मकान जैसी आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त होंगी, बल्कि हर प्रकार से आत्मविश्वास और आत्मोन्नति का अवसर भी मिलेगा। कुछ ऐसे प्रयास करें जिससे—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्॥

की स्थिति आ सके। यह कल्पना निश्चय ही विज्ञान-विरोधी नहीं है। यह कल्पना पूरी हो जाए, तो फिर यही शती इक्कीसवीं शती होगी।

राजीव गाँधी की कल्पना की इक्कीसवीं शती के विषय में कुछ लोग ऐसा चित्र खींचते हैं, कि उस समय हर घर में कंप्यूटर होगा। यदि बाजार का हिसाब करना हो तो कंप्यूटर से कीजिए, विवाह के लिए वर-वधू खोजना हो तो कंप्यूटर से खोजिए। सुबह कंप्यूटर आपको जगा देगा और दिनभर के कार्यों की याद दिला देगा। फिर, दफ्तर जाने की आवश्यकता ही क्या रह जाएगी ? आप जो फाइल चाहें, कंप्यूटर पर देख लें और तत्काल उसपर कार्यवाही कर डालें। रही खाने-पीने की बात, तो बटन दबाते ही कंप्यूटर बता देगा कि आज आपको कितने कैलोरी प्रोटीन आदि लेने हैं। फिर, दूसरा बटन दबाइए, तो उन सब तत्त्वों से बने गर्म-गर्म पेय का ग्लास आपके सामने हाजिर हो जाएगा।

कुछ लोग कल्पना करते हैं कि इक्कीसवीं शती में केवल अंतरिक्ष में उड़ानें होंगी। वह युग बड़े-बड़े नगरों का होगा। सब ओर बहुमंजिली इमारतें होंगी। खेतों का सब काम ट्रैक्टरों, कंबाइनों और रोबोटों से होगा। हर चीज विशालकाय कारखानों में बनेगी जिनमें इलेक्ट्रॉनिक मानव (रोबोट) कार्यरत होंगे। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए जगह-जगह अस्पताल होंगे। इनमें कार्यरत डॉक्टर जटिल मशीनों की सहायता से अपने कार्य दक्षतापूर्वक कर सकेंगे। जैसे ही कोई रोगी अस्पताल में आएगा, उसके हृदय, मस्तिष्क, फेफड़ों, स्नायुओं आदि से मिलनेवाले विद्युत्-संकेत तुरंत रेकार्ड कर लिए जाएँगे। आवश्यकतानुसार रक्त, थूक, मल, मूत्र आदि की जाँच और एक्स-रे के परिणामों को भी मिलाकर आनन-फानन निदान हो जाएगा। फिर, बटन दबाते ही उपयुक्त दवा की गोलियाँ गिरने लगेंगी अथवा लेसर-किरणों से उसका बैठे-बिठाए ऑपरेशन हो जाएगा।

हमारे देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि बीसवीं शती में प्रवेश के समय यह परतंत्र था और परतंत्रता की ये बड़ियाँ हमें सदियों से जकड़े हुई थीं। अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में यूरोप और अमेरिका में वैज्ञानिक, औद्योगिक क्रांतियाँ हुईं, उनमें भारत साझीदार न हो सका। बीसवीं शती में प्रवेश के समय जब पाश्चात्य देशों में मोटर, विमान, जलयान, आग्नेयास्त्र, इस्पात, पेट्रोल, विद्युत् और मशीनों के विशाल कारखाने निर्मित हो चुके थे, भारत सूई बनाने में भी सक्षम नहीं था। विज्ञान और औद्योगिक क्रांति के संदर्भ में भारत अठारहवीं शती में था। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में उसे राजनीतिक स्वतंत्रता मिली और केवल पैंतालीस वर्षों में उसने सूई बनाने की अक्षमता से छलांग लगाकर रॉकेट-निर्माण की स्थिति प्राप्त कर ली। बैलगाड़ी चलती रही, किंतु उसके निर्मित उपग्रह अंतरिक्ष में भी घूमने लगे। निश्चय ही, भारत की यह आधुनिक यात्रा उत्साहवर्द्धक रही। विश्व के वैज्ञानिक जगत् में तीसरा, औद्योगिक जगत् में दसवाँ,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परमाणु-ऊर्जा में छठा तथा अंतरिक्ष विज्ञान में पाँचवाँ स्थान प्राप्त करने में भारत ने सफलता प्राप्त की। दरिद्रता के कीचड़ में सनकर भी देश ने परमाणु-जगत्, अंतरिक्ष-अनुसंधान, अंटार्कटिका-अभियान, कंप्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स, टी० वी०, रॉकेट, उपग्रह आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय स्थान बनाया। विकसित राष्ट्रों की बीसवीं शती के स्तर पर न पहुँचते हुए भी भारत ने इक्कीसवीं शती के दरवाजे पर दस्तक देना अवश्य शुरू कर दिया है।

इक्कीसवीं शती में भारत की आबादी एक सौ करोड़ होगी और पचास करोड़ युवाओं की शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ेगी। संभवतः, इसी स्थिति को ध्यान में रखकर नई शिक्षानीति बनाई जा रही है और नौकरी के लिए डिग्री की अनिवार्यता समाप्त करने की बात है। उस समय तक शिक्षित बेरोजगारों की संख्या दो करोड़ हो जाने की संभावना है। इसीलिए रोजगारपरक शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है। भारत को इस आर्थिक परिस्थिति से जूझने के लिए केवल तेरह वर्ष शेष रह गए हैं। ऐसी स्थिति में—कैसी होगी इक्कीसवीं शती और कैसे बढ़ेंगे हम उसकी ओर—यह बहुत-कुछ इसपर निर्भर है कि हम चाहते क्या हैं? हमारा सपना क्या है और उस सपने को साकार करने की दिशा में हमारी सक्रियता कितनी अधिक रहेगी?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विचार-विवरण-संबंधी निबंध

हमारा देश : भारतवर्ष

[आरंभ, महत्ता, विदेशियों की धारणा, उपसंहार]

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

—जयशंकर प्रसाद

हम सचमुच भाग्यवान हैं कि हमारा जन्म स्वर्ग से भी सुभगतर भारतवर्ष में हुआ। स्वर्ग के अपरिमित भोग भोगनेवाले, उन्मुक्त विलासी देवगण भी जिस भारत की मिट्टी में लोटने के लिए तरसते हैं, जिसकी प्रशंसा के गीत अनवरत गाते हैं, वही प्रकृति का पावन पालना हमारा देश भारतवर्ष है। 'विष्णुपुराण' कहता है—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि।
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

हमारे देश का भौगोलिक विस्तार मानो विधाता की कलाकारिता का अद्भुत नमूना है। इसका मुकुट हिमधवल हिमालय है, तो हीरकहार गंगा-ब्रह्मपुत्र। इसके कटिप्रदेश में कृष्णा, कावेरी, नर्मदा, और ताप्ती की मणिमालाएँ शोभती रहती हैं। इसके चरणों को हिंद महासागर अपनी फेनिल लहरों के अनगिन हाथों से पखारता रहता है। पूर्वी और पश्चिमी घाट के पर्वतसमुदाय अपने वृक्षरूपी संतरियों से इसकी सेवा के लिए सदा तत्पर रहते हैं।

यहाँ कभी एक ऋतु की कठोरता का कोपभाजन नहीं होना पड़ता। बारी-बारी से आधी दर्जन ऋतुएँ आती हैं और अपनी सुषमा लुटाकर चली जाती हैं; एकरसता दूर करती रहती हैं। इन सारी विशेषताओं को 'निरालाजी' ने 'भारत-वंदना' नामक कविता में एकत्रीभूत किया है—

भारत जय, विजय करे
कनक-शस्य-कमल धरे।
लंका नभतल-शतदल
गर्जितोर्म्मि सागरजल
धोता शुचि चरणयुगल
स्तव कर बहु अर्थ-भरे।
तृण-तृण वन-वातावरण
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार
प्राण-प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शतमुख-शतरव मुखरे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमारा देश देवों का दुलारा, प्रकृति का प्यारा ही नहीं, लक्ष्मी का लाड़ला भी रहा है। इस देश की धरती सोने की बनी रही, नीलम का आसमाँ रहा। इस देश की नदियाँ रजत-वर्षिणी रहीं। इस देश पर अभाव की काली छाया कभी मँडराती नहीं थी, दारिद्र्य के राक्षस ने कभी इसका गला दबोचा नहीं था। यहाँ के निवासी की आँखों में हर क्षण आशा का प्रत्यूष छलकता रहता था, जीवन में हर क्षण वसंत मुस्कराता रहता था, प्राणों में इंद्रधनुष मचलता था। यहाँ अन्न, जल, फूल, फल, मेवा, मिष्टान्न का कुबेरकोष था।

भारत इसलिए भा-रत है कि यह वेदों उपनिषदों, महाभारत और रामायण की भूमि है। इसने दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान के ऐसे अनमोल कोहेनूर दिए हैं कि उनका मुकाबला संसार में नहीं है। एक ओर गौतम, कणाद, कपिल, शंकर, निंबार्क, चैतन्य, रामानुज हैं, तो दूसरी ओर वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, कबीर, रहीम और तुलसीदास—इस प्रकार हमारे देश के दर्शन और साहित्य की विजय-वैजयंती संसार में सबसे ऊँचे फहरा रही है। ''भारत केवल हिंदूधर्म का घर नहीं है, वरन् यह संसार की सभ्यता की आदिभूमि है''—जैसा कि काउंट जोन्स जेनी ने लिखा है। रोम्या रोलाँ ने कहा है—''अगर संसार में कोई एक देश है, जहाँ जीवित मनुष्य के सभी सपनों को उस प्राचीन काल से जगह मिली है, जबसे मनुष्य ने अस्तित्व का सपना प्रारंभ किया है, तो वह भारत है।'' मैक्समूलर ने लिखा है—''यदि हम संपूर्ण विश्व की खोज करें ऐसे देश का पता लगाने के लिए, जिसे प्रकृति ने सर्वसंपन्न, शक्तिशाली और सुंदर बनाया है, तो मैं भारतवर्ष की ओर संकेत करूँगा। यदि मुझसे पूछा जाए कि किस आकाश के नीचे मानव-मस्तिष्क ने मुख्यतः अपने गुणों का विकास किया, जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या पर सबसे अधिक गहराई के साथ सोच-विचार किया और उनमें कुछ ऐसे रहस्य ढूँढ़ निकाले, जिनकी ओर उन्हें भी ध्यान देना चाहिए, जिन्होंने प्लेटो और कांट का अध्ययन किया है, तो मैं भारतवर्ष की ओर संकेत करूँगा। यदि मैं अपने-आप से पूछूँ कि किस साहित्य का आश्रय लेकर हम यूरोपीय, जो बहुत-कुछ केवल यूनानियों, रोमनों और एक सेमेटिक जाति के, यानी यहूदियों के विचार के साथ पले हैं—वह सुधारक वस्तु प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी हमें जीवन को अधिक पूर्ण, अधिक विस्तृत और अधिक व्यापक बनाने के लिए आवश्यकता है—न केवल इस जीवन के लिए, अपितु एकदम बदलते हुए और अनंत जीवन के लिए—तो मैं फिर भारतवर्ष की ओर संकेत करूँगा।''

केवल धर्म, संस्कृति, अध्यात्म और साहित्य ही नहीं, वरन् विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत ने संसार का मार्गदर्शन किया है। एक अमेरिकन विद्वान डेलवर ने न्यूयार्क के 'इंडियन रिव्यू' में इसे स्वीकार किया है कि पश्चिमी संसार को जिन बातों पर अभिमान है, वे असल में भारतवर्ष से ही वहाँ गई हैं। और तो और, तरह-तरह के फल-फूल, पेड़-पौधे, जो इस समय यूरोप में पैदा होते हैं, हिंदुस्तान से ही लाकर वहाँ लगाए गए थे। मलमल, रेशम, घोड़े, टिन और इनके साथ-साथ लोहे और शीशे का प्रचार भी यूरोप में भारत से ही हुआ। केवल इतना ही नहीं, ज्योतिष, वैद्यक, अंकगणित, चित्रकारी और कानून भी भारतवासियों ने ही यूरोपवालों को सिखाया।

इसलिए हमारे कवियों ने भी भारतभूमि की इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख किया है। सियारामशरण गुप्त के अनुसार, संसार के सभी देशों ने हमारे देश से ही सदुपदेश-पीयूष का पान किया—

> है क्या कोई देश यहाँ से जो न जिया है?
> सदुपदेश-पीयूष सभी ने यहाँ पिया है।
> नर क्या, इसको अवलोक कर कहते हैं, सुर भी वही
> जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारत-मही।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार सारे संसार में हमारी समता का और कोई देश नहीं था—

देखो, हमारा विश्व में, कोई नहीं उपमान था।
नरदेव थे हम और भारत देवलोक-समान था

भारत का अतीत जितना भव्य था, उतना ही इसका वर्तमान और भविष्य भी भव्य रहेगा, ऐसी आशा की जाती है।

विज्ञापन

[आरंभ, महत्त्व, उपसंहार]

सुहानी सुबह लिहाफ में लिपटा कोई ज्योंही श्रुतिमधुर सुनना चाहता है, तो उसके कानों में गानों की चाशनी में पगा हुआ स्वर सुनाई पड़ने लगता है—"यदि आपके मुँह से दुर्गंध आती है, यदि आपके दाँतों में सड़न है, यदि आप अपने दाँतों को दूध की तरह सफेद देखना चाहते हों, तो झटपट मुलायम झागवाले 'बिनाका' टूथपेस्ट का इस्तेमाल करें। दिनभर की तरोताजगी के लिए 'बिनाका' टूथपेस्ट ही नहीं, बल्कि बिनाका टूथब्रश भी।"

फिर, हमारे कानों में तरह-तरह की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं—'जानते हैं, आपकी मनपसंद तारिका अपनी सुंदरता का राज क्या बताती हैं?—लक्स, ट्वायलेट ! बालों को झड़ने से कौन बचाता है—जी हाँ, सदा सुगंधित टाटा कोकोनट हेयर ऑयल ! और हाँ, लाखों की मनपसंद, दिलकश सिगरेट सीजर्स !"

घर से बाहर निकलिए, तो लंबे-लंबे हृदयहीन लौह लैंपपोस्टर, हर क्षण दुर्गंध पीती हुई बेपनाह दीवारें, भागती हुई खचाखच भरी बसें और ट्रामें—सब-की-सब अपने सीने में भड़कीले, रंग-बिरंगे पोस्टर चिपकाए कभी पहलवान छाप बीड़ी' तो कभी दिलदार हुसैन जर्दा, कभी 'सनलाइट साबुन' और कभी सिनेमा, कभी सर्कस के विज्ञापन से आपकी नजरों को अपनी ओर जबरदस्ती खींच रही हैं। चिल्लाते हुए लाउडस्पीकर आपके कानों में कभी भक्तप्रह्लाद फिल्म, कभी फुटबॉल मैच, कभी दंगल के विज्ञापन उड़ेल रहे हैं। कभी ठहरने और भोजन का उत्तम प्रबंध करनेवाले होटलवाले, कभी सिरदर्द की दवावाले, कभी हाजमा दुरुस्त करनेवाले, कभी लॉटरी का टिकट बेचनेवाले अपनी छपी हुई सूचनाएँ आपके हाथ, आपके रिक्शे या आपकी मोटरों में फेंकते चले जा रहे हैं।

और, शाम को ऊँचे मकानों पर विद्युत की करामात के रंग-बिरंगे अक्षरों और रेखाओं में चित्रित साइकिल, फिलिप्स रेडियो, उषा सिलाई-मशीन, पनामा सिगरेट, विलक्रीम, सन्फरॉइज्ड कपड़े, बाटा के जूते, बोर्नविटा आदि के प्रचार आपसे आँख-मिचौनी कर रहे हैं। यानी, सुबह से शाम तक आपकी आँखों के सामने, आपके कानों में ज्ञात या अज्ञात रूप से किसी-न-किसी वस्तु का प्रचार पहुँचाया जा रहा है, चाहे वह दैनिक पत्र हो या साप्ताहिक पत्रिका, चाहे वह रेडियो हो या टेलीविजन, चाहे सिनेमा हो या प्रदर्शनी—हर घड़ी, हर क्षण, विज्ञापन, आपका पीछा करता चल रहा है। आपके अस्तित्व को हर ओर से इसने घेर लिया। आपके मन-प्राणों पर यह इंद्रजाल-सा छा गया है। और, आप विचार करें, तो लगेगा कि यह विज्ञान का युग नहीं, विज्ञापन का युग है। मानव के विधु-व्यक्तित्व को इस विज्ञापन-राहु ने ग्रस लिया है,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसकी साँसों पर हर क्षण यदि किसी का पहरा है, तो विज्ञापन का, उसकी चेतना पर यदि कोई मूर्च्छना काम कर रही है, तो विज्ञापन की। हमारी दृष्टि यदि किसी ने पूरी तरह वर्णांध कर दी है, तो विज्ञापन ने, हमारी जिह्वा पर यदि किसी का जाप चलता है, तो विज्ञापन का।

इस तरह, आधुनिक युग का यदि कोई सर्वाधिक उपयुक्त पर्याय है, तो विज्ञापनयुग। यदि आप विज्ञापन कला में विशारद हैं, तो सफलता आपके चरण चूमेगी। विज्ञापन द्वारा आप मिट्टी को सोना बना सकते हैं और सोने को मिट्टी। अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें बेकार हैं, यदि उनका विज्ञापन न हुआ, अच्छा-से-अच्छा आविष्कार व्यर्थ है, यदि उसे विज्ञापन न मिला, अच्छा-से-अच्छा विचार व्यर्थ है, यदि उसे विज्ञापन ने नहीं छूआ।

अतः यदि आपने विज्ञापन के सारे स्रोतों को नारंगी की तरह निचोड़ लिया है, तो आपकी सफलता निश्चित है। विज्ञापन के सम्मोहन से किसी का बच निकलना आसान नहीं। उसकी मोहनी से मुग्ध न होना किसी के लिए संभव नहीं। यही कारण है कि आज बड़ी-से-बड़ी कंपनियाँ विज्ञापन की नई-नई पद्धतियों का अन्वेषण करती हैं। उसके विशेषज्ञों पर रुपए पानी की तरह बहाती हैं। चित्र, कार्टून, मोहक अक्षर और बिजली की बत्ती, मूर्तियाँ, गुब्बारे, कैलेंडर आदि न मालूम कितने प्रकार से विज्ञापन किया जा रहा है। कभी किसी को ऊँट पर बैठाकर कभी डिब्बे का मकान बनाकर, कभी बौनों का जुलूस निकालकर विज्ञापन किया जाता है। कभी विधि-पद्धति से विज्ञापन किया जाता है, कभी निषेध-पद्धति से—'सिगरेट पीना मना है; हाँ, विल्स फिल्टर भी।' कभी किसी वस्तु को घटिया सिद्ध करने के लिए पाँच लाख इनाम घोषित किया जाता है, "तिलस्मी अँगूठी! जब तक आप पहनेंगे, आपकी प्रियतमा अगर रूठी हो, तो आपकी बाँहों में फौरन चिपक जाएगी। और हाँ, तावीज! जब तक आपकी बाँहों में रहेगा, तब तक आपकी आमदनी बढ़ती रहेगी, जब तक आप पहने रहेंगे, तब तक तंदुरुस्ती बनी रहेगी।"—इस तरह न मालूम, कितने झाँसे, कितने हथकंडे, कितने फरेबी वाक्यों का सहारा लेना पड़ता है, ताकि विज्ञापन का जादू काम कर सके। कुछ कंपनियाँ तो विज्ञापन के लिए इतने नग्न बीभत्स चित्र प्रदर्शित करती हैं कि अनेक की वासनाएँ जागरित हो उठती हैं और वे उन वस्तुओं के क्रय के लिए विवश हो उठते हैं।

किंतु, विज्ञापन का केवल कृष्णपक्ष नहीं, शुक्लपक्ष भी है। विज्ञापन का अर्थ है, विशेष ज्ञापन—विशेष ज्ञान करा देना। यदि विज्ञापन न हो तो हमारा पर्याप्त अकल्याण हो सकता है। कैंसर की कोई नई औषधि निकली—विज्ञापन के बिना उसकी जानकारी न रहने से हम उसके लाभ से वंचित रह जाएँगे। इस प्रकार, नवीन-से-नवीन अनुसंधान स्थानीय रह जाएँगे, यदि उन्हें विज्ञापन का सहारा न मिला। यदि विज्ञापन न हो, तो नियुक्तियों के रिक्त स्थानों का पता न चले, प्रोत्साहन के नए मार्ग न दिखें; ठेका, व्यवसाय और आपूर्ति के नए वातायन न खुलें। कोई इतिहास, दर्शन या साहित्य की ऐसी क्रांतिकारी पुस्तक निकली हो, जिससे विचारों में मंथन पैदा हो सकता है, ज्ञान के नए वातायन खुल सकते हों, सभ्यता की नई सड़क दीख सकती हो, मानव-मूल्यों के एक नए चरण का ज्ञान हो सकता हो और मानव-संबंधों की अभिनव योजना हो सकती हो, तो उसका भी पता हमें विज्ञापन से ही चलता है। अतः, विज्ञापन विज्ञान और कला की सुरभि को फैलानेवाला गंधवाह है। यह हमारी पद्धतियों का विस्तार करनेवाला सुहृदय है। यह माँग और पूर्ति के बीच सेतु है, वाणिज्य और व्यापार के धुरे को गतिशील रखने के लिए ग्रीज है। यह वह पंख है, जिसपर अनुसंधान का यान आसानी से चलता है। यह उत्पादन की रीढ़ और आपणन की आधारशिला है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतः, विज्ञापन अपने में श्वेत-श्याम कुछ नहीं है। यह तो मानवविवेक पर निर्भर करता है कि उसे हम किस पद्धति पर ले जाएँ। यदि हमने इसे धोखाधड़ी, मायाजाल, मृगमरीचिका तथा प्रवंचना का वाहन बनाया, तो मानव का अहित निश्चित है, किंतु यदि हमने इसे ज्ञान की परिधि विकसित करने, सहयोग बढ़ाने के साधन के रूप में काम लिया, तो इससे मानव का हित-ही-हित है।

पुस्तकालय

[भूमिका, महत्त्व, प्रकार, लाभ, उपसंहार]

पुस्तकालय का सरलार्थ है—पुस्तकों का घर (पुस्तक+आलय), किंतु इसका तात्पर्य पुस्तकों का गोदाम नहीं, वरन् ज्ञानकेंद्र है, जहाँ तरह-तरह के जिज्ञासु अपनी ज्ञान की पिपासा शांत करने के लिए पहुँचते रहते हैं। जबसे मुद्रणयंत्र का प्रसार हुआ, तबसे संसार में विभिन्न विषयों पर लाखों की संख्या में पुस्तकें छपने लगीं और इधर तो उनकी संख्या सुरसा-विस्तार पाती जा रही है। अतः, किसी भी धनकुबेर के लिए यह संभव नहीं कि एक विषय की सारी पुस्तकें वह खरीद सके, यदि खरीदना संभव भी हो जाए, तो बहुत-सी प्राचीन पुस्तकों का उपलब्ध होना संभव नहीं है। अतः, ज्ञान की गंगा सबके लिए उपलब्ध हो सके, परंपरा की चिंतन-संपदा सबको हस्तगत हो सके, इसके लिए पुस्तकालय की आवश्यकता हुई। अतः, आज पुस्तकालय किसी राष्ट्र के विद्यानुराग के मापकयंत्र बन गए हैं, उसकी सभ्यता और संस्कृति के दिक्सूचस यंत्र बन चुके हैं।

पुस्तकालय कई प्रकार के होते हैं—(1) सार्वजनिक पुस्तकालय (2) संस्थागत पुस्तकालय (3) वैयक्तिक पुस्तकालय (4) राजकीय पुस्तकालय (5) राष्ट्रीय पुस्तकालय (6) चलन्त पुस्तकालय। सार्वजनिक पुस्तकालय सभी लोगों के लिए खुला होता है, जबकि संस्थागत पुस्तकालय संस्थाओं से संबद्ध व्यक्तियों के लिए उपयोगी होता है। विद्यालय के पुस्तकालय केवल विद्यालय के छात्रों एवं शिक्षकों के लिए व्यवहरणीय होते हैं, तो महाविद्यालय-पुस्तकालय या विश्वविद्यालयी पुस्तकालय महाविद्यालय-विश्वविद्यालय के छात्रों-प्राचार्यों एवं विभागाध्यक्षों के लिए उपयुक्त हैं। इन पुस्तकालयों में बाहर के व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध होता है। वैयक्तिक पुस्तकालय विद्याव्यसनी के वैयक्तिक उपयोग के लिए होता है। संसार के बड़े-बड़े विद्वानों के निवास पर जाएँ, तो उनके यहाँ पुस्तकों का विशाल संग्रह मिलेगा। वे यह मानकर चलते हैं कि पुस्तकों के बिना घर आत्मा के बिना शरीर जैसा है। ऐसे महापुरुष अध्ययन के बाद अपने जीवन में ही अपना पुस्तकालय किसी संस्था को दान कर जाते हैं। महर्षि अरविंद ने वैयक्तिक पुस्तक-संग्रह बड़ौदा-विश्वविद्यालय को दान कर दिया। खुदाबक्श खाँ, सच्चिदानंद सिन्हा तथा डॉ॰ श्रीकृष्णसिंह के वैयक्तिक पुस्तकालय अब सार्वजनिक पुस्तकालय में परिणत हो गए हैं। हर राष्ट्र का अपना राष्ट्रीय पुस्तकालय भी होता है, जहाँ हर प्रकाशक को अपनी पुस्तकों की कम-से-कम दो प्रतियाँ निःशुल्क देनी पड़ती है और चेष्टा की जाती है कि देश का समस्त मुद्रित साहित्य अवश्य संगृहीत हो जाएँ।

इनके अतिरिक्त, हमारे यहाँ तथा विदेशों में अब चल पुस्तकालयों की व्यवस्था

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की गई है। मोटर पर पुस्तकें पाठकों के घर पहुँचाई जाती हैं। देहातों में बड़े पुस्तकालयों के न रहने से ग्रामीणों को पुस्तकें मिल नहीं पातीं। पुस्तक पढ़ने के लिए दूर नगरों में जाना भी समय और अर्थ की अपेक्षा रखता है। इसलिए ज्ञानगंगा केवल विशाल नगरों के जटाजाल में ही उलझकर न रह जाए, वह सामान्य जनजीवन में भी प्रवाहित हो, इसे ध्यान में रखकर ही चल पुस्तकालयों की योजना बनाई गई है।

पुस्तकालयों में पाठकों को बहुत कम पैसे सदस्यता-शुल्क के रूप में देने पड़ते हैं और उन्हीं थोड़े पैसों में सालभर पुस्तकें पढ़ी जा सकती हैं। अनुक्रमपत्रक (Index Card) लेखकवार या पुस्तकवार बना होता है। एक पुर्जे पर माँग उपस्थित करने पर दस-पंद्रह दिनों के लिए पुस्तकें प्राप्त हो जाती हैं। बड़े-बड़े पुस्तकालयों में दस-बीस पुस्तकें एक साथ निकासी कराकर वहीं बैठकर पढ़ने की भी व्यवस्था होती है। वाचनालय में पत्र-पत्रिकाओं का अलग विभाग ही होता है, जहाँ नई-नई पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ी जा सकती हैं।

ऐसे पुस्तकालयों में संदर्भ-अनुभाग (reference section) भी होता है। इस अनुभाग में बहुमूल्य विश्वकोष, भिन्न-भिन्न प्रकार के कोषग्रंथ और संदर्भग्रंथ होते हैं, जो घर ले जाने के लिए नहीं दिए जाते हैं। वहीं बैठकर पढ़ने की व्यवस्था रहती है। इनके अतिरिक्त, पांडुलिपि-विभाग (manuscript section) भी होता है, जहाँ दुर्लभ अमुद्रित हस्तलेख सुरक्षित रहते हैं। शोध करनेवालों के लिए संदर्भ और हस्तलिपि-विभाग बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं।

जिस प्रकार किसी मंदिर में प्रवेश करते ही नास्तिक का मन भी देवमूर्ति के अभिवादन के लिए मचल उठता है, उसी प्रकार पुस्तकालय में प्रवेश करते ही अध्ययन में अरुचि रखनेवाले व्यक्ति का भी मन ज्ञानार्जन के लिए उत्सुक हो उठता है। पुस्तकालय वह महासागर है, जहाँ भिन्न-भिन्न दिशाओं से ज्ञानसरिताएँ आकर मिलती हैं। युग-युग की प्रतिभाओं ने जो अपनी साधना के दीप जलाए, उनका पुँजीभूत प्रकाश हमें यहाँ एकत्र मिल जाता है। भिन्न-भिन्न देशों के विचारकों ने अपने विचार के जो विवेचन प्रस्तुत किए हैं, उनका सारा भंडार ही हमें यहाँ उपलब्ध हो जाता है। पुस्तकालय में ज्ञान का सहस्त्रदल कमल अपनी सुरभि से हमें मुग्ध करता है, ज्ञान की सहस्त्र रश्मियाँ हमारे अज्ञान के अंधकार को दूर करती हैं। जब तक हम पुस्तकालय के द्वार के बाहर रहते हैं, तब तक हम भले तप्त-शप्त रहें, किन्तु यहाँ आते ही हमें वह पारिजात पुष्प मिल जाता है, जिसके सामने हमारी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं।

आप चाहें तो भवभूति की ग्रावाद्राविणी करुणाधारा में गोते लगा सकते हैं, आप चाहें तो तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' की भक्तिमंदाकिनी में डूब सकते हैं, आप चाहें तो मिल्टन के 'पैराडाइज लॉस्ट' के शैतान के खुराफातों से सबक ले सकते हैं, आप चाहें तो आइंस्टीन के सापेक्षता-सिद्धांत की गहराइयों में डूब सकते हैं। साहित्य, दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र—जिस किसी भी विषय में आपकी रुचि हो, आपके समक्ष हजार-हजार चिंतकों-लेखकों की चिंतन-कामधेनुएँ खड़ी हैं; आप स्वेच्छानुसार ज्ञान-दुग्ध प्राप्त कर लीजिए। संसार की सभ्यता, साहित्य, संस्कृति आदि की जानकारी के लिए पुस्तकालय से बढ़कर और कोई स्थान नहीं।

किंतु, हमारे देश में पुस्तकालयों की बड़ी उपेक्षा है। यह बड़ी ही दुःखद और चिंत्य स्थिति है। सरकार इधर थोड़ा ध्यान देने लगी है, किंतु उसके संचालक छूट (कमीशन) के लोभ में बुरी पुस्तकें खरीदकर अच्छी अध्ययन-सामग्री से जनसामान्य को वंचित कर रहे हैं।

भारतवर्ष में ऐसा कोई पुस्तकालय शायद ही हो, जहाँ किसी विषय पर सारी अच्छी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुस्तकों का संकलन मिल जाए। पाठक दुर्लभ पुस्तकों को ले जाते हैं, तो लौटाते नहीं। वे अपने साथ ब्लेड लिए चलते हैं और अपने उपयोग के पन्ने को काटकर पुस्तकों को दूसरों के लिए अनुपयोगी बना डालते हैं। यह ऐसा अन्याय है कि इसके लिए बड़ा-से-बड़ा दंड भी छोटा है। यह ऐसा पाप है, जिसे बड़ी-से-बड़ी तपस्या भी नहीं धो सकती। ज्ञान के प्रदीप को नष्ट कर औरों को अंधकार में रखना जघन्य अपराध है।

पुस्तकालय विश्व के चिंतन का स्थायी केंद्र है। यह एक ऐसा विद्यामंदिर है, जहाँ बैठकर कोई मनोविनोद, आत्मिक तृप्ति, मानसिक तुष्टि, ज्ञान-विस्तार एवं प्रगति के स्वर्णिम शिखर का सहज ही स्पर्श कर सकता है।

समाचारपत्र

[आरंभ, महत्ता, उपसंहार]

नगरों में बिस्तर छोड़ते ही पता नहीं भगवान की याद आती है कि नहीं, समाचारपत्र, यानी अखबार की याद अवश्य हो आती है। हम तब तक उन्मन बने रहते हैं, जब तक सुबह-सुबह अखबार न आ जाए। प्रातःकालीन समीर की भाँति उसके आते ही हमारे मन-प्राण प्रसन्न-प्रफुल्ल हो उठते हैं। यह बात दूसरी है कि आज का अखबार कल भले बासी हो जाए।

समाचारपत्र मुख्य रूप से मुख्य घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करते हैं। देश-विदेश में जिस क्षण भी राजनीतिक भूकंप आया, समाचारपत्र में शीघ्र ही उसके कंपन का अंकन हो गया। अतः, समाचारपत्र युग के गतिमापक यंत्र हैं। यह ऐसा दर्पण है, जिसमें हम जनजीवन का प्रतिबिंब देखते हैं, यह ऐसा शीशा है, जिसके आर-पार हम देख सकते हैं। समाचारपत्र समाज का थर्मामीटर है, जिसमें सामाजिक वातावरण के तापमान का भान होता है। इसे दूरबीन कहिए, जिसके द्वारा हम बहुत दूर-दूर के दृश्य देख सकते हैं।

समाचारपत्र में केवल राजनीतिक खबरें ही नहीं, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि खबरें भी छपती हैं। समाचारपत्रों में बेकार अपना रोजगार ढूँढ़ता है, क्वाँरा अपनी भावी पत्नी का पता खोजता है, व्यापारी बाजार-भाव पर नजर दौड़ाता है, चलचित्र का प्रेमी ताजा फिल्मों के विज्ञान पर दृष्टि गड़ाता है। खेलाड़ी इसमें खेल की खबर पर टूट पड़ता है, यात्राकामी रेलगाड़ी की समय-सारणी उलटता-पुलटता है। समाचारपत्र केवल सनसनीखेज खबरों द्वारा हमें चकित ही नहीं करता, वरन् भिन्न रुचिवाले लोगों को तृप्ति भी प्रदान करता है।

समाचारपत्रों की जन्मभूमि यूरोप है। सबसे पहले समाचारपत्र हॉलैंड से 1526 ई० में प्रकाशित हुआ। इसके बाद जर्मनी से 1610 ई०, इंगलैंड से 1622 ई०, अमेरिका से 1690 ई०, रूस से 1703 ई० तथा फ्रांस से 1736 ई० में समाचारपत्र प्रकाशित हुए। लंदन से 'डेली करेंट' नामक दैनिक समाचारपत्र 11 मार्च 1702 में प्रकाशित हुआ। हिंदी का सबसे पहला पत्र 'उदंत-मार्तंड' 1826 ई० में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इन दिनों दुनिया में लाखों समाचारपत्र छपते हैं। केवल भारतवर्ष में 2400 के लगभग दैनिक तथा 400 के लगभग साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होते हैं। प्रमुख भारतीय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दैनिक समाचारपत्रों में 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'स्टेट्समैन', 'अमृतबाजार पत्रिका', 'नवभारत टाइम्स', 'इंडियन एक्सप्रेस', 'आज', 'जनसत्ता', 'टेलीग्राफ', 'हिन्दुस्तान', 'आनंदबाजार पत्रिका', 'हिन्दू', 'मलयालम मनोरमा', 'जनशक्ति' आदि उल्लेखनीय हैं।

समाचारपत्र चाहे दैनिक हो या साप्ताहिक, पाक्षिक हो या मासिक—इसके लिए बहुत बड़े संगठन की आवश्यकता होती है। पत्रसंचालक, मुद्रक, प्रकाशक, संवाददाता तथा संपादक बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। संवाददाता तो आधुनिक युग के नारद हैं। उनके लिए न कोई फल वर्जित है, न कोई स्थान। यदि वे हंस की तरह विवेकी हैं, तो गलत-सही समाचारों को परखकर पत्रों में स्थान देंगे, यदि नहीं तो बिलकुल घटिया समाचार। संपादक का कार्य तो और भी उत्तरदायित्त्वपूर्ण है। उसकी थोड़ी असावधानी से बड़ा अनर्थ हो सकता है।

अतः, समाचारपत्र आधुनिक युग के अनिवार्य अंग बन चुके हैं। जनमत के निर्माण में उनका बहुत बड़ा हाथ है। सबल समाचारपत्र महाप्रतापी नरेश दशरथ की तरह किसी को सहज ही रंक तथा किसी को सहज ही नरेश बना सकता है। इसीलिए, नेपोलियन ने कभी कहा था कि मैं लाखों संगीनों की अपेक्षा तीन विरोधी समाचारपत्रों से अधिक डरता हूँ। अनेक विदेशी विचारकों ने समाचारपत्र के बारे में अपने विचार प्रकट किए हैं। हेन ने कहा है कि आजकल हम विचारों के लिए संघर्ष करते हैं और समाचारपत्र हमारी किलेबंदियाँ हैं। जेम्स एलिस का विचार है कि समाचारपत्र संसार के दर्पण हैं। किसी ने समाचारपत्र को जनता का अध्यापक बताया है, तो किसी ने उसे जनता का विश्वविद्यालय घोषित किया है।

आधुनिक युग में समाचारपत्रों की शक्ति अपरिसीम हो गई है। समाचारपत्र आज बड़े-बड़े धनपतियों एवं शस्त्रपतियों को भी अपने संकेत पर नचा रहे हैं। इनके समक्ष बड़े-बड़े नेता विनीत भाव से खड़े रहते हैं। इनके भ्रू-संचालन से सरकार भी पीपल के पत्ते की तरह प्रकंपित होती रहती है। जो निर्बल हैं, उपेक्षित और प्रताड़ित हैं, उनके लिए समाचारपत्र सशक्त ढाल भी बन जाते हैं। इसलिए, एक कवि ने इनका गुणगान करते हुए कहा है—

झुक जाती है तलवार भी अखबार के आगे,
झुक जाती है सरकार भी अखबार के आगे।
अँगुली पै नाचती है यह सरमायादार को,
सड़कों पै नचाती है यह लीडर की कार को।
मुर्दे को होश देती है अखबारनबीसी।
जिंदे को जोश देती है अखबारनबीसी।

समाचारपत्र अपने देश की जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जनजीवन की गतिविधियों को जन-जन तक पहुँचाते हैं, जनता में साहस भरते हैं।

पुस्तकों का चुनाव

[प्रारंभ, चयन की आवश्यकता, नवीन-प्राचीन का विवाद, उपसंहार]

"Some books are to be tasted, others to be swallowed and some few to be chewed and digested."—BACON

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुस्तकें समय के महासागर में प्रकाश-सदन की भाँति होती हैं। उनके बिना ईश्वर भी मूक है, न्याय भी निद्रित है, प्राकृतिक विज्ञान स्तब्ध है, दर्शन पंगु है, शब्द निर्वाक् हैं और सारी वस्तुएँ अंधकारपूर्ण हैं। हम केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक तृषा की भी तृप्ति चाहते हैं। इस प्रकार, पुस्तकों के बिना जीवनधारण कठिन है, कालयापन कष्टप्रद है।

किंतु, आजकल मुद्राराक्षस के करिश्मे के कारण संसार में प्रतिदिन हजारों पुस्तकें छपती रहती हैं। वे सारी-की-सारी अच्छी-ही-अच्छी हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बहुत पुस्तकें तो केवल अश्लीलता की पिटारी होती हैं, तिलस्मों का तहखाना होती हैं, कामलिप्सा की उत्तेजक कहानियाँ होती हैं। कुछ पुस्तकों का पढ़ना जहर पीने के समान है—ऐसा टॉल्सटाय ने कहा है।

दूसरी बात यह है कि मनुष्य अनंत काल के लिए पृथ्वी पर नहीं आता है। उसका जीवन बड़ा ही क्षणभंगुर है। अतः, वह चाहकर भी बहुत अधिक पुस्तकें पढ़ नहीं सकता। समय की सीमा के साथ-साथ पैसे की भी सीमा है। बहुत सारी पुस्तकें खरीदकर पढ़ना भी संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त, रुचिवैभिन्न्य और वयोवैभिन्न्य आदि अनके कारण हैं, जिनके कारण पुस्तकों का चुनाव करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। बर्नार्ड शॉ ने ठीक ही कहा था कि आज पढ़ना तो सब कोई जानता है, किंतु क्या पढ़ना है, यह कोई नहीं जानता।

प्रसिद्ध निबंध-लेखक बेकन ने लिखा है—"कुछ पुस्तकें चखने के लिए होती हैं, कुछ निगलने के लिए होती है तथा कुछ चबा-चबाकर पचाने योग्य होती हैं।" हाँ ! इतना निश्चित है कि बहुत कम पुस्तकें बिलकुल आत्मसात् करने योग्य होती हैं। ऐसी पुस्तकों में हम श्रेण्य साहित्य को ले सकते हैं। ये पुस्तकें काल की कठिन अग्निपरीक्षा में भी कुंदन की भाँति दमकती रही हैं। इनमें कुछ ऐसे वैशिष्ट्य एवं विलक्षण तत्त्व हैं, जो दूर से ही पहचान में आ जाती हैं। ये पुस्तकें कालपथ पर वज्रस्तंभ की तरह खड़ी रहती हैं। न हम सहस्राक्ष हैं, न कालिदास की तरह देवी-वरदानप्राप्त, न अश्वत्थामा की तरह अपरिमितायु हैं कि सारी मुद्रित-अमुद्रित पुस्तकें पढ़ जाएँ। अतः, हमारा पहला प्रयास विशिष्ट पुस्तकें पढ़ लेना आवश्यक होता है। इनमें कुछ भी हम पढ़ लेते हैं, तो हमें जीवन का लाभ प्रतीत होता है। इन पुस्तकों में हम वाल्मीकि रामायण, महाभारत, उपनिषद, तुलसीकृत रामायण, रघुवंश, शेक्सपियर, मिल्टन, दाँते, वर्जिल की रचनाएँ, बाइबिल, कुरान, भगवद्गीता आदि को रख सकते हैं। इन पुस्तकों ने संसार के महत्तम पुरुषों के जीवन को सँवारा है, इन्हीं ग्रंथों के नवनीत से उनका चिंतन परिपुष्ट हुआ है; अतः इन पुस्तकों के लिए किसी की राय लेने की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः, ये जीवनोपयोगी ग्रंथ स्वयंसिद्ध हो चुके हैं।

इन ग्रंथों के सतत अध्ययन से रुचि निर्मित ही नहीं होती, विकसित एवं परिष्कृत भी होती है, हम किसी पुस्तक की उत्तमता-अनुत्तमता का फैसला करने में समर्थ हो पाते हैं। अल्पायु में ही श्रेष्ठ पुरुषों के साहचर्य से, उनके वैयक्तिक पुस्तकागार से, उनके साथ बातचीत से हम उत्तम पुस्तकों की जानकारी प्राप्त कर ले सकते हैं। अंधकार में टटोलते रहने की अपेक्षा बत्ती जलाकर ढूँढ़ना अच्छा है। अतः, अनुमान-पद्धति के द्वारा समय नष्ट करना ठीक नहीं।

अँगरेजी में एक कहावत है—

Never read any but famous books.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह भी कहा गया है—

जब साहित्य पढ़ो तब पढ़ो पहले ग्रंथ प्राचीन।
पढ़ना हो विज्ञान अगर तो पोथी पढ़ो नवीन॥

—दिनकर

कुछ लोग यह भी मानते हैं कि नवीन पुस्तकें समय की सरिता में बुदबुदों की भाँति अपना अस्तित्व शीघ्र खो देती हैं, समय का ब्लीचिंग पाउडर उनकी चटक सुगमता से समाप्त कर देता है, क्षण-क्षण परिवर्तित लोकरुचि का रबर उनकी रेखाओं को जल्द ही मिटा देता है। फिर, केवल सुप्रसिद्ध पुस्तकें पढ़ने से बहुत सारी अच्छी पुस्तकों के छूट जाने की संभावना है। प्रतिभा एवं पांडित्य किसी एक युग एवं स्थान की विरासत नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता, तो नवीन रचनाओं का आगमन ही नहीं होता। केवल प्राचीन श्रेण्य रचनाओं को पढ़ने से बौद्धिक बढ़ोतरी हो, ऐसी बात नहीं; नई-नई रचनाओं की अपेक्षा भी हो सकती है।

अतः, पुस्तकों के चयन में संकुचित दृष्टिकोण का त्याग होना चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो शेक्सपियर के पश्चात् गॉल्सवर्दी, बर्नार्ड शॉ, टी॰ एस॰ इलियट और गेटेल के पश्चात् टॉमस मान, कॉफ्का, तुलसी-सूर के पश्चात् रवींद्रनाथ, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, पंत, प्रसाद, निराला, दिनकर, अज्ञेय आदि के पठन की गुंजाइश ही न रह जाती। पुस्तक-चयन में वृत्ति का ध्यान रखना भी आवश्यक है। किसी चिकित्सक के लिए चिकित्साशास्त्र की पुस्तकें उसके ज्ञानक्षितिज का विस्तार करने में समर्थ हो सकती हैं, तो किसी विधिवेत्ता के लिए विधि की पुस्तकें। एक इतिहासज्ञ के लिए इतिहास की नई-नई पुस्तकों का अध्ययन लाभकर है, तो साहित्यकार के लिए साहित्य की अधुनातन पुस्तकों का अध्ययन श्रेयस्कर है। विज्ञान के छात्र यदि केवल कविता की पुस्तकें पढ़ते रहें और कला के छात्र केवल वाणिज्य की पुस्तक, तो उनकी प्रगति रुक जाएगी, उनकी सफलता का पथ अवरुद्ध हो जाएगा। जिसका जो कार्यक्षेत्र है, उस क्षेत्र की नवीनतम पुस्तकों का चयन-पठन उसके लिए जरूरी है।

अध्ययन का अर्थ केवल पदोन्नति नहीं है, स्ववृति का विकास भी नहीं है, वरन् ज्ञान की परिधि का विस्तार है, अंतर्वृत्तियों का उन्नयन है। अध्ययन का उद्देश्य निरानंद जीवन में आनंद की खोज है, 'स्व' का अभिज्ञान है, सृष्टि के रहस्य की जिज्ञासा है। इसके लिए आवश्यक होगा कि हम संसार के महान साहित्यकार, इतिहासकार, विचारक, राजनीतिज्ञ, धर्मपंडित आदि की भी चुनी हुई पुस्तकें पढ़ें।

भिक्षुक

[संकेत, आरंभ, स्थिति, उपसंहार]

चूसकर फेंके गए आम-से ओठ, किसी अबाबील के घोंसले-से बन गए बाल, पीपल-कोटर-सी धँसी आँखें, धरती को उठा लेने के लिए वराह-से निकले दाँत, अंतिम आहुति डाल देने के लिए जीर्ण-शीर्ण काठ के कलछुल-से हाथ तथा लड़खड़ाकर गिर पड़नेवाले बबूल के काँटे-से पाँव और कठबोगने-सी आकृतिवाले जब किसी ने आवाज दी, 'एक पैसा दे दो बाबूजी ! दाता का भला करे भगवान !' तो उसे देखकर निराला

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की कविता सहसा साकार हो उठी—

वह आता
दो टूक कलेजे को करता
पछताता पथ पर आता।
हैं पेट-पीठ मिलकर दोनों एक,
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को,
भूख मिटाने को
मुँहफटी पुरानी झोली को फैलाता।

और तब मन में विचारों का सैलाब-सा उमड़ पड़ा। आखिर इन लोगों को इस स्थिति में लाने का उत्तरदायी कौन है ? इंगलैंड और रूस जैसे देशों में तो यह घिनौनी स्थिति नहीं है। देश का एक व्यक्ति गद्दी पर सोए, छप्पन भोगों को सूँघकर छोड़ दे और दूसरा व्यक्ति चने के चार दाने के लिए दर-दर ठोकरें खाए—आकाश-पाताल का यह अंतर कितना बड़ा अनर्थ है। एक, जायज-नाजायज तरीके से धन बटोरकर कुबेरकोष को ललचाए, और दूसरा, दिनभर एड़ी-चोटी का पसीना एक करके भी इतना भोजन प्राप्त कर सके कि अंत में पोषण तत्त्वों के अभाव में अपाहिज बन जाए ! उस अपाहिज-अपंग को कोई काम न मिले और इस राक्षस पेट की आग बुझाने के लिए वह दूसरों की नींद हराम करे और अपनी झोली में लाख-लाख गालियों का उपहार लेकर लौटे—लाख-लाख दुर्वचनों के शर से घायल होकर किसी सुनसान कोने में कराहा करे ! सचमुच, मानवता के दामन में यह इतना बड़ा कलंक है कि यदि हम इसे पोछ नहीं देते, तो मानव कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

याचकवृत्ति की बड़ी निंदा की जाती रही है। हाँ, जिसकी भुजाओं में शक्ति हो, जिसके हृदय में आत्मसम्मान की ज्योति जल रही हो, उसके लिए भिक्षाटन पाप अवश्य है। आचार्य विनोबा भावे ने ठीक ही कहा है कि तगड़े और तंदुरुस्त को भीख देना, दान करना अन्याय है। जो भिखारी भीख माँगते चलते हैं, दिन-रात भिक्षावृत्ति के नए-नए स्वांग रचते हैं, रात में सिनेमा देखते हैं और घरों में मनीआर्डर भेजते हैं, वे पेशेवर भिखारी कामचोर हैं, वंचक हैं। वे हमारी घृणा के ही पात्र नहीं, दंड के भी पात्र हैं। इन आलसियों से तो जेल में चक्की पिसवानी चाहिए। हम भारतवासी जो अनादिकाल से दान देते रहे हैं और आज समर्थ-सक्षम होकर भी विश्व के समक्ष अन्न-धन के लिए झोली फैला रहे हैं, क्या वैसे भी पाप और दंड के पात्र नहीं हैं ?

कबीरदास ने बहुत पहले भिक्षा न माँगने की शिक्षा दी थी। उन्होंने कहा था—

माँगन मरन समान है, मति कोई माँगो भीख।
माँगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

संस्कृत की एक सूक्ति में काक जैसे लालची पक्षी को भी भिक्षुक से श्रेष्ठ बताया गया है—

काक आह्वयते काकान् याचको न तु याचकान्।
काकयाचकयोर्मध्ये वरं काको न याचकः॥

किंतु, जो लाचार-विवश हैं, उन्हें गरजते सावन, बरसते भादो, उबलते जेठ तथा जमते माघ गली-गली, द्वार-द्वार एक मुट्ठी दाने के लिए दीन बने फिरना ही पड़ता है। वे कितने असहाय और अपंग हैं, जिनके लिए भिक्षावृत्ति के सिवा और कोई आधार ही नहीं। उनपर कबीरदास के उपदेश और संस्कृत के उपर्युक्त कथन का आखिर क्या प्रभाव पड़ेगा ? गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—"आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की" अतः, जब तक हम स्वेच्छया दान नहीं करते या सरकार ऐसा प्रबंध नहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करती कि कोई भूखा न रह जाए, किसी को याचक बनने की आवश्यकता न रह जाए, तब तक यह हेय कर्म चलता रहेगा और मानव मानव की दुर्गति देखता रहेगा।

रिक्शावाला

[आरंभ, काम की महत्ता, सेवा-भावना, उपसंहार]

महानगरों के जानलेवा सवारियों से संत्रस्त कोलाहल-भरे राजमार्गों पर निकल जाएँ या दुर्गंधमयी नालियों से भरी दमघोंटू गलियों से गुजर जाएँ या छोटे शहरों की कीचड़-भरी सड़कों पर खड़े हो जाएँ या गाँवों की नगरमुखी धूलिमयी राहों की ओर घूम जाएँ, आप पाएँगे—मुझ-सरीखा एक हट्टा-कट्टा नौजवान रिक्शे का हैंडल थामे आपकी सेवा के लिए खड़ा है। मुझे ही आप 'ऐ रिक्शावाले' कहकर पुकारते हैं। चाहे जेठ की अंगारे बरसाती चिलचिलाती दोपहरी हो, चाहे सावन की प्रलयंकर घटाओं से लदी-झुकी शाम हो, चाहे शिराओं के खून को बर्फ-सा जमा देनेवाली माघ की रात हो, मैं अपनी जान हथेली पर लिए आपकी सुख-सुविधा के निमित्त खून को पानी बना देने के लिए सदा-सर्वदा तैयार रहता हूँ।

यह बात ठीक है कि 'न मैं लक्ष्मी का लाड़ला हूँ और न सरस्वती का कृपापात्र'। यह भी मैं जानता हूँ कि सब तरह की आग से दाहक-भयावह होती है पेट की आग। इसलिए तो इस आग को बुझाने का जी-तोड़ प्रयास करता हूँ। मेरी नस-नस में बिजली की फुरती है—मेरी मांसपेशियाँ इतनी फौलादी हैं कि एक बार जोर लगा दूँ, तो पत्थर भी पानी बन जाए। मैंने बुजुर्गों से भी सुना है कि एक कंगाल मोची के बेटे नेपोलियन ने संसार में क्या कमाल कर दिखाया, एक गरीब हब्शी की संतान वाशिंगटन अमेरिका का उद्धारक हुआ तथा निर्धनता की नंगी गोद में पला कारनेगी धनकुबेर बना। मैं ऐसे निरक्षर भट्टाचार्यों को जानता हूँ, जिन्होंने बड़े-बड़े साम्राज्यों का निर्माण तथा विनाश किया है। अतः, मेरे इस कार्य को मेरी विवशता समझने का श्रम मत पालिए।

बड़े-बड़े संपन्न या साम्यवादी देशों में भी आज तक ऐसा नहीं हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति की आय समान हो तथा सबकी सुख-सुविधा का समान प्रबंध हो, तो फिर अपने देश भारत की बात क्या की जाए! जबतक हमारे देश की निर्धनता दूर नहीं होती, जबतक सारे देश में उत्तम मार्ग-व्यवस्था नहीं हो जाती, जबतक हम सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता नहीं प्राप्त कर लेते तबतक रिक्शे की आवश्यकता समाप्त नहीं होगी और जब तक रिक्शे की आवश्यकता बनी रहेगी, उसका चालक भी किसी-न-किसी को बनना ही पड़ेगा। रिक्शा हम चलाएँ या आप, झाड़ू हम लगाएँ या आप, सुलभ एवं स्वच्छ शौचालयों के अभाव में विष्ठा माथे पर चढ़ाकर भंगी ढोएँ या और कोई—कार्य आ पड़ने पर किसी-न-किसी को तो करना ही है।

काम कौन बड़ा है और कौन छोटा? महात्माओं को जूठी पत्तल उठाने में वही आनंद आता है, जो गीताभाष्य पढ़ने में या भगवान का भजन गाने में। उनकी दृष्टि तो सम होती है। सारा काम प्रभु का है— इसी भाव से वे कर्मरत होते हैं। श्रम मेरा भगवान है—मैं निष्ठा से, भक्ति-भाव से इसकी आराधना करता हूँ। मेहनत-मशक्कत से घबरानेवाला, शर्मिंदा होनेवाला जीव मैं नहीं हूँ। यदि मेरे काम में आपको हीनता का बोध हो, तो यह आपकी समझ का फेर है, बुद्धि की विकृतिमात्र है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभी आपके इकलौते बेटे की नाड़ी खिंच रही है और आप किसी चिकित्सक के यहाँ जाने को बेचैन हैं। ऊबड़-खाबड़ रास्ते से भीड़-भाड़ पार करते हुए मैंने आपको उचित समय पर डॉक्टर के यहाँ पहुँचाया और आपकी चिंता का एक अंश दूर किया। घुप्प अँधेरा ! हाथ को हाथ नहीं सूझता। रात के बारह बजे हैं। बेचारी बुढ़िया गाड़ी से उतरी है और उसे लकुटिया का सहारा लिए दो मील का रास्ता नापना है। पर, चिंता की कोई बात नहीं। मुझ-सा उसका बेटा, जो उसकी सहायता के लिए खड़ा है। जरूरत के समय कोई मुझपर भरोसा कर सकता है। मैं निर्दिष्ट स्थान तक आपको सकुशल पहुँचाने में अपनी जान की बाजी भी लगा सकता हूँ। आपके सहानुभूति-भरे दो शब्द मेरे लिए बहुत हैं। धातु के चंद टुकड़ों से पेट पालने की परवाह उतनी ही भर मुझे है, जितनी आपको।

जिस मार्ग पर गगनचारी वायुयान, जलचारी जलयान तथा स्थलचारी रेलगाड़ी या हवागाड़ी का प्रवेश अकल्पनीय है, वहाँ भी मैं मस्ती से झूमता-मचलता अपना रिक्शा निकाल लेता हूँ। मेरे रिक्शे के तीन पहिए, मानो जल-थल-नभ तीनों के विजयचक्र हैं। जब आप यह समझेंगे, तब मेरी महत्ता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहेंगे। इधर सुनता हूँ कि कुछ लोग आदमी का रिक्शा चलाना बंद कर मशीन का रिक्शा चलवाना चाहते हैं। मगर मशीन का रिक्शा चलाना हो, तो सीखना पड़ेगा। उस रिक्शे में तो काफी पैसे लगेंगे ? मुझे यह मशीनी कारीगरी सिखाएगा कौन, और मैं उतना कीमती रिक्शा खरीदूँगा किस बिरते ? खैर, वैसा होगा, तो देखा जाएगा। जब मजदूरी ही करनी है, तो क्या फिक्र ! अभी तो आप सवार हैं और मैं रिक्शाचालक। कहिए हुजूर, किधर चलें ?

सफलता का रहस्य

[आरंभ, आवश्यक सूत्र, उपसंहार]

ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो यह न चाहे कि सफलता की सुकुमारी उसकी ग्रीवा में वरमाला डाल दे ? मनुष्य के मन-प्राणों के गहरे तहखाने से एक ही आवाज आती है—सफलता ! उसके रोम-रोम में एक ही रागिनी बजती है—सफलता ! उसकी जीवन-वीणा के तारों से एक ही गूँज सुनाई पड़ती है—सफलता ! किंतु क्या केवल 'सफलता-सफलता के उच्चारण मात्र से जीवन में सफलता मिल जाती है ? कदापि नहीं। तब व्यक्ति सफलता प्राप्ति का रहस्य जानना चाहता है; वह कोई ऐसी जादुई कुंजी पा लेना चाहता है, जिससे सफलता का कुबेरकोष उसे प्राप्त हो जाए। वह अलादीन का चिराग पा लेना चाहता है, जिससे सफलता के सारे बंद दरवाजे खुल जाएँ। वह ऐसा अमोघ मंत्र पा लेना चाहता है, जिससे सफलता की रानी इठलाती हुई उसके पास चली आए।

सफलता का राज जानने के लिए मानव के मन-प्राण बेचैन बने रहते हैं, किंतु यह जान लेना जरूरी है कि सफलता-प्राप्ति की कोई एक स्वर्णिम कुंजी नहीं है, जादुई चाबी नहीं है; सफलता के कुछ सूत्र अवश्य हैं। यदि इन सूत्रों पर पूरी दृढ़ता के साथ अमल किया जाए, तो सफलता हमारे लिए रंगीन मृगतृष्णा नहीं, खूबसूरत छलना नहीं, महाठगिनी माया नहीं, वरन् एक ठोस वास्तविकता, एक सहृदय सहचरी, एक अनुरागिनी अनुचरी बन जाएगी, इसमें संदेह नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सफलता का पहला सूत्र है अपनी रुचि और प्रवृत्ति, अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार अपना लक्ष्य निर्धारित करना। लक्ष्यनिर्धारण के पश्चात् उसपर निरंतर अडिग रहना आवश्यक है। डिजराइली ने कहा है—लक्ष्य को हमेशा अपने सामने रखो और सतत प्रयास में लगे रहो—सफलता का यही रहस्य है। उस लक्ष्य पर निष्ठा और एकाग्रता आवश्यक है। ध्येय की सफलता के लिए मनुष्य की पूर्ण एकाग्रता और समर्पण आवश्यक है। उसके प्रत्येक स्पंदन में यदि उसका लक्ष्य बस जाए, उसकी प्रत्येक फड़क में यदि उसका लक्ष्य टँक जाए, तो समझिए सफलता की आधी मंजिल मिल गई, उसकी आधी दूरी तय हो गई। लक्ष्यवेद में अर्जुनदृष्टि होनी चाहिए। इधर-उधर भटकने से, लक्ष्य के पाँच नावों पर पाँव रखने से डूबने के सिवा और कोई चारा नहीं। कुछ लोग कार्यारंभ तो करते हैं, किंतु विघ्नों के झोंके उनके लक्ष्य की लौ को बुझा डालते हैं; उनकी गति मद्धिम कर देते हैं। विघ्नों के डर से वे अपना मार्ग बदल देते हैं। किंतु, जो विघ्नों की छाती पर अपने अंगदचरण रोपते हुए आगे बढ़ निकलते हैं, उनकी विजय निश्चित है। भर्तृहरि का कथन है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥

(निम्न लोग विघ्नों के भय से किसी काम का प्रारंभ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के लोग प्रारंभ करके विघ्न आने पर रुक जाते हैं, किंतु उत्तमजन बार-बार विघ्नों के आने पर भी कार्य आरंभ करके बिना पूरा किए नहीं छोड़ते।)

अपने लक्ष्य की ओर निरंतर चरणनिक्षेप—सतत साधना ही सफलता का दूसरा सूत्र है। सफल मस्तिष्क बरमे की तरह एक बिंदु पर केंद्रित होकर ही कार्य करता है। असफलताएँ तो सफलतारूपी प्रासाद के स्तंभ-रूप हैं (Failures are the pillars of success.)। यदि असफलताओं के सामने कोई पड़ जाए, तो निर्भीक अभिमन्यु की तरह उसके भेदन के लिए उसे तैयार रहना चाहिए। यदि विघ्नों का विंध्याचल हमारे मार्ग में अवरोध उत्पन्न करे, तो हमें अगस्त्य की तरह उसे अपने पाँवों तले रौंद डालना चाहिए।

निरंतर परिश्रम से ही सफलता के मोती मिलते हैं। सफलता के हीरकरत्न तो परिश्रम के फावड़े से ही निकाले जा सकते हैं। हेनरी सी॰ क्रेक ने कहा था—सफलता का कोई रहस्य नहीं है, वह केवल अतिपरिश्रम चाहती है। परिश्रम उज्ज्वल भविष्य का जनक है। विश्राम विफलता के गर्त में धकेल देता है।

ब्राउन ने ठीक ही कहा है—साहस सफलता के लिए सर्वाधिक महत्त्व की वस्तु है। साहस विपदाओं की भीषण बाढ़ में पतवार का काम करता है। डिजराइली ने कहा है—सफलता तो साहसिकता की बेटी है (Success is the child of audacity.)। असंभवता के आलबाल में साहस ही सुमन खिलाता है—इसमें संदेह नहीं।

साहस के साथ आत्मविश्वास का रहना भी जरूरी है। कहा गया है—Where there is a will, there is a way. एमर्सन ने तो आत्मविश्वास को ही सफलता का प्रथम रहस्य माना है। यदि मनुष्य कार्य करे, किंतु उसका दिल चूहे का हो, वह बराबर भयभीत होता रहे, तो फिर सफलता संदिग्ध हो जाएगी। यदि थोड़ी-सी असफलता हुई, पराजय का एक कुहासा छाया और बस हम काँपने लगे; आस्था डिगने लगी, तो सफलता दूर भाग जाएगी। शायद भाग्य में ही बदा नहीं, शायद हमारे अनुकूल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं है, शायद भाग्यलिपि ही कुछ गड़बड़ है, शायद हस्तरेखा ही ऐसी है—ऐसा सोचना ठीक नहीं। मनुष्य तो स्वयं अपना भाग्यविधाता है। बाह्य शक्तियाँ उसे पराजित नहीं कर सकतीं। नेपोलियन की यह उक्ति हर वक्त याद करनी चाहिए—मैं आया, मैंने देखा और मैंने जीत लिया' (I came, I saw, I conquered)।

सफलता के और भी कई आनुषंगिक सूत्र हो सकते हैं—सुंदर स्वास्थ्य, ईमानदारी, दूसरों का विश्वास-अर्जन, व्यवहारकुशलता। लक्ष्य निश्चित होने पर भी वही व्यक्ति साधनारत रह सकता है, कठोर व्रत कर सकता है, जो पूर्णतः स्वस्थ हो। विजयी होने के लिए पत्थर-सी मांसपेशियाँ चाहिए, फौलाद-सी भुजाएँ चाहिए, वज्र-से चरण चाहिए। जो व्यक्ति दिन-रात रोगपीड़ित हो, रोज पेटदर्द और सरदर्द से परेशान हो, उसकी सफलता संदिग्ध ही है। अतः, सफलता-प्राप्ति के लिए तन और मन की स्वस्थता अत्यावश्यक है।

जीवन में सफलता पाने के लिए मनुष्य का संयत होना भी जरूरी है। संयमहीन मनुष्य उस नाविक की तरह है, जिसके पास कंपास न हो, हवा का झोंका जिधर चाहे, बहा ले जाए। क्रोध का हर झोंका और अविचार की हर तरंग उसे इधर से उधर बहा ले जाती है और उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में कठिनाई होती है। छोटी-सी बात पर क्रुद्ध हो जाना, आपा खो देना ठीक नहीं।

ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है (Honesty is the best policy.)। ईमानदार और व्यवहारकुशल व्यक्ति मिट्टी से सोना बना लेता है। ईमानदारी सबसे बड़ी संपत्ति है। इसके सामने सोना-चाँदी की थैली बेकार है। उसी प्रकार व्यवहार-कुशलता मनुष्य को आदर्श के नीलगगन से मिट्टी की ठोस भूमि पर ले आती है। व्यवहारपटु एवं ईमानदार व्यक्ति दूसरे का विश्वासभाजन एवं प्रीतिभाजन शीघ्र ही बन जाता है और इससे भी जीवन में सफलता-प्राप्ति सहज हो जाती है।

अतः, निर्धारित लक्ष्य पर विश्वास एवं साहसपूर्वक सतत श्रम करते जाने और अपने संकल्प को साधना की दिशा देते जाने से ही सफलता का रश्मिलोक हमारे म्लान जीवन को जगमग कर देगा, हमारे अभिशप्त जीवन को वरदानों से भर देगा, हमारे उपेक्षित एवं उपालंभित जीवन को उपहारों एवं सफलताओं से आभूषित कर देगा, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं।

जीवन का लक्ष्य

[आरंभ; धन, पद, विद्या आदि; सर्वाधिक काम्य; उपसंहार]

ओ मेरे अहबाब क्या कारे-नुमायाँ कर गए।
बी॰ ए॰ हुए, नौकर हुए, पेंशन मिली और मर गए॥

—अकबर इलाहाबादी

मानव-जीवन का लक्ष्य क्या है—यह बड़ी उलझन में डालनेवाला प्रश्न है। रुचि, स्थिति, अवस्था आदि की भिन्नता से भी जीवन के लक्ष्य में पर्याप्त विभिन्नता हो सकती है। इसलिए, इसे इदमित्थम् कहना संभव नहीं।

किसी के जीवन का लक्ष्य केवल धनार्जन हो सकता है। उसके लिए धनार्जन एकमात्र चातुर्य, एकमात्र पांडित्य हो सकता है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः।

ऐसे लोगों के मन में एक धारणा घर कर गई है कि पैसे के द्वारा जीवन में सब-कुछ खरीदा जा सकता है—चाहे वह प्रतिष्ठा ही क्यों न हो। लोक की बात कौन कहे, परलोक का टिकट भी पैसे के द्वारा खरीदा जा सकता है। दरिद्र के जैसा संसार में कोई गुणहीन नहीं और धनी से बढ़कर कोई गुणवान नहीं।

भर्तृहरि ने लिखा है—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति॥

[अर्थात्, जिसके पास धन है, वही मनुष्य कुलीन है, वही पंडित है, वही शास्त्रज्ञ और गुणज्ञ है, वक्ता है और वही देखने योग्य है; क्योंकि सभी गुण कांचन (धन) में रहते हैं।]

ऐसा सोचनेवाला अपना सारा जीवन कुबेर बनने में लगा देगा और ऐसी चेष्टा करेगा कि लक्ष्मी उसका पादपीडन करती रहे।

कुछ लोगों के लिए जीवनभर ज्ञान की पिपासा, विद्या की साधना ही जीवन का लक्ष्य हो सकती है। समस्त शास्त्रों का रहस्यभेद कर आनेवाली पीढ़ी को ज्ञान का नया खजाना लुटा जाना उसके पांडित्य का उद्देश्य हो सकता है। राजा तो केवल अपने देश में पूजा जा सकता है, पर पंडित समग्र संसार में। किसी का लक्ष्य शास्त्र-निर्माण हो सकता है। वह अपने को मनु, याज्ञवल्क्य और पराशर की कोटि में रखना चाह सकता है। किसी का उद्देश्य काव्य या साहित्य का सर्जन हो सकता है, जिससे एकसाथ यश, अर्थ, व्यवहारज्ञान तथा शिवेतर रक्षा हो सकेगी। कवि तो प्रजापतितुल्य होता है। परमात्मा के लिए अनेक विशेषणों में हमारे वैदिक ऋषियों ने सर्वप्रथम 'कवि' शब्द का प्रयोग किया। अतः, क्यों न वह अपनी काव्यसाधना का प्रकाश समग्र संसार के लिए छोड़ जाए ?

ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं, जिनका लक्ष्य पदप्राप्ति हो। वे सोच सकते हैं कि राजनीति के शिखर पर जाएँ और राष्ट्र का नेतृत्व अपने हाथों सँभालें; क्योंकि वे जानते हैं कि जिसके हाथ में सत्ता रहती है, उसके इंगित के बिना एक पत्ता भी नहीं डोलता। चाहे कलाकार हों, चाहे कवि हों, चाहे पंडित हों; चाहे वैज्ञानिक—सब राजनीतिज्ञों के कृपाकटाक्ष के भिखारी होते हैं। उनके भृकुटिनिक्षेप से देश में उथल-पुथल मच जाती है। अतः, जैसे भी हो, नीति की डगर पकड़कर हो या अनीति की अंधी गलियों से गुजरकर हो, शासन की बागडोर अपने हाथों ही लेनी चाहिए—ऐसा भी जीवन का उद्देश्य हो सकता है।

कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो महान वैज्ञानिक बनकर प्रकृति के रहस्यों के तहखानों का पता लगाने में अपने जीवन की बाजी लगा दें। वे भी गैलीलियों, फैराड़े, न्यूटन, आइन्सटीन की कोटि में अपने को लाना चाहते हों और मानवता की सेवा में कोई-न-कोई अमूल्य नियामत उपस्थित करना चाहते हों।

कुछ ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं, जिन्हें न राज्य चाहिए, न वैभव चाहिए, न स्वर्ग-सुख चाहिए। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है पीड़ितों की सेवा करना। व्यास के दो अनमोल वचन हैं—'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' (परोपकार पुण्य देता है, परपीडन पाप)। अतः, वे दिन-रात कष्टों के कंटकों पर पाँव रखते हुए मानव-सेवा के व्रत में लीन रहना चाहेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं, जो देश की सेवा के लिए एक वीर प्रहरी होना चाहते हों। ऐसों को न वनिता की ममता होती है, न पुत्र का ममत्व खींचता है। वे गोलियों की बौछार सहते हैं। तोप के गोलों पर छाती दिए हुए, बम-विस्फोटों की कर्णस्फार ध्वनियाँ सहते हुए, उनकी लपटों को सीने पर झेलते हुए सदा देशसेवा के लिए तैयार रहते हैं। उनके जीवन में स्पृहा का दीप जलता है—वह है देश की सुरक्षा; उससे बढ़कर संसार में और कुछ नहीं।

किंतु, दूसरे प्रकार के व्यक्ति भी हो सकते हैं, जो खुद को बाहर की ओर न कर केवल अपनी आत्मा की ओर झाँकें।

जीवन क्या है ? आहों का जलजला ही तो ! कराहों का सिलसिला ही तो ! पीड़ा की एक रंगीन कहानी ही तो ! दर्द की एक लुभावनी दास्तान ही तो !

सब-कुछ मिथ्या है। धोखा है, भ्रम है, प्रवंचना है। संसार के सारे नाते झूठे हैं, सारी ममताएँ मृगतृष्णा हैं ! सब ओर की ममता के धागे बटोरकर भगवान के चरणों में बाँध देना चाहिए। पुत्र, गेह, धन, धरती सब-कुछ धुएँ की धरोहर हैं। जीवन में सबका त्याग होना चाहिए। प्रह्लाद, ध्रुव आदि भक्तों की कोटि में जाना चाहिए। राजनीतिक के ऊपर, भले ही साहित्य हो, किंतु सबसे ऊपर तो अध्यात्म है। और, इस प्रकार जीवन का लक्ष्य है—भक्ति, परमात्मा की खोज,आत्मान्वेषण, ऐकांतिक साधना, सारे जागतिक बंधनों से मोक्ष।

इस मिट्टी के जीवन में कुछ सार नहीं है, इस हाड़-मांस के तन में कोई रस नहीं है। जो-कुछ आनंद है, वह परमात्मा से एकाकार होने में है।

इस प्रकार, जीवन के लक्ष्य भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। किसी को उत्तम-अनुत्तम, सत्य-असत्य कहना बहुत उचित नहीं है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि दृष्ट जीवन के लक्ष्य के साथ यदि अदृष्ट जीवन के लक्ष्य का तारतम्य हो जाए, तो अत्युत्तम है !

अध्ययन का आनंद

[आरंभ, अध्ययन का वैशिष्ट्य, महत्त्व, उपसंहार]

यदि कोई व्यक्ति आधुनिक मानव से पूछे कि वह किस मानी में अपने पूर्वजों से अधिक सौभाग्यशाली है, तो उसका निःसंदेह यही उत्तर होगा कि उसे अध्ययन का आनंद तरह-तरह की पुस्तकों से प्राप्त होता है। एक समय था कि जब मनुष्य बिलकुल अशिक्षित था, लोग लिखना और पढ़ना नहीं जानते थे। फिर लिखना-पढ़ना आया, किंतु पुस्तकें तालपत्र, भूर्जपत्र, शिलापट्ट आदि पर लिखी जाती थीं। जो व्यक्ति किसी गुरुकुल या विश्वविद्यालय से संबद्ध थे, वही पढ़ने की सुविधा प्राप्त करते थे। जो बहुत संपन्न थे, वे ही उन हस्तलेखों की प्रतिलिपियाँ कराकर अपने पास रख सकते थे और सुविधा और इच्छा के अनुसार पढ़ सकते थे। किंतु, मुद्रण और कागज के आविष्कार के कारण हमारे ज्ञान, विचार और भाव नित्य नई पुस्तकों के रूप में छपकर आने लगे।

उत्तम पुस्तकें इस लोक की चिंतामणि हैं। उनके अध्ययन से सारी कुचिंताएँ मिट जाती हैं, संशय-पिशाच भाग जाता है और मन में सद्भाव जगता है, जिससे परम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शांति प्राप्त होती है—ऐसा स्वामी शिवानंद ने ठीक ही कहा है। पुस्तकों की दुनिया वह वैकुंठलोक है, जहाँ आनंद-ही-आनंद है। निराशा और हताशा से चूर व्यक्ति के लिए वह परम विश्रामस्थल है।

मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार से आनंद प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। कोई नदी तट पर टहलने से आनंद प्राप्त करता है, तो कोई पर्वतीय प्रदेशों की सैर कर आनंद प्राप्त करता है। किसी को रात-रात भर शिकार करने में मजा मिलता है, तो किसी को ताश-शतरंज में डूबे रहने में आनंद आता है। किसी के लिए गप लड़ाना आनंददायक है, तो किसी के लिए क्लब में समय काटना, किसी को नौका-विहार में आनंद आता है, तो किसी को व्योमविहार में, किसी को थिएटर देखना भाता है, तो किसी को सिनेमा देखना। किंतु, अध्ययन का आनंद सभी प्रकार के आनंदों में विलक्षण है। इसमें न बहुत अधिक पैसे की जरूरत है, न अधिक लश्कर जुटाने की। इसमें न तो स्वास्थ्य का क्षय है, न दूसरों के ऊपर निर्भरता का प्रश्न। शिकार के आनंद में तो हत्या की जाती है, जीवन बराबर जोखिम में रहता है, किंतु अध्ययन का आनंद बिलकुल निरामिष, निरापद आनंद है।

अच्छे-से-अच्छे मित्र दगा दे जाते हैं। उन्हें चाहकर भी हम मनोनुकूल घड़ियों में साथ नहीं रख सकते। कभी ऐसा भी होता है कि हम अपने उकताऊ मित्रों से पिंड छुड़ाना चाहते हैं, किंतु उन्हें बुरा न लग जाए, इसलिए कुछ बोल नहीं सकते। परंतु पुस्तकें ऐसा मित्र हैं, जिन्हें हम जब चाहें साथ रखें, जब चाहें छोड़ दें। वे कभी बुरा नहीं मानतीं। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है—''अच्छी पुस्तकों के पास होने पर हमें अपने भले मित्रों के साथ न रहने की कमी नहीं खटकती।''

रुचि, शिक्षा और उम्र के अनुसार भिन्न प्रकार की पुस्तकें भिन्न प्रकर के लोगों को आनंद प्रदान करती हैं। बुद्धिप्रवण व्यक्तियों के लिए गंभीर पुस्तकें आनंददायिनी होती हैं। जहाँ दूसरों के लिए गणित की पुस्तकें गौरीशंकर-शिखर पर चढ़ने जैसी कष्टप्रद होती हैं, वहाँ गणितज्ञ के लिए गणित की एक समस्या पूरी मानसिक खुराक दे जाती है। वे जब तक उसके समाधान में जुटे रहते हैं, तब तक उन्हें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं व्यापती, किसी प्रकार की चिंता-सर्पिणी नहीं डँसती। रामानुजम् जब गणित का प्रश्न हल करने में तल्लीन थे, तब उनकी पीठ के घाव का ऑपरेशन कर दिया गया और उन्हें पता तक नहीं चला। चिंतक के लिए वे ही पुस्तकें आनंदप्रद होती हैं, जो चिंतन के लिए चुनौती प्रस्तुत करें, विचारों में भूकंप पैदा करें; क्योंकि ''विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं''—बर्नार्ड शॉ ने ठीक ही लिखा है। पुस्तकें, वे विश्वस्त दर्पण हैं, जो संतों और साहसिकों के मस्तिष्क का परावर्तन हमारे मस्तिष्क पर करती हैं। हम महान मनीषियों और विचारकों के चिंतन के गोदुग्ध का पान पुस्तकों द्वारा करके संतृप्त होते हैं। एक वैज्ञानिक विज्ञान की पुस्तकों का अध्ययन कर नए-नए अनुसंधानों की दुनिया में विचरण करता है तथा जीवन-निर्माण की नवीन सामग्री का चयन करता है।

भावनाप्रधान व्यक्तियों के लिए साहित्य-सरिता का अवगाहन अधिकाधिक आनंदप्रद होता है। कभी वह शकुंतला और उर्वशी के सौंदर्य पर रीझता है, तो कभी दुष्यंत और दुर्वासा के व्यवहार पर खीझता है। कभी वह मेघ के साथ रामगिरी से अलका की यात्रा करते हुए यक्षप्रिया के पास पहुँचता है, तो कभी अशोकवनवासिनी सीता के साथ सहानुभूति के आँसू बहाता है। कभी वह पुरुषोत्तम राम की शील, शक्ति और सौंदर्य के दर्शन करता है, कभी रावण की नृशंसता पर वक्रदृष्टि होता है। साहित्य की दुनिया केवल भावनाओं के प्लावन की दुनिया नहीं है, वरन् चित्तवृत्तियों के परिशोधन की भी दुनिया है। ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनके वैयक्तिक जीवन के बहुत-से सपने अधूरे रहे,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बहुत-सी इच्छाओं की परिपूर्ति नहीं हुई। कोई वात्सल्य सुख से वंचित है, तो कोई दांपत्य सुख से। साहित्य में इन भावों की ऐसी मार्मिक अभिव्यक्ति रहती है कि हम उन अतृप्त वासनाओं की सहज आपूर्ति कर पाते हैं और एक विचित्र सुख की प्राप्ति करते हैं। ये रचनाएँ कभी तो थकान मिटाती हैं, कभी मनोरंजन करती हैं, कभी अजगर के समान भारी लगनेवाले काल की निष्ठुरता की पीड़ा को कम करती हैं, कभी विरस मन को सरस करती हैं, कभी मानसिक पीड़ा के लिए मरहम बनती हैं, कभी श्रांत-क्लांत चित्त के लिए चंदन का गाढ़ा अनुलेप बनती हैं, कभी जीवन के झुलसे मौसम में वासंती बयार बहाती हैं तथा कभी धमन-भट्ठी में वातानुकूलित कक्ष का आनंद प्रदान करती हैं।

अतः, जिसने अध्ययन का रस चख लिया है, उसे जीवन की और सारी वस्तुओं का आनंद फीका और क्षणस्थायी लगेगा। जो निरक्षर हैं, अध्ययन से दूर भागनेवाले हैं, वे भला इसपर विश्वास भी कर सकेंगे ?

जीवन में खेलकूद का स्थान

[आरंभ, महत्त्व, सेवा में सुविधा, उपसंहार]

बचपन में दादी अक्सर कहा करती थी—

पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब।
खेलोगे-कूदोगे होगे खराब॥

किंतु, अब यह बात बिलकुल गलत मालूम पड़ती है कि खेलने-कूदने से आदमी खराब हो जाता है, वस्तुतः, जो व्यक्ति बचपन से ही खेलकूद का अभ्यास नहीं रखते, उनका शरीर भरी जवानी में ही जर्जर हो जाता है, उनका शरीर बीमारियों का घर बन जाता है और वे जीवन में नरक का दुःख भोगते रहते हैं। यदि पत्थर-सी मांसपेशियाँ और फौलाद-सी भुजाएँ चाहिए, तो पलंग पर लेटे-लेटे किताबी कीड़ा होने से काम नहीं चलेगा। यदि विद्या के क्षेत्र में उन्नति करना चाहते हैं, तो इसके लिए स्वस्थ एवं पुष्ट शरीर अनिवार्य है। कहा गया है—A sound mind in a sound body, अर्थात् सशक्त शरीर में ही सशक्त मन का निवास है। स्वामी विवेकानंद ने ठीक ही कहा है, "ऐ मेरे मीत ! यदि तुम ठिकाने से फुटबॉल नहीं खेल सकते, तो तुम गीता के मर्म को भी नहीं समझोगे।"

अतः सबल, पुष्ट एवं स्फूर्तियुक्त शरीर के लिए जीवन में खेलकूद का महत्त्व निर्विवाद है।

खेलकूद का दूसरा महत्त्व है—जीवन में प्रतियोगिता का साक्षात्कार। खेलकूद से अपने प्रतियोगियों का पछाड़ने का भाव मन में जगता रहता है। हम जी-जान से खेल में रुचि लेते हैं, तो इसका परिणाम होता है कि विजय का सेहरा हमारे सर बँधता है। विजयी दल को विजयचिह्न से विभूषित किया जाता है, सर्वोत्तम खिलाड़ी को भी पदक प्रदान किए जाते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि हमें खेल में पराजित भी होना पड़ता है, किंतु उस क्षण बिलकुल निराशा की चादर ओढ़कर बैठना नहीं चाहिए। लगन रही, तो फिर विजय होगी ही। अतः, पराजित दल के खिलाड़ी हँसते-हँसते विजयी दल के खिलाड़ियों से हाथ मिलाते हैं, गले-गले मिलते हैं। न तो विजयगर्व से मदमत्त हो जाना चाहिए और न पराजय से शीशे की तरह चकनाचूर होकर बिखर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही जाना चाहिए—इसका प्रशिक्षण क्रीड़ाक्षेत्र में हमेशा होता रहता है। मानव-जीवन भी तो एक क्रीड़ाक्षेत्र ही है न; जीवन में जीत-हार के फल-शूल तो हमें मिलते रहते हैं। हार के शूलों से छिद-बिंधकर विजय-अभियान न छोड़ दें, इसकी सीख हमें खेलकूद से मिलती रहती है।

खेलकूद का एक बड़ा ही मोहक पक्ष है—सामाजिक अभियोजन (social adjustment)। एक टीम के अनके सदस्यों को साथ बाहर जाना पड़ता है। किस ढंग से रहें कि हमारे मित्रों को कोई कष्ट न हो, इसपर ध्यान देना पड़ता है। दूसरे के हित-अहित, भलाई-बुराई का भी खयाल रखना पड़ता है। टीम की ओर से भोजन-नास्ते का भी प्रबंध किया जाता है। हो सकता है कि उसमें थोड़ी कमी रह गई हो। मिलजुलकर किस प्रकार आपस में निबटारा करना चाहिए, इसका तभी अनुभव होता है। फुटबॉल, क्रिकेट, वॉलीबॉल, टेनिस आदि खेलों में विजय सामूहिक प्रयास पर निर्भर है। किसी टीम के सभी खिलाड़ी समान रूप से सक्षम हों, ऐसा नहीं होता। एक खिलाड़ी यदि थोड़ा दुर्बल है, तो दूसरे को उसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। मानव-समाज की भी यही स्थिति है। सभी व्यक्तियों के समान क्षमता, समान शक्ति, समान स्फूर्ति और समान लगन नहीं होती। समाज की सर्वाधिक समुन्नति के लिए आवश्यक है कि हम स्वार्थ की जड़ अपने में नहीं जमने दें और उन्मुक्त भाव से सबके सहयोगी होकर काम करने की आदत डालें।

यही कारण है कि आज उच्चविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शारीरिक-शिक्षा के प्रशिक्षित व्यक्ति नियुक्त किए जाते हैं, ताकि वे छात्रों को शारीरिक प्रशिक्षण दे सकें, खेलकूद में उनकी रुचि उत्पन्न कर सकें, उनकी वृद्धि कर सकें। छात्रों के प्रोत्साहन के लिए वर्ष में एक बार क्रीड़ा-प्रतियोगिता आयोजित की जाती है और उस रंगीन आयोजन में खिलाड़ियों के कार्यकलाप देखकर ईर्ष्या होने लगती है। आज खेलकूद पढ़ाई का एक अनिवार्य अंग बन गई है। जो खेलकूद में विशेषता प्राप्त करते हैं, उनके लिए नियुक्तियों और सेवाओं के अनेक मार्ग खुल गए हैं।

आज के युग में जीवन के प्रत्येक अंग के समांतर खेलकूद हो गई है। यदि साहित्य, विज्ञान, संगीत और समाजसेवा के सर्वोत्तम व्यक्तियों को पद्मश्री उपाधि से विभूषित किया जाता है, तो खेलकूद में अच्छा खेलनेवालों को भी पद्मश्री से विभूषित किया जा रहा है। टेलीविजन पर विश्व के कोने-कोने में होनेवाले विभिन्न खेलों को दिखाया जाता है। विश्व के प्रमुख रेडियो केंद्रों से खेलकूद के समाचार प्रसारित किए जाते हैं। दैनिक समाचारपत्रों का लगभग आठवाँ हिस्सा तो केवल खेलकूद के समाचारों से ही भरा रहता है। आजकल विभिन्न भाषाओं में केवल खेलकूद से संबद्ध सचित्र पत्र-पत्रिकाएँ छपती हैं। खेलकूद के लिए बड़े-बड़े शहरों में सरकार ने क्रीड़ागार (stadium) बनवाए हैं। वहाँ खेल देखने के लिए मार पड़ती है, टिकट ब्लैक होता है तथा क्रीड़ाप्रेमी खिलाड़ियों के हस्ताक्षर लेने, उनके चित्र खींचने के लिए दीवाने बने रहते हैं। यह खेल के प्रति जनरुचि का अच्छा प्रमाण है।

सुप्रसिद्ध खिलाड़ियों को पैसे की कमी नहीं है। उन्हें खेल के लिए बहुत अधिक रुपये मिलते हैं। वे विदेशी मुद्रा भी अर्जित करते हैं तथा अंतरराष्ट्रीय खेलों में अपने देश की प्रतिष्ठा में चार-चाँद लगाते हैं। ओलंपिक खेलों में अमेरिका, चीन और रूस की जो स्थिति है, वह हमारे देश की नहीं है, क्योंकि हमारे यहाँ खेलकूद पिछले दिनों कुछ हेय मानी जाती रही है। किंतु, अब इस स्थिति को सुधारने के भरसक प्रयत्न हो रहे हैं।

खेलकूद के कारण रोजगार के और भी अनेक वातायन खुले हैं। देश-विदेश में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खेलकूद के सामान बनानेवाले कितने ही कारखाने खुल गए हैं। हर बड़े शहर में सिर्फ खेलकूद-सामग्री की कितनी ही दूकानें खुल गई हैं, पत्र-पत्रिकाओं में क्रीड़ा-संवाद के लिए खेलकूद के जानकार लोगों को ढूँढ़ा जाता है तथा उन्हें अर्थोपार्जन का अवसर मिलता है। खेलकूद के नियमों पर अनेकानेक पुस्तकें लिखी जा रही हैं, किंतु हिंदी में यह सारा क्षेत्र बचा ही है। आकाशवाणी और टेलीविजन के बहुत-सारे कमेंट्री करनेवाले लोगों की जरूरत है। इस तरह, हम देखते हैं कि खेलकूद किसी प्रकार उपेक्षणीय नहीं है। चाहे उसे स्वास्थ्य की दृष्टि से देखा जाए, चाहे विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से, चाहे प्रतियोगिता या सामाजिक अभियोजन की दृष्टि से देखा जाए, चाहे व्यवसाय की दृष्टि से, चाहे खेल की दृष्टि से देखा जाय या वैयक्तिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अथवा विश्व में किसी देश के ख्यातिलाभ की दृष्टि से ही देखा जाए, आज संसार में खेलकूद का महत्त्व निःसंदिग्ध है।

हमारी राष्ट्रीय एवं राज्य सरकारों को खेलकूद को प्रोत्साहन देना चाहिए। जैसे स्कूलों में शारीरिक-शिक्षा में प्रशिक्षित व्यक्ति को शिक्षक नियुक्त किया जाता है, वैसे ही महाविद्यालयों में व्याख्याता के स्तर पर रखा जाए। खेलकूद के प्रशिक्षण की संस्थाएँ खोली जाएँ, प्रशिक्षण के लिए विदेश भेजने की व्यवस्था की जाए तथा सुंदर संगठित शरीरवालों के लिए साक्षात्कार में विशेष अंक देने की व्यवस्था की जाए, तो हमारे देश के युवावर्ग में खेलकूद के प्रति विशेष आकर्षण होगा।

मनोरंजन के साधन

[प्रारंभ, प्राचीन काल के मनोरंजन, आधुनिक काल के मनोरंजन, उपसंहार]

सुबह से शाम तक मशीन की तरह काम करते-करते तन ही नहीं थकता, बल्कि मन भी थककर चूर हो जाता है। इतना ही नहीं, एक ही तरह का काम लगातार करते रहने के कारण उस काम के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है, एकरसता आ जाती है, एक ऊब—एक बोरडम पैदा हो जाता है। शैथिल्य, श्रांति तथा उबाऊपन दूर करने के लिए आवश्यक है कोई-न-कोई मनोरंजन—ऐसा कार्य, जिसमें मन का रंजन होता हो, प्रसादन होता हो, विनोद होता हो। अतः, मनोरंजन के ऐसे साधन चाहिए, जो यांत्रिक गतानुगतिक जीवन में रुचिकर परिवर्तन उपस्थित करते हों।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि मनोरंजन मानव-जीवन के लिए कितना आवश्यक है। वह हमारे जीवन-यंत्र को गतिशील रखने के लिए ग्रीज है, जीवन की क्षुधा बढ़ानेवाला चूर्ण है, जीवन के बिरवे को पनपाने के लिए सिंचन है तथा जीवन की पहाड़ी चढ़ाई के लिए ताजा ऑक्सीजन है।

अत्यंत प्राचीन काल से मनुष्य के प्राण मनोरंजन के लिए मचलते रहे हैं। वह सदा उसके लिए साधनों का अनुसंधान करता रहा है। आदिम युग के मनुष्य के जीवनयापन और मनोरंजन का साधन आखेट ही था। मध्ययुग में नखकर्तन, हस्तरंजन, केशविन्यास, तीतरबाजी, पतंगबाजी, मेढ़े लड़ाना आदि मनोरंजन हुए; किंतु इस आधुनिक कार्यसंकुल वैज्ञानिक युग के मनोरंजन का सबसे सस्ता और सुलभ साधन चलचित्र हो गया है। शहरों में तीसों दिन दो-दो, तीन-तीन शो चलचित्र दिखाए जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो-तीन घंटे तक वहाँ बैठकर कथा-वार्तालाप, नृत्य-गीत आदि का आनंद लिया जाता है। यांत्रिक जीवन का बँधा तार थोड़ी देर के लिए टूटता है, मन पर लदा परेशानियों का बोझ थोड़ी देर के लिए खिसक जाता है, चिंताओं की चट्टान थोड़ी देर के लिए टूट जाती है।

इसी प्रकार, मनोरंजन के अन्य साधनों में ग्रामोफोन, रेकार्ड-प्लेयर, रेडियो, ज्यूक-बॉक्स, रेडियोग्राम, ट्रांजिस्टर, टेलीविजन आदि हैं। मन ऊब गया है, काम करने में जी नहीं लगता है। यदि गीत या वाद्य का रेकार्ड थोड़ी देर के लिए सुन लें, तो मन बिलकुल हलका हो जाता है और फिर हम मुस्तैदी से काम में जुट जा सकते हैं।

शहरों में कभी-कभी जादू का खेल दिखाया जाता है। दो-तीन घंटे के उस शो में हम अजीबोगरीब विस्मयकारी इंद्रजाल की दुनिया का सैर-सपाटा करते रहते हैं। एक-से-एक रोमांचकारी घटनाएँ दिखाई जाती हैं। अभी एक लड़की बक्से में बंद कर दी गई और दो मिनट में गायब, अभी एक हाथ की अँगूठी किसी दूसरे हाथ में चली गई; अभी एक नोट के सौ टुकड़े जोड़कर एक कर दिए गए; अभी आरे से चीरी गई लड़की मुस्कराने लगी—तरह-तरह के आश्चर्यजनक दृश्यों से पूरा मनबहलाव होता है। इसी तरह, शहरों में सर्कस आते रहते हैं। एक पतले तार पर कभी लड़की साइकिल चला रही है, तो कभी कोई चालक गोल घेरे में मोटरसाइकिल चला रहा है। कभी एक तिपाई पर गजराज बैठ गए हैं, तो कभी बिजली की छड़ी के डर से वनराज म्याऊँ-बिल्ली बने हुए हैं।

मनोरंजन के साधनों में अंतःकक्षीय तथा बहिःकक्षीय अनेक खेल हैं। अंतःकक्षीय (indoor) खेलों में ताश, शतरंज, कैरम, टेबुल-टेनिस, बिलियर्ड आदि आते हैं। बहिःकक्षीय (outdoor) खेलों में फुटबॉल, वॉलीबॉल, बास्केटबॉल, हॉकी, क्रिकेट, टेनिस, पोलो, स्केटिंग आदि हैं। बहुत लोग इन खेलों से आनंद प्राप्त करते हैं। फुटबॉल, क्रिकेट तथा रेस देखने के लिए अग्रिम टिकट कटाने पड़ते हैं और उनके टिकट ब्लैक में मिला करते हैं। इन खेलों में कुछ लोग इतने दीवाने होते हैं कि वे दिल्ली, बंबई और कलकत्ता से कानपुर तक की यात्रा केवल इसी के लिए किया करते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रदर्शनी, क्लब, झील, नदी, पार्क, मेला, पहाड़ी, वन तथा सागरतट पर घूमकर भी मनोरंजन किया जाता है। संगीत, नृत्य के आयोजनों से भी पर्याप्त मनोरंजन होता है।

गाँवों में मनोरंजन के विभिन्न साधन हैं—यात्रा, रामलीला, विदेशिया, नौटंकी, कीर्तन, रामायणपाठ। किंतु, गाँवों में नियमित रूप से इनका आयोजन नहीं होता, साल में कभी-कभी इस प्रकार के मनोरंजन का आयोजन किया जाता है।

पढ़े-लिखे व्यक्तियों के लिए पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें मनोरंजन के अच्छे साधन हैं। वे उपन्यास, यात्रावृत्तांत, जीवनी, कविता आदि से मनोरंजन करते हैं। इससे ज्ञानवर्धन तो होता ही है, मानवीय समस्याओं को समझने का अवसर तो मिलता ही है, मानवीय अनुभूतियों को परखने का मौका तो हाथ लगता ही है, साथ-ही-साथ बड़ी उत्कृष्ट कोटि का मनोरंजन भी होता है।

विदेशों में मनोरंजन के जैसे और जितने साधन हैं (थियेटर आदि), उतने और वैसे हमारे देश में नहीं हैं। बंबई और कलकत्ता में ऐसे कुछ साधन हैं। उनके अतिरिक्त बंबई में जुहू और चौपाटी के सागरतट पर घूमकर; कलकत्ता में बोटानिकल गार्डन, चिड़ियाखाना तथा प्लेनेटोरियम तथा दिल्ली में लालकिला, कुतुबमीनार, जंतर-मंतर आदि स्थानों में घूमकर भी थोड़ा मनोरंजन किया जा सकता है, किंतु समग्र भारत तो केवल दिल्ली, कलकत्ता, बंबई के त्रिभुज में ही सीमित नहीं है। अपितु, समग्र दक्षिण और उत्तर भारत में अनेक ऐसे स्थल हैं, जिनमें भ्रमण करके ज्ञानार्जन और मनोरंजन दोनों एक साथ किए जा सकते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रत्येक राज्य-सरकार को चाहिए कि वह मनोरंजन के नवीनतम साधन विकसित करे, ताकि देश के नागरिकों के व्यस्त शुष्क जीवन की मरुभूमि में थोड़ी देर के लिए हरियाली मिल जाए।

अतः, जीवन में सतत स्फूर्ति, एकरसता का निराकरण, गतिशीलता एवं दीर्घायुष्य के लिए मनोरंजन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। किंतु, मनोरंजन को हमें औषधि या कलेवा के रूप में स्वीकार करना चाहिए, पूर्ण भोजन के रूप में नहीं; इसे अल्पविराम के रूप में स्वीकार करना चाहिए, पूर्णविराम के रूप में कभी नहीं।

जीवन में हास्य-विनोद का स्थान

[भूमिका, वरदान, साहित्य में स्थान]

मानव की प्रकृतिप्रदत्त विभूतियों में एक बड़ी ही मोहक विभूति है—हास्य-विनोद। जिंदगी केवल कराहों का सिलसिला, आहों का जलजला और दर्द की दास्तान बनकर रह जाए, यदि उसमें हास्य-विनोद न हो। हास्य लाख दुःखों की एक दवा है, स्वास्थ्य का एक अनोखा मंत्र है। चिंताओं के पुलिंदे को थोड़ी देर के लिए अलग करने में हास्य और विनोद बड़े ही सहायक हैं। कविता केवल हृदय का उद्गार है, विनोद रोम-रोम का उद्गार है। विनोद एक प्रकार की पुष्टई है, जिससे शरीर और मस्तिष्क को नई शक्ति मिलती है, स्रस्त-त्रस्त शिराओं में मकरध्वज की ऊष्मा आ जाती है। गाँधीजी ने कहा है कि यदि मुझमें विनोद का भाव न होता, तो मैंने बहुत पहले ही आत्महत्या कर ली होती। संतों ने ठीक ही कहा है कि यदि दुःख में सुख की अनुभूति चाहते हो, तो हँसमुख बनो।

वह मनुष्य बड़ा ही भाग्यशाली है, जिसे विधाता से हास्य और विनोद का बहुमूल्य वरदान मिला है। फोटोग्राफर फोटो खींचने के समय चाहता है कि आप एक क्षण के लिए मुस्कराएँ, किंतु विधाता-फोटोग्राफर तो चाहता है कि आप जीवनभर मुस्कराते रहें। जिस मुख पर हास्य की दुग्धधवल, चाँदनी छिटकनी चाहिए, उसे क्या अधिकार है कि वह अपनी अयस्कांतीय आकृति को अवसाद की काली रेखाओं से अमावस की काली रजनी बना डाले? सुप्रसिद्ध जापानी कवि नागूची ने भगवान से वरदान माँगा है—"जब जीवन के किनारे की हरियाली सूख गई हो, चिड़ियों की चहक मूक हो गई हो, सूर्य को ग्रहण लग गया हो, मेरे मित्र एवं साथी मुझे काँटों में अकेला छोड़कर कतरा गए हों और आकाश का सारा क्रोध मेरे भाग्य पर बरसनेवाला हो, तब हे भगवान, तुम मुझपर इतनी कृपा करना कि मेरे ओठों पर हँसी की एक उजली लकीर खिंच जाए।"

हास्य और उल्लास का ही नाम जवानी है। उसे हम कभी युवा नहीं कहेंगे, जिसके चेहरे पर हर वक्त बारह बजा रहता हो, मुहर्रमी गम छाया रहता हो। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि हँसी की पृष्ठभूमि पर ही जवानी के फूल खिलते हैं। जिंदगी हास्य और विनोद के बिना अपनी जिंदादिली खो देती है।

हँसमुख व्यक्ति वह फव्वारा है, जिसके शीतल छींटे मन को प्रफुल्लित करते रहते हैं। वैयक्तिक जीवन की सफलता के अनेक रहस्यों में एक रहस्य हँसमुख आकृति का होना भी है। किसी साक्षात्कार में वह व्यक्ति आसानी से चुन लिया जाता है, जिसके

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ओठों पर मुस्कान की दुधिया रेखाएँ अठखेलियाँ करती हैं। पाश्चात्य देशों में बिना मुस्कराहट के अभिवादन अशिष्टता की निशानी मानी जाती है। हँसमुख व्यक्ति को देखकर यह धारणा बनती है कि उसके मन में कोई गाँठ नहीं, कोई उलझन नहीं विहँसता हुआ चेहरा ऐसा दर्पण है, जिसपर मन की स्वच्छ भावनाएँ प्रतिबिंबित होती हैं। ऐसे व्यक्ति के मित्र भी आसानी से बन जाते हैं और लोग उनकी संगति से दूर रहना नहीं चाहते। एक विक्रेता की मोहक मुस्कान वह काम कर जाती है, जो किसी जेबकतरे की कैंची नहीं कर पाती। एक हँसमुख डॉक्टर को देखकर ही आधी बीमारी भाग जाती है। एक सहजप्रसन्न शिक्षक की कक्षा में कभी उदासी की घटा नहीं छाती। एक हँसमुख-विनोदप्रिय नेता के पीछे अनुगामियों की कतार जुट जाती है।

दीर्घायु होने का सर्वोत्तम साधन है हँसमुख स्वभाव। हँसमुख आकृति मानो ऐसा आईना है, जिसमें परमात्मा की प्रसन्नता हर क्षण दिखाई पड़ती रहती है। मानसोपचारशास्त्री तो हास्यविनोद द्वारा अनके रोगों की चिकित्सा भी किया करते हैं। स्पार्टा में हास्यदेव की मूर्ति पाचनशक्ति बढ़ानेवाली मानी गई है।

सामाजिक जीवन में भी हास्य-विनोद की बड़ी उपयोगिता है। हँसी के एक झोंके से मन का मैल धुल जाता है, कटुता स्पिरिट की बूँद की तरह उड़ जाती है। कहा गया है—भाषा और भाषण का भूषण है विनोद। जिस व्यक्ति के भाषण में हास्य-विनोद का पुट होता है, उससे लोग सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। अतः, हास्य-विनोद केवल उदासी ही नहीं मिटाती, वरन् इससे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, पाश्चात्य देशों में 'अप्रिल फूल' तथा भारतवर्ष में 'होली' के पर्व ऐसे ही हैं, जिनमें वर्षभर की तिक्तता हास्यप्रेम की रंगीन पिचकारी से दूर हो जाती है।

कहा जाता है—Face is the index of mind—मुखाकृति व्यक्तिमानस की सूचिका है। इसलिए, हास्य-विनोद केवल स्वस्थ्य शरीर का ही लक्षण नहीं, स्वस्थ मन का भी सूचक है। इसलिए आप देखेंगे कि संसार के प्रायः सभी महापुरुष अतिशय विनोदप्रिय रहे हैं। अपने जीवन के तनाव को उन्होंने हास्य-विनोद से ही कम किया है, हास्य-विनोद की बूटी से ही उन्होंने कड़वे जमाने के पत्थर को भी पचा डाला है। स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, रवींद्रनाथ ठाकुर, शरतचंद्र आदि के व्यस्त जीवन को उनके हास्य की टिकिया ताजगी देती रही है। अमेरिका के राष्ट्रपति लिंकन तो अपनी मेज पर हर समय हास्यरस की कोई-न-कोई पुस्तक रखा करते थे और थकान की घड़ियों में उससे नई स्फूर्ति प्राप्त किया करते थे। महापुरुषों ने हास्य का सहारा लेकर गहन-से-गहन बातों को किस प्रकार सरल बनाया है, इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

महान साहित्यकारों ने अपने गहन-गंभीर साहित्य में हास्य-विनोद की अवतारणा कर उसके आकर्षण को और भी बहुगुणित कर दिया है। कालिदास, शूद्रक, शेक्सपियर आदि महान नाटककारों ने अपने नाटकों में विदूषक का प्रयोग इसी उद्देश्य से किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में विश्वसुंदरी की कामना करनेवाले बंदरमुँहे नारद द्वारा शिष्ट हास्य की अवतारणा कर सोने में सुगंध ला दी है। हार्डी के करुणाबोझिल उपन्यासों में गँवारों की बातचीत कितना मानसिक तनाव कम करती है, यह पाठक ही जानते हैं।

इतना ही नहीं, श्रेष्ठ कवियों ने हास्य-व्यंग्य द्वारा पाठकों की आँखों में उँगलियाँ डालकर उन्हें सचेत किया है, उन्हें दिग्भ्रांत होने से बचाया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की मुकरियाँ इस विषय में सुंदर उदाहरण हैं। एक मुकरी देखें—

तीन बुलाए तेरह आवैं, निज-निज विपदा रोई सुनावैं॥
आँखों फूटी, भरा न पेट, क्या सखि साजन ? नहिं ग्रैजुएट॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी तरह, बेढब बनारसी की इस हास्य-व्यंग्य-भरी उक्तियों से यदि हमारे नवयुवक न चेतें, तो फिर आश्चर्य ही है। वे कहते हैं—

नजाकत औरतों-सी, बाल लंबे, साफ मूँछे हैं,
नए फैशन के लोगों की अजब सूरत जनानी है।
जनेऊ इनकी नेकटाई है, पाउडर इनका टीका है,
नए बाबू की ह्विस्की आजकल गंगा का पानी है।

इसीलिए, हास्यसम्राट श्री जे० पी० श्रीवास्तव ने हास्य के बारे में ठीक ही लिखा है—"बुराई-रूपी पापों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा गंगाजल नहीं है । यह वह हथियार है, जो बड़े-बड़े का मिजाज चुटकियों में ठीक कर देता है। यह वह कोड़ा है, जो मनुष्य को सीधी राह से बहकने नहीं देता। मनुष्य ही नहीं, धर्म और समाज को भी सुधारनेवाला अगर कोई है, तो यही है।"

किंतु, यह ध्यान रखना चाहिए कि हास्य इतना अमर्यादित न हो जाए कि दूसरे की नींद हराम कर दे, ऐसा न हो जाए कि दूसरे के काम में रोड़े अटकाए। इसी प्रकार, विनोद की मात्रा का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

इसलिए, एक लेखक ने ठीक ही कहा है—विनोद चाहे कितना प्रिय और इष्ट क्यों न हो, तो भी उसके मूल्य या महत्त्व की निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिए। यदि सद्गुणों के साथ विनोद का मेल होगा, तो मानो दूध में मिसरी पड़ जाएगी अथवा उनकी जोड़ी में वैसी ही उज्ज्वलता और परिदीप्ति आ जाएगी, जैसी स्फटिक पर सूर्य की किरणें पड़ने से आती हैं। अतः, मर्यादित हास्य और विनोद परमात्मा का एक अनोखा वरदान है—इसमें संदेह नहीं।

अवकाश का उपयोग

[प्रारंभ, महत्त्व, प्रकार, अवहेलना, उपसंहार]

A poor life this, if full of care,
We have no time to stand and stare.

—W. H. Davies, *Leisure*

काम ! काम !! काम !!! कोल्हू के बैल की तरह दिन-रात जुटे रहना या पनचक्की के पंखे की तरह घूमते रहना ही वास्तविक जीवन नहीं है। जो व्यक्ति अहर्निश यंत्र की भाँति जूझते रहते हैं, उनकी शक्ति ही क्षीण नहीं होती, उनकी संभावनाओं के द्वार ही बंद नहीं होते, उनकी एकरसता ही उनकी शिराओं को शिथिल नहीं कर देती, वरन् उनका जीवन भी निरानंद हो जाता है। सांसारिक कार्यों में उलझे व्यक्ति का तन-मन इतना रिस जाता है कि वर्ड्सवर्थ ने ठीक ही कहा है—

The world is too much with us, late and soon,
Getting and spending we lay waste our powers.

परिवार का दुःसह भार उठाने, जीवनस्तर बढ़ाने और झूठी प्रतिष्ठा पाने के लिए हमें अधिकाधिक अर्थ की आवश्यकता होती है। इस अर्थसंग्रह में हमें एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है, दिन-रात घड़ी के पेंडुलम की भाँति डोलना पड़ता है, किंतु हमारे पास दो क्षण का अवकाश नहीं कि हम अपनी आत्मा के अनंत सागर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में उतरने की चेष्टा करें, जहाँ शक्ति का मूल स्रोत छिपा है। हम दो क्षण के लिए उस ओर नहीं झाँकना चाहते, जहाँ अहरह मधु-ज्योत्स्ना छिटकती रहती है, जहाँ मोहक संगीत का स्वर लहराता है। आत्मा के सागर में उतरने, उसके भीतर परमात्मा के दिव्यसंगीत सुनने, मन के दर्पण में झाँकने का अवकाश नहीं रह गया है। अतः, जीवन में ईश्वर की खोज कितनी आवश्यक है, उतनी ही व्यस्त जीवन में अवकाश की खोज।

अवकाश मनुष्य को यांत्रिक दिनचर्या के कारागार से निकालकर उन्मुक्त वायु में विचरित करा देनेवाला दैवी वरदान है। यह ऐसा श्यामल मेघ है, जो हमारे परितृषित-परिशुष्क जीवन को रसमय बना देता है। अवकाश ऐसा अस्वत्थतरु है, जिसकी छतनार डालियों पर मन की बुलबुल बेहिचक चहकती है, यह ऐसा सांध्य नीलगगन है, जिसमें मनुष्य कल्पना के रंगीन डैने फड़फड़ाता अवनि और अंबर को एक डोर में बाँधता रहता है।

अवकाश ऐसी मधुबेला है, जिसमें परेच्छा के जुए में जुता रहना नहीं पड़ता, वरन् स्वेच्छा से सब-कुछ किया जाता है। अवकाश की घड़ी में किसी मालिक की बिजली-छड़ी का भय नहीं व्यापता, किसी अधिकारी द्वारा सेवापुस्तिका पर कुछ लिखे जाने के डर की खौफनाक तलवार सर पर लटकती नहीं रहती, वरन् इस घड़ी में हर व्यक्ति अपना प्रभु स्वयं होता है। ये क्षण दूसरों के द्वारा क्रीत या निर्णीत नहीं होते, वरन् अपनी मधुर इच्छा से अनुप्राणित-आंदोलित होते हैं।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि जीवन के काँटों में यदि कोई फूल है तो अवकाश, जीवन के रेगिस्तान में यदि कोई नखलिस्तान है तो अवकाश।

अवकाश के कई प्रकार हो सकते हैं। कार्यांतरालवर्ती अवकाश, सप्ताहांत अवकाश तथा दीर्घ अवकाश। स्कूल में पढ़नेवाले छात्रों को दिन की सात घंटियों के बीच चार घंटियों के बाद अवकाश रहता है। कॉलेज में कहीं चार घंटियों के पश्चात् या कहीं बीच-बीच में एक-दो घंटियों पर अवकाश रहता है। इसी प्रकार, सचिवालय तथा सरकारी कार्यालयों में काम करनेवालों को मध्याह्न में अवकाश रहता है। कारखानों में काम करनेवालों के लिए अपनी पारी (shift) के बीच थोड़ा अवकाश रहता है। ऐसा अवकाश कार्य की एकरसता दूर कर नई स्फूर्ति देने के लिए आवश्यक होता है। महात्मा गाँधी तो अपने अत्यधिक व्यस्त समय में पाँच मिनट का समय निकाल लेते थे और विश्रास कर ताजा हो जाते थे।

साप्ताहिक अवकाश पाँच-छह दिनों के यांत्रिक जीवन से विराम पाने के लिए दिया जाता है। स्कूल, कॉलेज, सरकारी कार्यालय में हर रविवार को छुट्टी रहती है। दुकानदारों के लिए सप्ताह के किसी एक दिन दूकानबंदी आवश्यक होती है। कारखाना, डाक-तार, रेल आदि विभागों में काम करनेवालों को सप्ताह में एक दिन की छुट्टी रहती है। सात दिनों में एक दिन अपने मनबहलाव-मनोरंजन का दिन होता है। उस दिन कार्यालय, दूकान या स्कूल-कॉलेज में भागने को शीघ्रता नहीं रहती, असिद्ध भोजन जल्दी-जल्दी गटककर दौड़ने की जरूरत नहीं रहती, वही दैनंदिन काम नहीं करना पड़ता, वरन् वह तो इतमीनान का दिन होता है। बाकी दिन पत्नी, दोस्त-मित्रों से घड़ीभर चैन से बात करने का समय नहीं मिलता। छह दिन तो सोए बच्चों की केवल लंबाई देखनी पड़ती है। इस दिन इतना समय तो है कि दो घड़ी बच्चों के साथ घुलमिलकर बात की जाए। घर के पास ही इतना सुंदर पार्क है, जहाँ शाम को रंगीन फव्वारे का इंद्रधनुष लहराता रहता है, किंतु समय कहाँ है कि उसे देखा जाए! खैर, इस दिन तो दो घड़ी वहाँ बैठा जा सकता है, बगल में छोटी-सी खूबसूरत बगिया रंग-बिरंगे फूलों की डोलची लिए गंध का उपहार देने को व्याकुल है। इस दिन समय है कि जी-भर उसकी भीनी गंध से मन-प्राणों को मुअत्तर कर लिया जाए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ दुकानदार इस अवकाश के दिन नियम की अवहेलना करते हैं। वे सोचते हैं कि इस दिन तो और दुकानें बंद रहेंगी, अतः दुकान खोलकर नहीं, तो आधे पल्ले की खुली आड़ से ही जरूरतमंद ग्राहकों की वे जेबें कतरेंगे और अच्छा मुनाफा कमा लेंगे। किंतु, कुछ पैसों के लिए अवकाश के इस स्वर्णसुयोग की हत्या करना कतई उचित नहीं। विदेशों में छुट्टी रोकने के लिए बड़ी-से-बड़ी रकम देने पर भी काम हराम माना जाता है।

अब रही प्रलंब अवकाश की बात। स्कूल, कॉलेज तथा कचहरियों में अवकाश रविवार के अतिरिक्त लगभग तीन महीने का होता है। इनमें ग्रीष्म के लगभग दो महीने, पूजा के बीस-पचीस दिन, होली तथा बड़ा दिन के लगभग पाँच-छह दिन अवकाश रहते हैं।

ऐसे अवकाशों में छात्रों को पर्याप्त समय मिलता है। विशेषतः, उन्हें दीर्घ अवकाशों को केवल मनोरंजन-मनोविनोद में नष्ट नहीं कर देना चाहिए। गर्मी की छुट्टी हुई, तो बस चांडाल-चौकड़ी जम गई। ताश-शतरंज या व्यर्थ की गपबाजी में इन लंबी छुट्टियों का बहुमूल्य समय नष्ट करना उचित नहीं। उन्हें इस बीच पढ़ाए गए पाठों की आवृत्ति करनी चाहिए, उसे माँजते रहना चाहिए, ताकि वे अपने वर्ग में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर सकें। ऐसी छुट्टियों में उन्हें समाजसेवा, ग्रामसुधार, निरक्षरता-निराकरण, प्रौढ़ शिक्षा आदि अनेक प्रकार के कामों में भी थोड़ा समय देना चाहिए। स्वास्थ्य-सुधार के लिए भी स्थान-परिवर्तन किया जा सकता है। इन लंबी छुट्टियों में ही देश-दर्शन किया जा सकता है। शिक्षा का अर्थ किताबी कीड़ा बनना नहीं है, वरन् उन्हें समय निकालकर प्रकृति के खुले पृष्ठों का निरीक्षण करना चाहिए। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मृगशाला की दीवारों को तोड़कर प्रकृति की उन्मुक्त गोद में विचरण करना मानसिक विकास के लिए आवश्यक माना है।

शिक्षकों-प्राध्यापकों के लिए भी आवश्यक है कि इस अवकाश की अवधि को वे साधना एवं चिंतन में लगा दें, अपने ज्ञानक्षितिज का विस्तार करें, ताकि स्कूल या कॉलेज खुलने के पश्चात् वे ज्ञान की नई ज्योति अपने छात्रसमुदाय में वितरित कर सकें, अगतिशील समाज को नया मार्गदर्शन दे सकें। विधिवेत्ताओं के लिए भी आवश्यक है कि वे इस अवधि में किसी गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा करें तथा विधिक्षेत्र में नवीन सुधार के द्वार खोलने का प्रयत्न करें। देश-विदेश के जीवन का अध्ययन कर आत्ममूल्यांकन कर स्वयं को अध्ययन-स्तर पर लाने का प्रयत्न करना अध्यापकों-प्राध्यापकों के लिए भी उतना ही आवश्यक है, जितना विधिवृत्तिवालों के लिए।

इस प्रकार, यदि हम अपना, अपने समाज, देश या विश्व का कल्याण एवं औन्नत्य चाहते हैं, तो इसके लिए आवश्यक है कि हम अवकाश का महत्त्व समझकर उसका समुचित उपयोग करें।

मेरे सर्वप्रिय कवि

[आरंभ, महत्ता, उपसंहार]

आप जानना चाहते हैं कि मेरे सबसे प्रिय कवि कौन हैं? तो जान लें कि जिन्हें भक्तमाल-प्रणेता भक्तशिरोमणि नाभादास ने 'कवि कुटिल जीवन निस्तार हित वाल्मीकि'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का अवतार माना था, जिन्हें जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'गौतम बुद्ध के पश्चात् सबसे बड़ा जननायक' स्वीकारा था, जिन्हें सुप्रसिद्ध इतिहासलेखक विसेंट स्मिथ ने 'अकबर महान से भी महान व्यक्तित्व' सिद्ध किया है—वे ही मेरे लिए कवियों के ही कवि नहीं, वरन् महाकवियों के महाकवि, तुलसीदास की तरह अतिपावन, अतिशय प्रिय कवि हैं गोस्वामी तुलसीदास।

गंगा की धारा-से सतत प्रवहमाण एवं तपःपूत, सूर्य की किरणों-से सतत भास्वर, चाँद की रश्मियों-से सतत शीतल, गायत्री मंत्र-से सतत पवित्र, देवतात्मा हिमालय-से सतत प्रशस्त एवं प्रोन्नत, सागर-से सतत अगाध हैं हमारे ये महाकवि तुलसीदास।

'कवयः क्रान्तदर्शिनः' को चरितार्थ करनेवाले, 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः' को उदाहृत करनेवाले, बीजाक्षरी वाणीवाले मंत्रद्रष्टा प्रजापति कवि हैं तुलसीदास। जिस भाषा में वे अवतीर्ण हुए, वह भाषा धन्य हो गई, जिसने वह भाषा पढ़ी, वह धन्य हो गया। वे आजीवन दिगंतव्यापी क्रांति की मशाल जलाते रहे, हताश-निराश बुझी-बुझी आत्माओं में पौरुष का अलख जगाते रहे। उन्होंने बनी-बनाई, पिटी-पिटाई विषयवस्तु की लीक को तोड़ा। छोड़ा उन्होंने बहुवल्लभ दुष्यंत तथा छछिया भरि छाछ पै नाच नचानेवाले, देख्यो दुरो वह कुंजकुटीर में बैठो पलोटतु राधिका पाँयन, वंशीबजैया, रासरचैया, कुँअर कन्हैया को और पकड़ा रघुकुलकमल-दिवाकर दशरथ-अजिरविहारी सीतापति श्रीराम को, जिन्होंने अपना सारा जीवन ही लोकसेवा की बलिवेदी पर सहर्ष उत्सर्ग कर दिया था।

गोस्वामीजी का बाल्यकाल मखमली गद्दी पर नहीं बीता, उन्हें उपेक्षाओं-प्रताड़नाओं का गरल-घूँट बार-बार पीना पड़ता था, किंतु वे विषपायी नीलकंठ मानवता के कल्याण के लिए उपकरण जुटाते ही रहे। भ्रमर को कँटीली डालों का चक्कर लगाने में न मालूम कितने कष्ट झेलने पड़ते हैं। किंतु, वह भयभीत-पराजित होकर अपनी वृत्ति से पराङ्मुख नहीं होता और तभी तो हमारे समक्ष अपना मधुकोष लुटा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने स्वयं तो भ्रमर की भाँति काँटों की चुभन सही, किंतु हमारे लिए काव्य का अक्षय मधुच्छत्र उपहारस्वरूप अर्पित किया।

''देश-काल के शर से बिंधकर' जब ये 'अशेष छविधर' कवि जागे, तब इन्होंने सभी प्रचलित काव्यविधाओं में साहित्य-सर्जन किया। इनके प्रामाणिक ग्रंथों की संख्या बारह है। यदि 'रामचरितमानस' महाकाव्य है, तो 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' तथा 'श्रीकृष्णगीतावली' गीतिकाव्य हैं; 'पार्वतीमंगल' तथा 'जानकीमंगल' खंडकाव्य हैं, तो 'कवितावली' 'दोहावली', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'बरवै-रामायण', 'वैराग्यसंदीपनी' तथा 'रामलला-नहछू' मुक्तक काव्य। सारी शैलियों को राममय करने की दृष्टि से ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं, फिर भी 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' तो सबसे महत्त्वपूर्ण हैं।

'रामचरितमानस' एक ऐसा मृत्युंजय ग्रंथ है, जिसकी चर्चा संसार की श्रेष्ठ भाषाओं के विचारकों ने की है। संसारप्रसिद्ध ग्रंथों की दो कोटियाँ हैं। एक में 'वेद', 'बाइबिल', 'कुरान' जैसे धार्मिक ग्रंथ आते हैं और दूसरी में ग्रीक महाकवि होमर की 'इलियड' और 'ओडेसी', इटालियन महाकवि दाँते की 'डिवाइन कॉमेडिया', मिल्टन की 'पैराडाइज लॉस्ट', शेक्सपियर की 'किंग लियर' और 'मैकबेथ', कालिदास की 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजली' जैसी रचनाएँ आती हैं। किंतु, 'रामचरितमानस' में इन दोनों कोटियों का आश्चर्यजनक समन्वय हुआ है। यही कारण है कि यदि मानस आस्तिकों का मनोमुकुट है, तो दूसरी ओर साहित्यिकों का कंठहार। 'मानस' इतने गुणों की खान है कि उनका बखान संभव नहीं। इसके एक-दो गुणों का आकलन ही यहाँ अलम् होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय संस्कृति के दो प्रबल स्तंभ हैं—सत्य और त्याग। इन्हीं दोनों के आधार पर महान-से-महान बना जा सकता है। तुलसी के नायक भगवान राम तथा उनके परिवार के सदस्यों ने सत्य और त्याग का पालन जिस दृढ़ता से किया है, वैसा सत्य और त्याग का पालन अन्यत्र दुर्लभ है।

राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वरदान दिए थे। राजा ने कैकेयी के प्रति अपने वचननिर्वाह के लिए अपने प्रिय पुत्र राम को चौदह वर्षों का वनवास दिया तथा अपने पुत्रप्रेम को प्रमाणित्त करने के लिए अपना शरीरत्याग किया—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाई बरु बचनु न जाई॥

—रामचरितमानस

राजा दशरथ की आँखों के तारे सुकुमार राम ने चक्रवर्ती सम्राट की सारी संपदाओं को ठुकराकर वन के लिए पैदल प्रस्थान किया। जिन जनकतनया 'जीवनमूरि' सीता ने कभी कंटकाकीर्ण कठोर मार्ग पर गमन नहीं किया था, वे ही राम के साथ कष्ट झेलती रहीं। पुर से आगे दो कदम रखते ही सीता के मधुराधर सूखने लगे थे, भाल पर स्वेदजल की कणिकाएँ चमकने लगी थीं। किंतु, राम के लिए ये कष्ट साधारण थे। मार्ग के कंटकों को पाँव-तले रौंदते, गिरिनिर्झरों को लाँघते राम पंचवटी पहुँचे। पंचवटी में रहते समय रावण ने सीता का हरण किया। राम सीता के विरह में बड़े ही उद्विग्न हुए, फिर भी उन्होंने हार न मानी। जड़ उदधि ने लंका का रास्ता रोक दिया, किंतु राम ने नल-नील की सहायता से उसपर पुल बाँध लिया। रावण से उनकी घमासान लड़ाई हुई। लक्ष्मण मूर्च्छित हुए, फिर भी विजयलक्ष्मी ने राम का ही वरण किया।

इसका कारण स्पष्ट है कि राम ने कभी सत्य और त्याग का पल्ला नहीं छोड़ा। रावण के पास पाशविक शक्ति थी, तो राम के पास आत्मिक शक्ति। रावण को रथी और राम को विरथ देखकर भक्त विभीषण का कोमल चित्त विचलित हो उठा था। विभीषण को सांत्वना देने के लिए भगवान राम ने अपने जिस रथ का वर्णन किया है, उससे हम अपने चरित्ररथ का निर्माण कर सकते हैं—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। वर विग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

—रामचरितमानस

आज जिस ढंग से पारिवारिक व्यवस्था चरमराकर टूट रही है, वैसी ही गोस्वामीजी के युग में भी शुरू हो गई थी। जबतक परिवार सुगठित नहीं हो तबतक सुगठित समाज की आशा नहीं की जा सकती। एक परिवार में जब एक भाई दूसरे भाई के खून का प्यासा हो तब समाज में भ्रातृत्व रहे, इसकी कल्पना व्यर्थ है। अतः, सामाजिक संबंधों के समुचित निर्वाह के लिए 'रामचरितमानस' हमारा जितना पथप्रदर्शन करता है, उतना हिंदी का कोई दूसरा ग्रंथ नहीं।

डॉ॰ जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'रामचरितमानस' को उत्तर भारत की 'बाइबिल' माना है। वस्तुतः, भारतीय जनता तुलसीदास की रचना को 'बाइबिल' से भी अधिक आदर देती है।

गोस्वामी तुलसीदास की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है 'विनयपत्रिका'। 'विनयपत्रिका'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। प्रेमी-प्रेमिका के बीच पत्र-व्यवहार भले ही साहित्य में वर्णित हुआ हो, किंतु एक भक्त का भगवान के पास पत्र लिखना बिलकुल नई बात है, जो 'विनयपत्रिका' में देखी जा सकती है। 279 पदों की इस पुस्तक में भक्तिरस की सुरसरिता उमड़ चली है। गोस्वामीजी ने इसमें अपनी दीनता और कलुष का कच्चा चिट्ठा उपस्थित करते हुए 'कलि की कुचालि' तथा उसके दुराचारों का विवरण भी प्रस्तुत किया है। इसके बारे में पं॰ रामनरेश त्रिपाठी का कहना है, ''तुलसी को यह पत्रिका लिखने में जैसी सफलता मिली है, उस अनुपात में वह उसके और किसी ग्रंथ में नहीं है। 'मानस' में, खासकर अयोध्याकांड में, उनकी कविता-शक्ति सावन-भादो की नदी की भाँति उमड़ी हुई दिखाई पड़ती है। पर, अरण्य, किष्किंधा, सुंदर और लंका कांडों में वह घटते-घटते जेठ-वैशाख की नदी की तरह छिछली हो गई है, कहीं-कहीं उसमें गड्ढे हैं, जिससे कुछ अधिक जल जरूर जमा मिलता है। पर, 'विनयपत्रिका' में आदि से अंत तक कवि की रसधारा एक-सी प्रवाहित है। उसमें प्रचुर ज्ञान, गंभीर अनुभव, भाषा और भाव पर कवि के अबाध अधिकार का रोचक इतिहास कमल की तरह सर्वत्र विकसित मिलता है।''

उनकी अन्य पुस्तकों का भी चिरस्थायी महत्त्व है। उन्होंने अपनी प्रतिभा का पारस-परस जिसे प्रदान किया, वह स्वर्ण बन गया—पूर्ण मूल्यवान एवं भास्वर। 'छू दिया जिसे, वह स्वर्ण हुआ, छू गई रात मधुप्रात हुई'—पंक्ति उन्हीं पर चरितार्थ होती है।

गोस्वामीजी संदेशों, आदर्शों एवं उदात्त कल्पनाओं के कवि हैं। उन्होंने इनकी अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा को माध्यम के रूप में लिया, जो तब तक पूर्णतः उपेक्षित थी। हिंदी-भाषा को अपनाकर उन्होंने इसके सामर्थ्य का द्वार खोल दिया। इसलिए, आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह कथन उचित ही मालूम पड़ता है, ''यह एक कवि ही हिंदी को एक प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।''

अतः, भारतीय जनता के ये प्रतिनिधि कवि, जिन्होंने भारतीय संस्कृति के चिन्मय आकाशदीप को प्रज्वलित कर अनुकरणीय जीवनसरणि का निर्माण किया, हमारे लिए वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि से भी अधिक प्रिय हैं—ऐसा हम निःसंकोच कह सकते हैं। धन्य हैं महाकवि। आपके बारे में महाकवि हरिऔध ने ठीक ही कहा है—

कविता करसे तुलसी न लसे।
कविता लसी पा तुलसी की कला॥

मेरे सर्वप्रिय लेखक

[आरंभ, साहित्यिक साधना, उपसंहार]

विश्व-साहित्य के इतिहास में ऐसे अनेकानेक लेखक उत्पन्न हुए हैं, जो अपनी महान रचनाओं के कारण अमर हो गए हैं। आधुनिक युग में मेटरलिंक, हॉफमैन, रवींद्रनाथ ठाकुर, रोम्याँ रोलाँ, अनातोले फ्रांस, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, टॉमस मान, गाल्सवर्दी, यूजेन ओ नील, पर्ल बक, हर्मन हेस, आंद्रे जीद, विलियम फॉकनर, बर्ट्रैंड रसेल, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, आलबेयर कामू, बोरिस पास्तरनाक, जीन स्टेनबेक, बालजॉक, टॉलसटॉय, रस्किन, तुर्गनिब, दोस्तोवस्की, गोर्की जैसे विश्वविश्रुत लेखक हुए, किंतु मुझे अपनी भाषा हिंदी के महान लेखक प्रेमचंद जितने पसंद आए, उतना कोई अन्य नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह बात दूसरी है कि प्रेमचंद नोबेल-पुरस्कार से पुरस्कृत नहीं हुए। किंतु, हिंदीभाषी जनसमुदाय ने उन्हें जो अपनी अपार श्रद्धा का अर्घ्य दिया है, वह विश्व के महत्तम पुरस्कारों से भी महान है। प्रेमचंद कभी राजकीय सम्मानों से समलंकृत नहीं हुए। उन्हें जीवन में कभी सुखोपभोग नहीं प्राप्त हुआ, जली हुई बीड़ी को दुबारा-तिबारा पीते रहे, फिर भी उन्होंने जो शाश्वत साधना का सरसिज खिलाया, वह अपने सारस्वत सौरभ से दिग्दिगंत को परिपूरित करता है।

कौन लेखक किसी के लिए सबसे प्रिय हो सकता है—इसमें वैयक्तिक रुचि भी काम करती है; किंतु मेरे लिए वही लेखक सर्वाधिक प्रिय हो सकता है, जो केवल, कल्पना के कमनीय पंखों पर सवार होकर व्योमविहार न करे, वरन् जिसके साहित्य में यथार्थ जीवन की स्पष्ट झलक हो। वह साहित्य, जो केवल यौनभावनाओं को उत्तेजित करता हो, जिसमें वासना का विजृंभण हो, मेरी दृष्टि में हेय है। साहित्य वह नहीं, जिसमें केवल इत्र की खुशबू हो, बल्कि हमारी सोंधी मिट्टी की खुशबू हो—ऐसा साहित्य, जिसमें हमारे युग, हमारे समाज, हमारे जीवन ही प्रतिबिंबित न होते हों, वरन् पढ़-सुनकर हम अपने जीवन और समाज को सँवार भी सकते हों। लेखक का कार्य समाज में वर्ग, जाति, संप्रदाय जैसी संकीर्णताओं का विषवमन करना नहीं है, वरन् उसका काम दिग्भ्रांत समाज का अमृत-सिंचन है। निर्भीकता, व्यापकता और सहजता के संगम पर अवस्थित लेखक ही हमारा कंठहार हो सकता है। जो लेखक कूटशैली में लिखता है, जिसके लिए मस्तिष्क को पूरा व्यायाम करना पड़ता है, वह मुझे ग्राह्य नहीं, वरन् जिसकी रचना गंगाजल की तरह सर्वसुलभ तथा शीशे की तरह पारदर्शी हो, वही मुझे सर्वाधिक प्रिय मालूम पड़ता है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

—रामचरितमानस

साहित्य की सरिता जब जनसमुदाय के हर्ष-विषाद से तरंगित होती है, तभी वह भागीरथी की तरह ग्राह्य होती है, अन्यथा वह कर्मनाशा के सदृश त्याज्य है। प्रेमचंद ने लगभग 36 वर्षों के अपने साहित्यिक जीवन में तीन सौ के लगभग कहानियाँ, एक दर्जन उपन्यास, तीन-चार नाटक, अनेक निबंध तथा बालोपयोगी साहित्य की रचना की। उन्होंने दूसरी भाषाओं से अनुवाद किया है, किंतु उनकी अमर कीर्ति का मूलाधार ये ही रचनाएँ हैं—

उपन्यास—'गबन', 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा', 'प्रेमाश्रम', 'सेवासदन', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'गोदान', 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण)।

प्रमुख कहानियाँ—'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'आत्माराम', 'पंच-परमेश्वर', 'नशा', 'बूढ़ी काकी', 'इस्तीफा', 'दफ्तरी', 'बड़े घर की बेटी', 'कफन', 'नमक का दारोगा', 'रानी सारंधा', 'घासवाली', 'लांछन', 'सौत', 'सत्याग्रह', 'प्रायश्चित्', 'कामना'।

नाटक—'कर्बला', 'प्रेम की वेदी', 'संग्राम', 'रूठी रानी'।

निबंध—'कुछ विचार', 'निबंध-संग्रह'।

अनुवाद—'टॉलस्टॉय की कहानियाँ', 'अहंकार', 'आजाद-कथा'।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों को न केवल वर्णनाडंबर से विमुक्त किया, वरन् उसे प्रथम बार जीवन की संवेदनाओं से पूर्ण किया। उन्होंने मानव-मनोविज्ञान का चित्रण बड़ी सुगमता से किया। प्रेमचंद की कहानियाँ केवल मनोविनोद का उपकरण नहीं हैं, वरन् जीवन के सघन शिलीभूत क्षणों की बड़ी ही मार्मिक एवं सजीव अभिव्यक्ति हैं, जिनमें गहराई तक डूबने की आवश्यकता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रेमचंद के पूर्व देवकीनंदन खत्री तथा किशोरीलाल गोस्वामी के तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों का जमाना था। उपन्यास या तो मनःप्रसादन का साधन था अथवा अभिभावक की नजर बचाकर पढ़ने का रहस्यपुराण। प्रेमचंद ने पहली बार उपन्यास को खुली हवा दी, प्रशस्त भूमि प्रदान की। जो उपन्यास अस्पृश्य था, प्रेमचंद की लेखनी का पारसस्पर्श पाकर स्तरीयता से मंडित हो गया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में शोषितों, दलितों और पीड़ितों की जीवनगाथा बड़े ही हृदयवेधक एवं सशक्त शब्दों में व्यक्त की है। जनसमाज में व्याप्त विषमता के अनगिनत चित्र उनके कथा-साहित्य में भरे पड़े हैं। तद्युगीन क्षोभ एवं असंतोष की स्वरलहरियों को बारीकी से पकड़ समग्र वायुमंडल में उत्क्षिप्त करने का श्लाघ्य प्रयास उन्होंने किया है। उनकी सारी रचनाओं में सामंती समाज, उसके अत्याचार, रजवाड़ों का खोखला जीवन, नौकरशाही की पतनोन्मुख संस्कृति के साथ किसान, मजदूर, अध्यापक, छात्र और साधारण लोगों की विकासोन्मुख संस्कृति का भी अंकन हुआ है। प्रेमचंद ने अपने आरंभिक उपन्यासों में समाधान खोजने का प्रयत्न किया था। उन्होंने सेवासदन खोलने और कायाकल्प करने की बात कही थी, किंतु पीछे चलकर उनके विश्वासों का शीशा चकनाचूर होता नजर आता है। इसलिए, 'गोदान' में कोई समाधान नहीं है, वरन् समस्याओं का निस्सीम सागर ही लहराता दीखता है। बीसवीं सदी के आरंभिक चार दशकों की, अपने राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक हलचलों का चित्र प्रेमचंद के साहित्य में स्पष्टता से उभर आया है। उनका साहित्य पराधीन भारत की धड़कनों एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति की आकांक्षाओं का सुंदर संगम है।

प्रेमचंद की दृष्टि बड़ी व्यापक एवं सारग्राहिणी थी। किसानों की झोपड़ी से राजमहल तक, बड़े-बड़े बैंकों के अधिपतियों तथा मिल-मालिकों से छोटे चमारों और मजदूरों तक की रहन-सहन, आचार-विचार आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण उन्होंने किया है। प्रेमचंद के साहित्य का आधार ऐसे तो उत्तरप्रदेश का पूर्वी अंचल है; किंतु उनके साहित्य में संपूर्ण मानवसमाज की आशा-आकांक्षाओं की कहानी चित्रित हुई है। वे सदा मानव की एकता, समता तथा स्वाधीनता के लिए जूझते रहे, अभावग्रस्त मानव की वकालत करते रहे। किंतु, इतना होते हुए भी उनका साहित्य निराशा से हमें बोझिल नहीं करता, वरन् एक नई आशा की किरण से दीप्त करता है। उनका साहित्य समाजवादी जीवनदर्शन, जनवादी भावना, धर्मनिरपेक्षता, मानवता, विश्व-बंधुत्व आदि का उद्घोष करता है। उन्होंने साहित्य के अनुपम उद्यान को अपने अंतस के रस से सींचा है। यही कारण है कि इसका परिमल हमारे मुरझाते हृदय को प्रफुल्लित करता है। उन्होंने कभी अर्थप्राप्ति के लिए साहित्य नहीं रचा, उत्प्रेरणा से रचा। उनका जीवन एक दीपक की तरह था, जो जलकर सबको प्रकाश देता रहता है। आदर्श और यथार्थ के कूल-कछारों के बीच प्रेमचंद की साहित्य-सरिता कल-कल छल-छल करती हुई हमें अपने दिव्य संगीत से मोहती है। उनका साहित्य जनजीवन की गीता है; सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् का त्रिवेणी-संगम है। उनके साहित्य में मानव-मन का एक नया क्षितिज हमारी आँखों के समक्ष उभरता है।

मेरे विचार से वही साहित्य खरा है, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सर्जन की प्रेरणा एवं सच्चाई का प्रकाश हो। प्रेमचंद का साहित्य इस कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरता है। सचमुच, उपन्यासकार-सम्राट प्रेमचंद अपनी अंतर्दृष्टि, विलक्षण प्रतिभा, गहरी संवेदना एवं अद्भुत चित्रणशक्ति के कारण हमारे लिए सदा हृदयहार बने रहेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मेरी सबसे प्रिय पुस्तक

[पार्थक्य, वैशिष्ट्य, उपसंहार]

अब तक मैंने जिन थोड़ी-सी पुस्तकों का आद्यंत पारायण किया है, उनमें कालिदास की 'शकुंतला', महात्मा गाँधी की 'आत्मकथा', 'गीता', शेक्सपियर का 'हैमलेट' तथा तुलसीदास का 'रामचरितमानस' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सभी मुझे अच्छी लगीं, किंतु 'रामचरितमानस' जिस प्रकार मेरे मन-प्राणों पर छा गया, अन्य कोई नहीं। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव डालनेवाली जिन पुस्तकों का उल्लेख किया है, उनमें उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

'रामचरितमानस' की सर्वश्रेष्ठता का स्वीकरण संसार के बड़े-बड़े लेखकों ने किया है। जॉर्ज ग्रियर्सन का कहना है कि ईसाई जनता में 'बाइबिल' का जितना प्रचार है, उससे अधिक 'रामचरितमानस' का हिंदू-जगत् में प्रचार और आदर है। यदि हिंदी के विशाल सागर में केवल 'रामचरितमानस' रह जाए, तो भी हिंदी दरिद्र नहीं हो सकती है।

'रामचरितमानस' का आदर दीन-दलितों के पर्णकुटीरों से महाराजाओं के राजप्रासादों तक समान रूप से है। यदि एक ओर निरक्षर भट्टाचार्य भैंस चराते हुए इसकी चौपाइयाँ गुनगुनाते हैं, तो दूसरी ओर बड़े-बड़े पंडित चौपाइयों को मंत्र की तरह जपते हैं।

'रामचरितमानस' यदि एक ओर वैदिक ऋचाओं की तरह ईश्वरीय काव्य है, तो दूसरी ओर 'गीता' की भाँति धर्मोपदेश। यदि एक ओर यह 'मनुस्मृति' है, तो दूसरी ओर उत्तमोत्तम काव्य का निदर्शन। संसार में 'बाइबिल', 'कुरान', 'ऐज यू लाइक इट', 'गीता' और 'मेघदूत' जैसे अनेक धर्मग्रंथ तथा काव्यग्रंथ अलग-अलग मिल सकते है, किंतु जहाँ 'गीता' और 'मेघदूत', 'बाइबिल' और 'ऐज यू लाइक इट' एक सूत्र में गुँथे हों, इसका एकमात्र उदाहरण है 'रामचरितमानस'।

'रामचरितमानस' हरि अनंत हरि कथा अनंता की भाँति अनंत गुणोंवाला है। यह हमारे हिंदूसमाज की आधारशिला है, हमारी परमोज्ज्वल संस्कृति का तपःपूत आलोकगृह है। श्रीराम जैसे पुत्र, भरत और लक्ष्मण जैसे भाई, सीता जैसी पत्नी, कौशल्या जैसी माता, सुग्रीव जैसे मित्र तथा हनुमान जैसे सेवक भारत की गौरवदीप्त परंपरा के ध्रुवतारक हैं। यदि इस दिशा में अपनी चरित्र का गठन कर पाएँ, तो सारे संसार में मनुष्यता के उत्थान की नवीन आशा बँध सकती है और दोस्तोवस्की के कथन मनुष्य बर्बर पशुओं से भी अधिक बर्बर है से व्याप्त निराशा का अंधकार मिट सकता है।

'मानस' एकाकी मत के कट्टरपन में विश्वास नहीं करता, वरन् यह तो समन्वय की समतल भूमि पर अवस्थित है। मानस में चार घाट हैं। इसकी कथा के चार वक्ता हैं—1. शिव 2. कागभुशुंडि 3. याज्ञवल्क्य 4. तुलसी स्वयं। इसके चार श्रोता हैं—1. पार्वती 2. गरुड़ 3. भारद्वाज 4. सुजन। ये चारों—देव, पक्षी, ऋषि और मनुष्य—चार श्रेणियों के प्रतिनिधि हैं। 'रामचरितमानस' की यही विशेषता है कि इसके पात्र पशु-पक्षी से देवता तक हैं। इसका आधारफलक इतना विस्तीर्ण है कि यह अपने में चराचर विश्व को संपुटित कर लेता है। इतना ही नहीं, इन चारों घाटों के माध्यम से दर्शन और भक्ति के चार पक्ष उद्घाटित हुए हैं। इनका संयोजन मानस की रूपकात्मकता को सार्थक करता है। प्रथम घाट में विशिष्टाद्वैत है, जो ज्ञानपरक कहा जा सकता है; द्वितीय में द्वैताद्वैत है, जो उपासनापरक कहा जा सकता है; तृतीय में शुद्धाद्वैत है, जो कर्मपरक कहा जा सकता है और चतुर्थ में अद्वैत है, जो शिवपरक कहा जा सकता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'मानस' काव्य और दर्शन का सेतुबंध है—अनुभूति एवं चिंतन का संगमस्थल है। काव्यात्मकता के लिए 'पुष्पवाटिका-प्रसंग' की ये पंक्तियाँ देखें—

कंकन, किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्हीं॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोकत चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

चिंतन से ओतप्रोत कुछ पंक्तियाँ भी देखें—

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुणग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
सद्गुर ग्यान विराम जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीच सकल ब्रत धरम नेम के॥

वस्तुतः, 'रामचरितमानस' काव्य का कीर्तिमान, भक्ति का जयलेख एवं दर्शन का महाप्राण है। यह युग-युग के विषम ज्वर को मापने का थर्मामीटर है, प्रतिकूल परिस्थितियों के भार को जाँचने का बैरोमीटर है, समाज के क्रमिक कंपन को परखने का सिस्मोग्राफ है तथा मानव मन के कुत्सित कीटाणुओं को पहचानने का माइक्रोस्कोप है। यह ऐसा दिव्य ग्रंथ है कि इसके प्रत्येक अक्षर को आत्मसात् कर लेना चाहिए। यदि ऐसा करने में हम समर्थ हो सकें, तो केवल हमारा पथ ही प्रकाशित न होगा, केवल प्रगति के कनकाभ शिखर ही हमारे पाँव न चूमेंगे, वरन् हम भूले-भटके मानव को नवीन मार्ग भी दिखा सकेंगे।

राष्ट्रभाषा हिंदी

[आरंभ, पक्ष में तथ्य, आवश्यकता, उपसंहार]

भारत एक महान एवं विशाल देश है। इसमें अनेक राज्य हैं। विभिन्न राज्यों की विभिन्न भाषाएँ हैं—बंगाल की बँगला, असम की असमिया, उड़ीसा की उड़िया, महाराष्ट्र की मराठी, तमिलनाडु की तमिल, केरल की मलयालम, आंध्र की तेलुगु, कर्नाटक की कन्नड़ आदि—किंतु जो भाषा संपूर्ण राष्ट्र को एक स्नेहसूत्र में बाँधती है, वह तो हिंदी ही है।

हिंदी अँगरेजों के शासनकाल में भी राष्ट्रभाषा थी। भले ही इसे राष्ट्रभाषा की मान्यता न मिली हो। अँगरेजी-शासन को जिस प्रकार हमने सात समुंदर पार वापस भेजा, उसी प्रकार उनकी भाषा—दासता की निशानी अँगरेजी को भी बाहर करना आवश्यक था। संसार के जितने भी स्वाधीन राष्ट्र हैं, उनकी अपनी राष्ट्रभाषा है; जैसे—रूस की रूसी, फ्रांस की फ्रांसीसी, जापान की जापानी, चीन की चीनी, इसलिए जब भारत स्वतंत्र हो गया, तब इसके लिए भी अपनी राष्ट्रभाषा आवश्यक थी। यह संयोग और सौभाग्य हिंदी को प्राप्त हुआ।

हिंदी ही राष्ट्रभाषा हो—इसके पक्ष में अनेक तथ्य हैं। जिस तरह जनतांत्रिक राजनीतिक दृष्टि से बहुसंख्यक पक्ष का महत्त्व होता है, उसी प्रकार जिस भाषा के बोलनेवाले सबसे अधिक हैं, उसका महत्त्व अन्य भाषाओं की तुलना में सबसे अधिक हो जाता है। भारतवर्ष में हिंदी बोलनेवालों की संख्या तीस करोड़ के लगभग है,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जबकि अन्य भाषाओं के बोलनेवालों की संख्या चार-पाँच करोड़ से अधिक नहीं है। दूसरी बात है कि हिंदी बोलनेवाले और समझनेवाले देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं। देश के 90 प्रतिशत लोग हिंदी के माध्यम से विचार-विनिमय कर सकते हैं। वाणिज्य व्यापार, तीर्थाटन आदि सब हिंदी के द्वारा ही संपन्न होते हैं। भारत के उत्तरी क्षेत्र का व्यक्ति जब सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् पहुँचता है, तब वह अँगरेजी की शरण नहीं लेता। उसका सारा काम हिंदी से ही चल जाता है। वहाँ के कुली भी तमिल आदि में बात न कर हिंदी में ही बात करते हैं। भारत के जिस कोने में जाना हो, हिंदी जानने से काम चल सकता है, किंतु केवल बँगला, तमिल या तेलुगु जानकर काम चलाना संभव नहीं है। भारतवर्ष के बाहर भी लंका, अंडमान-निकोबार, वेस्ट इंडीज, बर्मा, ब्रिटिश गायना, सूरिनाम, फिजी, मॉरिशस आदि स्थानों में हिंदी की सहायता से काम चल जाता है। भारतवर्ष की एकमात्र व्यापक भाषा हिंदी ही है, जिसका प्रचार भारत की सीमा के बाहर भी है। महाकवि हरिऔधजी ने ठीक ही कहा था—

दो सूबों के भिन्न-भिन्न बोलीवाले जन।
जब करते हैं खिन्न बने मुख भर अवलोकन॥
जो भाषा उस समय काम उनके है आती।
जो समस्त भारत-भू में है समझी जाती॥
उस अति सरला उपयोगिनी हिंदी भाषा के लिए।
हममें कितने हैं जिन्होंने तन मन धन अर्पण किए॥

तीसरी बात है, यह भाषा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में सरल है। इसकी लिपि वैज्ञानिक तथा सुगम है। हिंदी की देवनागरी-लिपि जानकर हम मराठी और नेपाली पढ़ ले सकते हैं। संस्कृत की सारी परंपरा और विरासत को इसने अपने में आयत्त किया है। चौथी बात है कि यह सारे भारत की—'हिंद' की भाषा है, स्थानविशेष की नहीं। 'हिंद' से 'हिंदी' बनी है—बंगाल से बँगला या असम से असमिया की तरह इसमें स्थानीय रंग नहीं है।

हिंदी जब भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा मान ली गई, तब मुट्ठी-भर राजनीतिक स्वार्थियों ने कहना आरंभ किया कि हिंदी को महत्त्व देने से अन्य भारतीय भाषाएँ उपेक्षित हो जाती हैं, हिंदी को राष्ट्रभाषा मानने से 'हिंदी साम्राज्यवाद' का बोलबाला हो जाएगा। जो नेता हिंदी व्यवहार न करने के कारण लोगों को जेल भिजवाते थे, वे ही हिंदी के विरोध में झंडा उठाने लगे।

किंतु, उन्हें यह समझना चाहिए कि हमारे राष्ट्रनिर्माताओं ने बहुत सोच-समझकर स्वार्थ का चश्मा लगाए बिना हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया। महात्मा गाँधी ने कहा था—"अगर हम भारत को राष्ट्र बनाना चाहते हैं, तो हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है। अँगरेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा है, लेकिन वह हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।" राष्ट्रपिता ने इतना तक कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है। नेताजी सुभाषचंद्र बोस का कहना था—"प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता हिंदी-प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती। यदि हमलोगों ने तन-मन-धन से प्रयत्न किया, तो वह दिन दूर नहीं, जब भारत स्वाधीन होगा और उसकी राष्ट्रभाषा होगी हिंदी।" आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानंद ने भी कहा था—"हिंदी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।" कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का विचार था कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है; वह तो है ही। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इनमें सभी महापुरुष गुजरात तथा बंगाल जैसे अहिंदीभाषी राज्यों के ही थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतः, देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए तथा संसार के समक्ष अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए हिंदी—हिंदी ही केवल राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' कहने से कुछ लोगों को कष्ट होता है; इसलिए इसे संघभाषा, संपर्कभाषा, व्यवहारभाषा, संबंधभाषा आदि विभिन्न नामों से वे अभिहित करते हैं, किंतु घूमकर नाक छूने की आवश्यकता नहीं। भाषा-व्यवहार के प्रादेशिक, अंतरप्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रों में प्रथम स्थान प्रादेशिक भाषाओं का होगा और शेष तीन क्षेत्रों में हिंदी रहेगी। इसका अर्थ हुआ कि हिंदी कभी प्रादेशिक भाषाओं का स्थान नहीं ले रही है। हाँ, जिन क्षेत्रों में अँगरेजी का आधिपत्य है, उन क्षेत्रों में हिंदी आसन ग्रहण करेगी।

अँगरेजी का पुस्तकालयी भाषा के रूप में हम अध्ययन करें, उसके झरोखे से जो विश्वज्ञान झाँक रहा है, उसे अपनी भाषा में अवश्य उतारें, किंतु वह हमारी शिक्षा, शासन, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय व्यवहार की भाषा हो, यह हमारे लिए लांछन की बात है।

यदि हम विघटन और बिखराव की प्रवृत्तियों को कुचलकर समग्र भारतवर्ष को एकता के बंधन से बाँधना चाहते हैं, राष्ट्र का सांस्कृतिक हृदय आमने-सामने खोलना चाहते हैं तथा राष्ट्रानुराग की लाली सर्वत्र छिटकाना चाहते हैं, तो राष्ट्रभाषा हिंदी की रथयात्रा में किसी प्रकार की बाधा देनेवाले को देशद्रोही समझें। एक बार हमने संपूर्ण देश की आत्मा के तार को जोड़नेवाली राष्ट्रभाषा को पंद्रह वर्ष बाद तिथिवाली चेक देकर वनवासिनी बनाया। जब 1965 ई० में इस कठोर यातना की अवधि बीतनेवाली थी, तब फिर क्षुद्र अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाहों के कारण बारह वर्षों के लिए अँगरेजी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की सहचरी बना डाली गई।

किंतु, यह स्मरण रखें कि अँगरेजी सहचरी नहीं, वरन् निशाचरी है, जो हमारा रक्त हर क्षण सोखती जा रही है, यह वह अमरलत्ती है, जो हमारे विकास की लता को सुखाती चली जा रही है। अतः, अब हम सभी को सतर्क रहना है कि राष्ट्रभाषा के विरुद्ध फिर कोई साजिश न सफल हो। यद्यपि अब तक क्रमशः नागपुर (1975 ई०) मॉरिशस (1976 ई०) और दिल्ली (1983 ई०) में तीन विश्व-हिंदी-सम्मेलनों का आयोजन हो चुका है, तथापि राष्ट्रभाषा हिंदी की मूलभूत स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। राष्ट्रभाषा हिंदी की उन्नति राष्ट्र की सार्वत्रिक, सर्वव्यापी उन्नति का मूल है—इसमें कोई संदेह नहीं। हिंदी अब राष्ट्रीय ही नहीं, एक अंतरराष्ट्रीय भाषा भी है। हम चेष्टा करें कि यह अपने देश में ही नहीं फूले-फले, वरन् राष्ट्रसंघ में स्थान पाकर विश्व में अपनी ज्योति फैलाए।

गंगा नदी

[आरंभ, इतिहास, महत्ता, उपसंहार]

महाराज भगीरथ के सचमुच हम बड़े आभारी हैं कि उन्होंने अपनी असाधारण साधना से व्योमविहारिणी गंगा को पृथ्वीवासिनी बना दिया। गंगा हमारी परमोज्ज्वल संस्कृति की कीर्तिवाहिनी है। वह हमारे समक्ष भारतीय इतिहास के कितने स्वर्णिम पृष्ठों का अनावरण करती है, कहा नहीं जा सकता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहा जाता है कि गंगा संसार के पालक विष्णु भगवान के पदनखों से जनमी, जगस्रष्टा ब्रह्मा ने इस चरणामृत को अपने कमंडलु में धारण किया। भगीरथ की तपस्या के कारण जब महाराज सगर के साठ हजार अभिशप्त पुत्रों के उद्धार के लिए गंगा प्रबल वेग से आकाश से उतरी, शिव ने उसे अपने जटावान मस्तक पर धारण किया। गंगाधर के जटाजूट में अनेक वर्षों तक चक्कर काटने के बाद ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को यह पृथ्वी पर आई। मार्ग में उसने जह्नु ऋषि के यज्ञमंडप को ही बहा दिया। क्रुद्ध मुनि भागीरथी को चुल्लुओं में पी गए, तो बड़ा हाहाकार मचा। लोगों की प्रार्थना पर जह्नु ने उसे कान के मार्ग से बाहर किया। इसीलिए वह 'जह्नुतनया' तथा 'जाह्नवी' कहलाई। वहाँ से गंगा आगे गई और रसातल पहुँचकर भगीरथ के पूर्वजों के भस्म को अपने पवित्र जल से बहाकर स्वर्गलोक तक ले गई।

इस पावनी गंगा ने जितने महान कार्य किए, उनमें एक-एक उसे अक्षय यशस्विनी बनाने के लिए पर्याप्त है। वह शिव के तेज को शांत कर स्कंद के जन्मग्रहण में सहायिका बनी। गंगा ने कितने दलितों-पतितों का उद्धार किया है—यह किसे मालूम नहीं है? गंगा यदि कुछ नहीं करती, तो केवल उसका भीष्मजननी होना क्या साधारण बात है? भारतवर्ष के सुदीर्घ इतिहास में जो दो-चार वीरव्रती ब्रह्मचारी हुए हैं, उनमें भीष्म का नाम सर्वोपरि है। महाभारत भीष्म पितामह की तेजोमयी गाथाओं से उजागर है और इसका सारा श्रेय वीरप्रसविनी माता गंगा को ही है।

गंगा का अतीत जितना गौरवपूर्ण एवं भास्वर है, उससे कम वर्तमान नहीं। हिमालय की गोद से निकलकर वह राष्ट्र को अपना आशीर्वाद सौंपती हुई खिलखिलाती बंगोपसागर तक चली जाती है। हिमालय यदि भारत का राजमुकुट है, तो गंगा उसके वक्षःस्थल का हीरकहार। मार्ग में वह अपने परिचय के अनेक सूत्र गूँथती है। अपने सर की वेणी झुलाती हुई तथा पग-पायल की झंकार गुंजाती हुई न मालूम कितनी नदियाँ उसमें समा जाती हैं। उसका जल भारतीय जनता के लिए तीर्थस्थल है—अमृततुल्य है। उसकी लहरों की वीणा पर नवजीवन का संगीत अहरह बजता रहता है। उसकी प्रसन्नता की चाँदनी छिटकती रहती है। उसके पारस-जल के संपर्क से धूलि की ढेरी सोना उगलती रहती है। उसकी तटरूपी बाहुओं पर भारतीय इतिहास की कितनी सामग्री मुद्रित हुई, कितनी धूमिल—इसकी सूची रखना भी संभव नहीं है। उसके आँचल की छाया में कितने भारद्वाज, चाणक्य और तुलसीदास ने साधना के दीप जलाए हैं और सिद्धि का प्रकाश पाया है, इसका लेखा-जोखा संभव नहीं। यही कारण है कि क्या वेद, क्या पुराण, क्या वाल्मीकि, क्या व्यास, क्या कालिदास, क्या विद्यापति, क्या तुलसीदास, क्या केशवदास, क्या रसखान, क्या पद्माकर, क्या भारतेन्दु और क्या मैथिलीशरण गुप्त—सभी ने अपनी भक्तिगंधी कविताओं के कमनीय कुसुम माँ गंगा के चरणों पर अर्पित किए हैं।

लोकगीत की एक नायिका गंगाजल से अनुनय करती है कि वह धीरे बहें; क्योंकि उसका प्रियतम पार उतरनेवाला है। गंगा उससे प्रश्न करती हैं कि किस चीज की तेरी नैया है तथा किस चीज की पतवार उसमें लगी है? गीत की पंक्तियाँ देखें—

धीरे बहो गंगा तैं धीरे बहो
मोरा पिया उतरइ दे पार।
काहे को तोरी नैया रे
काहे को करुवारि
कोन तोरा नैया खेवैया रे
के धन उतरइ पार?
धरम की मोरी नैया रे
सत की पतवार।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गंगा माता के प्रश्न बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने हमारे देश की संस्कृति से ही मानो प्रश्न किया है। नायिका ने अपने उत्तर में हमारी संस्कृति के मूलभूत रहस्य का उद्घाटन किया है। वह कहती है कि धर्म की मेरी नाव है और सत्य की पतवार। जो देश या जाति धर्म की नाव पर सत्य की पतवार का सहारा लेकर जीवन-यात्रा पर निकल जाती है, उसके पार हो जाने में संदेह तो नहीं ही होना चाहिए। गंगा ही इस देश-जाति के धर्म और सत्य की वाहिका रही है।

किंतु, आज हम वैज्ञानिक सभ्यता के विवेकशील प्राणी गंगा को साधारण जलधारा मानकर उपेक्षित करते हैं, यह बड़ा कष्टकर है। जब गंगा अपने प्रियतम सागर से मिलने जाती है, तब उसे हम नगरों की दुर्गंधमयी गंदी नालियों का अर्घ्य देते हैं, सड़ी-गली वस्तुओं तथा कूड़ा-करकटों का नैवेद्य देते हैं तथा मृतक पशुओं एवं मनुष्यों के रुंड-मुंडों की पुष्पमाल पहनाते हैं। क्या यही हमारी कृतज्ञता का ज्ञापन है ? कदापि नहीं। यह खुशी की बात है कि तबके प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने 7 अक्टूबर 1985 को केंद्रीय गंगा-अधिकरण की बैठक में गंगा नदी को स्वच्छ बनाने के 292 करोड़ रुपये के कार्यक्रम को स्वीकृति दी।

जो देवनदी 'गीता' और 'गायत्री' की तरह पवित्र है और हमारे समक्ष हर क्षण अपना सहज मातृस्नेह लुटाती रहती है, उसके प्रति हमारा उपेक्षाभाव अक्षम्य अपराध है। हम उसकी महिमा से परिचित हों। उसकी सेवा और उसके जल को पवित्र रखने से हमारी लौकिक और पारलौकिक उन्नति निश्चित है। ठीक ही कहा गया है—

दास न मापी सुरापी तपी अरु जापी हितू अहितू बिलगाई।
गंग तिहारी तरंगनि सों सब पावै पुरंदर की प्रभुताई॥

—भिखारीदास : काव्यनिर्णय

बाढ़

[प्रारंभ, कारण, दृश्य, हानि, उपसंहार]

बाढ़ का अर्थ—जलप्लावन है, अर्थात् जब जल मर्यादा में नहीं रहता, मर्यादा को तोड़कर कछारों के ऊपर से अतिवेग में वह निकलता है। बाढ़ प्रकृति-रानी का कुटिल भ्रू-संचालन है, जिसके कारण जल जीवन का पर्याय नहीं रहता, वरन् मरण का उपकल्प बन जाता है।

जब गर्मी अपनी जवानी पर रहती है, तब उसके ताप से हिमपिंड पिघलकर द्रुतगति से बह निकलते हैं। अत्यधिक वर्षा होने पर नदी में अँटाव के बाहर जल आ जाता है। नदियों में जब बहुत जलराशि आ जाती है, तब कूल-कछारों को तोड़ती, तटों को डुबाती जलधारा चारों ओर बहने लगती है और लगता है, जैसे समुद्र ही चारों ओर लहरा रहा है।, जिधर देखिए, उधर पानी, केवल पानी। महाप्राण निराला के शब्दों में—

शत घूर्णावर्त तरंग भंग उठे पहाड़
जलराशि राशि जल पर चढ़ता, खाता पछाड़।

जल का यह दृश्य हमें प्रलय की याद दिलाने लगता है; मानो सारी सृष्टि जलमग्न हो गई और एक अकेला मनु उसे देख रहा हो—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भींगे नयनों से देख रहा था प्रलयप्रवाह,
नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन,
एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।

—कामायनी : जयशंकर प्रसाद

यह देखकर हम त्राहि-त्राहि करने लगते हैं। ऐसी घड़ी में हमें किसी अगस्त्य की याद आती है, जो चुल्लुओं में सारे जल को पी ले या किसी गोपसखा कृष्ण की स्मृति हो उठती है, जो अपनी छिंगुनी पर गोवर्धन उठाकर इस जलप्लावन के मध्य छाते के नीचे ऐसा सुरक्षित द्वीप स्थापित कर दे, जिसपर रहकर लोग अपना प्राण-रक्षण कर सकें।

जब बाढ़ दिन में आती है, तब लोगों को सतर्क होने का अवसर मिल जाता है; किंतु जब वह चुपके-चुपके, किसी सूचना या विज्ञापन के बिना रात के अंधकार में आती है, तब सचमुच हमारे सर्वनाश का सारा सरंजाम कर देती है। फण फैलाए व्याल-सी उत्ताल तरंगें, मानो, सब कुछ लील लेना चाहती हैं। जिधर देखिए उधर ही 'जो जैसे-तैसे उठि धावा, बाल-वृद्ध कोई संग न लावा' की स्थिति व्याप्त हो जाती है। अबोध बच्चों एवं अबलाओं के क्रंदन-रुदन से दिग्दिगंत काँपने लगता है। माल-जाल कुकुरमुत्ते-से बहने लगते हैं। छोटी-छोटी झोपड़ियों की बात कौन कहे, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ तक ध्वस्त हो जाती हैं। चूहे-बिल्लियों की बात कौन कहे, बड़े-बड़े गजराज भी बहते नजर आते हैं। भंडारों से सुरक्षित अन्न की बात कौन कहे, लहलहाती सुनहली फसलों की अकालहत्या हो जाती है और जिधर देखिए, उधर 'हाय अन्न, हाय अन्न' की गुहार मच जाती है। सचमुच, बाढ़ प्रकृति की विकरालता तथा निष्ठुरता की बड़ी ही दर्दनाक कहानी है। जो चीन की नदी ह्वांग-हो तथा अपने देश की नदी कोशी की बाढ़ के भुक्तभोगी हैं, वे ही बाढ़ की दानवी लीला का यथार्थ विवरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

बाढ़ से अपार हानियाँ हैं। संचित अन्न तथा उत्पाद्य अन्न के नष्ट होने से अकाल का तांडव आरंभ हो जाता है। घरों के नष्ट होने से आवास की कठिनाई हो जाती है। भयानक जलप्लावन में तैरती सड़ी-गली लाशों की दुर्गंध से महामारियों के फैलने की आशंका होने लगती है। उस प्रकार अकाल, आवासहीनता तथा बीमारी—ये त्रिदोष घेर लेते हैं और इनसे उबरना बड़ा ही कठिन हो जाता है। सरकार की सारी विकास-योजनाएँ ठप पड़ जाती हैं और सारे संसार के समक्ष उसे अपनी भिक्षा की झोली फैलानी पड़ती है। इतना ही नहीं, कल के राजा आज के रंक हो जाते हैं। कहीं तो जमीन ही नदी के पेट में समा गई, कहीं उपजाऊ मिट्टी की छाती पर बालू के पहाड़ खड़े हो गए! ऐसे बिरले ही भाग्यवान हैं, जिनकी बलुआही भूमि पर सोना उगलनेवाली मिट्टी जमती हो।

चाहे, वह पुराणों के 'जलप्रलय' की कथा हो, चाहे बाइबिल के 'डेल्यूज' या कुरान के 'तूफान ए नूह' की कहानी, उस समय के मानव ने जिस साहस के साथ इनसे निबटकर आज तक नई सृष्टि चलाई, आज का वैज्ञानिक मानव भी अपने साहस और चेष्टा से इनके समाधान के लिए कम तत्पर नहीं है। वह तो अब अपनी बुद्धि से तटबंधों, नहरों, जलागारों, जलद्वारों, जलावरोधकों तथा अन्य दिशा में जलमुख-परिवर्तन द्वारा कुछ ऐसा कर देना चाहता है कि युग-युग का अभिशाप यदि तत्क्षण वरदान न भी बने, तो कम-से-कम अभिशाप तो न रह जाए। भाखरा नंगल, कोशी, मयूराक्षी, हीराकुद, नागार्जुनसागर आदि नदी-घाटी-योजनाएँ इन्हीं उत्पातों पर मानवीय विजय की चिरस्मरणीय गाथाएँ हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूखा

[आरंभ, सूखे का कारण, दुःस्थिति, उपसंहार]

सूखा ! सूखा !! जिधर देखिए, एक ही आवाज आती है, सूखा ! सूखा !! लगता है, हमारा देश एक दिन सूखे का पर्याय बन जाएगा क्या ? सूखे की शतरंज-चाल में यह देश सदा मात ही खाता रहेगा क्या ?

यह सूखा क्या है ? प्रकृति के प्रकोप का जलता हुआ नमूना। जुआरी मानसून की दगाबाजी का एक लंबा तखमीना ! उसकी सनक, उसकी बहक, उसकी मौज की हरकतें बहशियाना !

किंतु, जब हम प्रकृति पर विज्ञान की दिग्विजय का डिंडिम घोष सुन चुके हैं, तब क्या प्रकृति के अल्हड़ दूत मानसून को हम अपने नियंत्रण में नहीं ला सकते ? क्या हम आकाश के बादल को विज्ञान की सहायता से अपने इच्छित स्थानों पर बरसा नहीं सकते ? क्या हम धरती के पेट में संचित अपरिमित जलराशि को बाहर नहीं ला सकते ? श्रीराम के राज्य में वारिद इच्छानुसार वारिवर्षण करता था। क्या आज वह विकसित विज्ञान का अनुशासन नहीं मानेगा ? क्या हम प्लावन के कारण खंड-प्रलय उपस्थित करनेवाली नदियों की अपार जलराशि को योजना द्वारा बाँधकर, नहरें निकालकर सूखे के समय उपयोग में नहीं ला सकते ? क्या हम अपने देश को 'बिन पानी सब सून' की स्थिति से उबार नहीं सकते ?

यदि हम ठीक से अपने इतिहास को देखें, तो पता चलेगा कि हमारे देश में बारी-बारी से अतिवृष्टि और अनावृष्टि की आँखमिचौनी चलती रहती है।

बिहार में 1967 ई० में भयानक सूखा पड़ा था। उस समय मंत्रियों ने कहा था कि यह सामयिक शाप शाश्वत वरदान के रूप में आया है। वृहत्, मध्य और लघु सिंचाई-योजनाओं द्वारा इस सूखे के भय से सदा के लिए त्राण पाया जा सकता था। किंतु, अधिकांश योजनाएँ सचिवालय की संचिकाओं में भटकती रहीं। लोकदिखावे के लिए कुछ योजनाएँ चलाई भी गईं, किंतु उनका अधिकांश धन भ्रष्ट अफसरों तथा ठेकेदारों की मोटी तोंद में ही समाकर रह गया। फिर, 1972 ई० में भयानक सूखा देश के विभिन्न भागों में पड़ा, किंतु बिहार उसका सबसे बड़ा शिकार रहा। 1972 ई० में बिहार में चार लाख एकड़ जमीन में गरमा धान बोया गया था, लेकिन वर्षा और सिंचन-व्यवस्था के अभाव में लगभग सवा दो लाख एकड़ जमीन में गरमा धान की फसल नष्ट हो गई। इसी तरह, तीन लाख एकड़ भूमि में भदई धान की खेती होती थी, किंतु सूखे के कारण लगभग आधी फसल नष्ट हो गई। सुनते हैं, जब धान और घोड़े मरते हैं, तो जीभ काढ़कर मरते हैं। इस सूखे के मौसम में जिधर देखिए, खेत का खेत धान जीभ निकालकर पड़ा है, लावारिस मुर्दे की तरह। धरती का शेषनाग किसान, भूमि जिसकी माता है, बैल जिसका भाई है, खेत जिसका बेटा है, आज अपनी आँखों के सामने अपने बेटे का शवदाह देख रहा है। बिहार में लगभग बाईस लाख एकड़ भूमि में भदई मकई की खेती होती थी, किंतु जलाभाव के कारण लगभग पचास प्रतिशत भूमि में भदई मकई की फसल भी नष्ट हो गई। हमारे यहाँ लगभग ढाई लाख एकड़ जमीन में मँडुआ की खेती होती थी, किंतु इस सुखाड़ के कारण मँडुआ की फसल भी जल गई। बाद में कहीं-कहीं थोड़ी वर्षा भी हुई, किंतु इससे क्या लाभ हो सकता था—'का बरखा जब कृषि सुखाने ?' इस तरह, केवल बिहार में ही 1972 ई० में 307 करोड़ रुपयों की फसल नष्ट हो गई।

1972 ई० में राजस्थान में भी भयानक सूखा पड़ा। यहाँ की जनसंख्या ढाई करोड़

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के लगभग है। राजस्थान में वर्षा यूँ ही कम होती है। उसपर यह भयंकर सूखा। लगभग पौने दो करोड़ लोग इस सूखे के कारण तबाह हुए। राज्य के चौबीस जिलों में अकाल काल बनकर घूमता रहा। रबी की फसल जलाभाव के कारण बोई ही नहीं जा सकी। खरीफ की फसल तो पानी नहीं मिलने के कारण पहले ही बरबाद हो चुकी थी। चारा, जो केवल प्रकृति की कृपा का भिखारी है, उगते ही मुरझा गया। जलता रेगिस्तान ! हर ओर एक ही पुकार, पानी ! पानी !! पानी !!! धरती के पेट से अन्न की बात तो छोड़िए, जल निकाल लेना भी दूभर हो गया। असहाय किसान-मजदूर अपना असबाब समेटे अपने खोए हुए नसीब को ढूँढ़ने निकल गए। लाखों पशु तड़फड़ाकर दम तोड़ चुके। गाँव-का-गाँव वीरान हो गया। लगा, जैसे पूरा-का-पूरा राजस्थान श्मशान में पलट गया। बिहार और राजस्थान ही नहीं, 1972 ई० के आरंभ में महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश और उत्तर-पूर्व कर्नाटक तथा आंध्रप्रदेश के कुछ हिस्से भी सूखे की भयानक चपेट में आ गए। देश के विभिन्न भागों में 230 जिले 1973 ई० की फरबरी में सूखे की चपेट में थे और 20 करोड़ लोग इसकी यातना झेल रहे थे। इस प्रकार, यदि पूरे देश पर विचार करें, तो देश में सूखे के कारण लगभग 500 करोड़ रुपये का घाटा हो गया। 1974 ई० में दक्षिण बिहार सूखे के चंगुल में रहा। 1982 ई० में लगभग सारा बिहार सूखे की चपेट में रहा। 1987 ई० में इस दशक का सबसे भयंकर सूखा पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान और मध्यप्रदेश में पड़ा। सारी फसल चौपट हो गई। दक्षिण भारत भी इसकी लपेट से नहीं बचा।

भयावह सूखे के कारण देश में अकाल की डरावनी छाया मँडराने लगती है। गरीब जनता को बुभुक्षा-राक्षसी का ग्रास बनना पड़ता है। भूख और पोषण-तत्त्व के अभाव के कारण लोगों को तरह-तरह की बीमारियों के चंगुल में फँसना पड़ता है और पैसे न होने के कारण उन्हें अकालमृत्यु का वरण करना होता है। चारों ओर फैल जाता है प्यास का साम्राज्य—प्यासी धरती, प्यासे लोग ! प्यास के अनंत रेगिस्तान में बूँद-बूँद टपकाती राहत, जिसे हर कोई पी लेने को आतुर—सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञ, छोटे-बड़े अफसरशाह और लालच-सने ठेकेदार। महँगाई आकाश छूने लगती है। सामान्य जनता की क्रयशक्ति दुर्बल हो जाती है। सारा देश ही भूख की आग में जल रहा हो, तो अन्य विकास-योजनाओं की ओर किसका ध्यान जाता है ? हमें विदेशों के समक्ष अपनी भिक्षा की झोली फैलानी पड़ती है। कर्ज के लिए मसविदे बनाते हैं और उसके ब्याज से ही आनेवाली पीढ़ी के भविष्य के ऊपर मुफलिसी की कालिख पोत देते हैं।

जब सूखा पड़ता है, देश की बागडोर सँभालनेवाले नेताओं की हवाईयात्रा आरंभ हो जाती है। सभी एक स्वर से कहना आरंभ कर देते हैं कि हम सूखे के कारण उत्पन्न दुःस्थिति का युद्धस्तर पर मुकाबला करने को तैयार हैं। हम देश के किसी को भी भूख से दम तोड़ने नहीं देंगे। तरह-तरह की राहत-योजनाएँ चलाने की बातें होती हैं। सिंचाई की सुदृढ़ व्यवस्था करने की बात कही जाती है। किंतु, फिर सारे नेता कुंभकर्ण की नींद में सो जाते हैं, भ्रष्टाचारी अधिकारी उन योजनाओं के कार्यान्वयन का भार उनलोगों को सौंप देते हैं, जो उन्हें रिश्वत या कमीशन के नाम पर मोटी रकम दे सकें और सूखे की स्थिति समाप्त होते-होते सारे वायदे हवा में कपूर की तरह उड़ जाते हैं। सारी योजनाएँ कच्छपगति से चलने लगती हैं।

भारत प्राकृतिक दृष्टि से बड़ा ही संपन्न देश है। प्रकृति ने इसे अनेक सदानीरा नदियों एवं अक्षय दुग्धधार प्रपातों का वरदान दिया है, यहाँ कृषियोग्य पर्याप्त एवं उर्वर भूमि है। यहाँ की वसुंधरा सचमुच वसुंधरा है, किंतु यहाँ की धरित्री पर सुख-संपदा का स्वर्ग तभी उतारा जा सकता है, जब हम इसे प्रकृति की दया पर न छोड़ दें। इसके लिए जरूरी है कि हमारी सरकार नदी-घाटी-योजनाओं, सरकारी नलकूपों,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुदानप्राप्त वैयक्तिक नलकूपों तथा कुँओं के द्वारा सिंचन का ऐसा जाल बिछा दे कि इंच-इंच धरती में सालभर पानी पहुँचाया जा सके। हमारे देश ने विदेशों से अन्न मँगाने में अब तक जितने रुपए खर्च किए हैं, राजस्व की वसूली स्थगित करके जो परेशानी उठाई है तथा राहतकार्य पर जितने रुपए खर्च करने पड़ते हैं, उतने में हम इस समस्या का समाधान कर चुके होते। एक राजस्थान में ही 1951 ई० से 1972 ई० तक सूखे के कारण उत्पन्न अकाल-सहायता-कार्यक्रम पर लगभग 127 करोड़ रुपए खर्च किए गए। अगर इसका पचास प्रतिशत भी भूमिगत जलस्रोतों के विकास पर व्यय किया जाता, तो राजस्थान के प्रत्येक गाँव में एक-एक नलकूप लग गया होता तथा सभी गाँवों में पेयजल की समस्या का समाधान हो गया होता।

इस तरह, सतर्कता से यदि काम किया गया होता, तो यह देश अन्न के मामले में आत्मनिर्भर ही नहीं होता, वरन् विश्व के अन्य कम अन्न उपजानेवाले देशों को अन्नदान भी करता। किंतु, कोई बात नहीं, जब जग जाएँ तभी सबेरा मानना चाहिए। हम आशा करते हैं कि सरकार और जनसहयोग से निकट भविष्य में देश में सिंचाई की व्यापक व्यवस्था की जाएगी तथा वैज्ञानिक साधनों द्वारा बादलों को स्वेच्छित स्थानों पर बरसाकर भारत की धरती को सूखे के अभिशाप से सदा के लिए बचाया जा सकेगा।

एक विख्यात मेला

[आरंभ, स्थान, दृश्य, उपसंहार]

मेला ! सामूहिक जनजीवन के निर्बंध हर्षोल्लास का सुअवसर ! सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्मेलन का अद्भुत साधन, घर के संकीर्ण घेरे से उन्मुक्त विहार का रम्यांचल, बँधी-बँधाई जिंदगी के घेरे से पलायन का सुंदर स्थल, चिंताओं की चिता से उठकर आनंद के लोक में भ्रमण।

इसीलिए तो हमारे देश के हर भाग में समय-समय मेले लगते हैं। कभी पूर्णिमा का मेला है, तो कभी शिवरात्रि का मेला। कभी रथयात्रा का मेला है, तो कभी सोमवारी मेला। कभी प्रयाग में मेला लगा है, तो कभी हरिद्वार में, कभी उज्जैन में मेला लगा है, तो कभी राजगृह में। हमारे राष्ट्र के जीवन की विरसता इन मेलों से दूर होती रहती है, यांत्रिक जीवन में एक कवित्वमय मधुरता आ जाती है।

किंतु, यहाँ चर्चा होगी हरिहरक्षेत्र के मेले की। इस विश्वप्रसिद्ध मेले को कौन नहीं जानता ? अन्य क्षेत्रों में भले ही हमारे राज्य को संसार में सर्वप्रथम होने का गौरव न मिला है, किंतु हमारे यहाँ संसार का सबसे बड़ा मेला लगता है, इसका गौरव तो हमें प्राप्त है ही।

यह मेला उत्तर-पूर्व रेलवे के सोनपुर स्टेशन—जो अपने विराट प्लेटफॉर्म के लिए विश्वविख्यात है—से पूरब लगता है। सगरपुत्रों का उद्धार करनेवाली गंगा, गजग्राह की कथा सुनानेवाली गंडकी तथा देवी सरस्वती के क्रीड़ास्थल शोणभद्र के संगमस्थल पर बसा यह परमपावन तीर्थ। कार्तिक पूर्णिमा के दिन संगमस्नान कर हरिहरनाथ के मंदिर में जल चढ़ाने के लिए अपार भीड़ उमड़ती है। किंतु, यहाँ इतने लोग केवल जल चढ़ाने के लिए नहीं आते, वरन् मेले का आनंद लूटने भी आते हैं। पूर्णिमा के एक सप्ताह पहले से ही मेला जुटना प्रारंभ हो जाता है और पंद्रह-बीस दिनों बाद तक रहता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हरिहरक्षेत्र का मेला बहुत बड़ा पशुमेला है। दस-पाँच वर्ष पहले गाय, बैल, घोड़े और हाथी इसके प्रमुख आकर्षण थे, किंतु जब से जमींदारी गई, शहरी सभ्यता में द्रुतगामिनी मोटरगाड़ी आई, हाथी के प्रति उदासी छा गई। इस त्वरा के युग में मंदगामी और व्ययसाध्य गजराज उपेक्षित हो गए। मेले में बिकने के लिए छोटे-छोटे जानवर भी आते हैं; जैसे—बकरियाँ, कुत्ते आदि।

मेले के समय करीब तीन मील घेरे की सुनसान भूमि गुलजार हो उठती है। जहाँ शायद ही एक-दो दीए टिमटिमाते हों, वहाँ बिजली की चाँदनी छिटक उठती है। जहाँ खोजने-ढूँढ़ने पर कभी एक-दो भूले-भटके बटोही मिल पाते हों, वहाँ आदमियों की बाढ़ आ जाती है। जहाँ पेड़ों के झुरमुटों में सदा चिड़ियों की टी-वी-टुट-टुट सुनाई पड़ती थी, वहाँ लाउडस्पीकरों की अट्टध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। दूर-दूर तक तने तंबू-शामियाने ऐसे लगते हैं, मानों किसी राजा की नई राजधानी बसने जा रही हो। लगता है कि देहाती वेश में कलकत्ता की चौरंगी या बंबई की चौपाटी आ गई हो।

कहीं मिठाइयों की सजी-धजी दूकानें हैं, तो कहीं कपड़ों की। फैशन की रंग-बिरंगी चीजें दर्शकों के झुंडों को अपनी ओर खींचती हैं। कहीं सिनेमा हो रहा है, तो कहीं सर्कस। कहीं यमपुरी नाटक है, तो कहीं बंगाल का जादू। राज्य के कोने-कोने से विशेष रेलगाड़ियों और बसों पर आदमी लदे आ रहे हैं और लगता है सारा राज्य यहीं सिमट आएगा। मेले में जिधर देखिए, उधर रंगीनी-ही-रंगीनी नजर आती है। लोग धक्के-पर-धक्के दिए जा रहे हैं, धक्के-पर-धक्के खाए जा रहे हैं। यहाँ पाकिटमारों की बन आती है। यदि आदमी सावधान न रहे, तो क्षण में ही जेब कट जाए।

वैसे, मेले अन्य जगहों पर भी लगते हैं, किंतु यह मेला सब मेलों में निराला है। अन्य मेलों को मनुष्य सिनेमा के गीत की तरह भले ही भूल जाए, किंतु जिसने हरिहरक्षेत्र मेला को एक बार देखा, वह आजीवन इसे भूल नहीं पाएगा।

हाट

[आरंभ, आवश्यकता, दृश्य, उपसंहार]

नगरों में बड़ी-बड़ी दूकानों की कतारें रहती हैं, जिनमें किस्म-किस्म के सामान मिलते हैं, किंतु गाँवों में छोटी-छोटी दूकानें भी कम ही रहती हैं। यदि गाँवों से नगरों की दूरी कम है, तब तो ग्रामीण अपने निकटस्थ नगरों से सामान खरीदते हैं, मनोरंजन-लाभ भी करते हैं; किंतु जो गाँव नगरों से दूर, यातायात के साधनों से शून्य रहते हैं, उनके लिए हाट की बड़ी आवश्यकता होती है। वैसे, जमशेदपुर जैसे आधुनिक नगरों में भी हाटें लगती हैं, जहाँ सुदूर देहात से लोग फल-सब्जी आदि ले आते और बेचते हैं।

हाट में बड़ी चहल-पहल रहती है। इसमें बड़े-बड़े सफेदपोश तुंदिल व्यापारी नहीं रहते, बल्कि छोटे-छोटे गरीब आदमी रहते हैं, जो अपनी उपज की वस्तुएँ, मामूली मिठाइयाँ, मनिहारी की सस्ती सामग्री बेचने के लिए आते हैं। इनमें नागरिक दूकानों की न तो सजावट रहती है, न सफाई, न मरकरी बल्बों की चकाचौंध, न विक्रेताओं की जेबकतरा मुस्कानें, न स्वागत की मीठी-मीठी बातों की फुलझड़ियाँ, न फाँसने के लिए बनारसी पानों की गिलौरियाँ। बेचनेवाले साधारण किसान, कारीगर, व्यापारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होते हैं, जो मैले-कुचैले कपड़ों में रहते हैं। इनके साथ 'एक दामवाला' नियम नहीं, वरन् मोल-मोलाई खूब चलती है।

जिधर देखिए, उधर शोरगुल, मस्ती का आलम। हर ओर झुंड के झुंड बच्चे, जवान, बूढ़े अपने उपयोग की वस्तुओं पर टूट रहे हैं। महज कुछ घंटों का यह बाजार अपनी चमक-दमक में निराला होता है। हाट, मानो, बनजारिन या पहाड़ी युवती है, जिसके साज-श्रृंगार में आधुनिकता की गंध नहीं, बनाव-दिखाव की कोई झलक नहीं। यह जैसे कोई वनवासिनी मयूरी हो, जो सावन की कजरारी घटा घिर आने पर नाचने को थिरक उठी हो। हाट किसी कबीर की सदासुहागिन नहीं, वरन् कोई अभिशप्ता है, जिसकी कलाइयों में विवाह की मेंहदी सूख भी न पाई थी, जो अपने पिया से भरमुँह बोल भी न पाई थी, मनुहार का सुदीर्घ सौभाग्य भी न प्राप्त कर सकी थी कि सहसा वैधव्य के वज्रपात से विवर्णमुख हो गई। उसकी गुलाबी उमंगें अभी परवान भी न चढ़ पाई थीं कि किसी हिमरात्रि ने आकर उसका सारा श्री-सौंदर्य विनष्ट कर दिया। यह हमें थोड़ी देर के लिए मोहती है अवश्य, किंतु विदा लेते ही एक गहरा अवसाद, एक तीखी शून्यता हममें भर जाती है; बारात विदा होने के बाद या जुलूस गुजर जाने के बाद की उदासी जैसे हमारे मनप्राणों पर छा जाती है।

हाट में किसी सजे-सँवरे उद्यान का रेखागणितिक सौंदर्य देखने को नहीं मिलता, वरन् किसी झाड़ी या छोटी वनस्थली का कलात्मक बेढंगापन देखने को मिलता है। सड़क के किनारे की परती जमीन या पेड़ों की जालीदार छाया में, अठवारे में एक या दो दिनों के लिए अक्सर दोपहरी के बाद हाट लगती है। एक ओर तरह-तरह की सब्जियाँ बिक रही हैं। एक सब्जीवाला चिल्ला रहा है—''लगा दिया दो रुपए किलो परवल। थोड़ा-सा माल बचा है, बिलकुल चोखा, लेते जाइए।''

कहीं मौसमी फलों की टोकरियाँ रखी हुई हैं—''तीस रुपए सौ, केवल तीस रुपए सौ में लेते जाइए शकरचीनिया आम!'' कहीं चावल तौला जा रहा है, तो कहीं नमक या फिर गरम मसाला। कहीं मछली बिक रही है, तो कहीं घड़े की मोल-मोलाई चल रही है। एक ओर गँवई हलवाई जलेबियाँ, झिल्लियाँ, बतासे बेच रहा है। यहाँ ऐसी-ऐसी मिठाइयाँ देखने को मिल जाएँगी, जिनका नाम शायद ही किसी मिष्टान्नशास्त्र की पुस्तक में मिल पाए।

कुछ घरफूँक तमाशा देखनेवाले मस्त गाँववाले ताड़ी की लबनी-पर-लबनी ढाले ज रहे हैं। किसी कोने में कुछ अधेड़ गाँजे का चिलम-पर-चिलम खींच रहे हैं, तो कहीं कुछ छैल-छबीले छोकरे बीड़ी या चारमीनार सोंट रहे हैं। कुछ लोग ढोल पर थाप दिए चल रहे हैं, तो कुछ मँजीरे खनखना रहे हैं। कुछ दूर हटकर बाजीगर अपना करिश्मा दिखा रहा है। हाथ हिला-हिलाकर, मुँह बनाकर वह कह रहा है—''नाच बँदरिया नाच! तुझे पैसे मिलेंगे पाँच। ऐसे नहीं, जरा कमर लचकाके, जरा घूँघट झुकाके, जरा कनखी मारके।''

एक किनारे बाइसकोप का खेल दिखाया जा रहा है। बाइसकोपवाला सौ किलोमीटर की रफ्तार से बोलता चला जा रहा है—बाईस मन की रानी देखो, बारह मन की नागिन देखो, विक्रम का सिंहासन देखो, भोले बाबा की बारात देखो, जर्मन की लड़ाई देखो, साधु को पानी पर चलते देखो, लड़की को बोगस वोट गिराते देखो, आठ बच्चोंवाले नेताजी को परिवार-नियोजन पर भाषण करते देखो।''

इन सारे दृश्यों को देखकर भूलन अपने बाबा से कुछ पैसों के लिए जिद कर रहा है, तो लक्खी अपनी माँ से तमाशा दिखा देने के लिए हठ कर रही है, किंतु ये

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोग इतने गरीब हैं कि इनके लिए एक-एक पैसा अनमोल है। दो-चार पैसे की फिजूलखर्ची में इन्हें अपने आर्थिक संतुलन के डाँवाँडोल हो जाने का खतरा है।

किसी हाट में आप चले जाएँ, तो वहीं आपको अपने देश का असली रूप—इसके अंतस्तल की वास्तविक झाँकी दिखाई पड़ेगी। भारत का प्रतिनिधित्व न तो कलकत्ता की चौरंगी करती है और न करता है नई दिल्ली कनॉट प्लेस ही। भारत कितना विपन्न है, भारत के औसत लोगों का जीवन-स्तर कैसा है, भारत के औसत लोगों की आय क्या है, भारत के औसत लोगों की क्रयशक्ति क्या है—हाट, मानो, इन सबकी विवरणिका प्रस्तुत करती है। यहाँ पाँच रुपए में सप्ताहभर की शॉपिंग होती है; पचास पैसे की पान-बीड़ी में यहाँ मधुशाला की मस्ती खरीदी जाती है। दस पैसे के बाइस्कोप में वातानुकूलित भवनों में दिखाए जानेवाले चलचित्रों का मजा लिया जाता है।

रात के पहले प्रहर के सन्नाटे से हाट की शवयात्रा निकल पड़ती है। एक चिंतनशील व्यक्ति गहरे अवसाद में डूब जाता है। क्या स्वतंत्रता की भागीरथी केवल नगरों के जटाजाल में ही उलझकर रह जाएगी? क्या उसकी कुछ बूँदें इन गाँवों में नहीं छलकेंगी? क्या देश की किस्मत हाट की तरह ही थोड़ी देर के लिए जगमगाकर हमें बहुत दिनों के लिए विषाद में डुबोकर तो नहीं सो जाएगी?

मनपसंद खेल : फुटबॉल

[आरंभ, दृश्य, खेल का आद्यंत, उपसंहार]

पता नहीं, आज क्या बात है कि विद्यालय के अहाते की ओर अपार भीड़ उमड़ती चली जा रही है। यह स्वैरिणी भीड़, सावनी घटाओं की बारात-सी भीड़ किसी बड़े जेल को तोड़कर भागे हुए बंदियों के समूह-सी भीड़; पता नहीं, किस महोत्सव के शुभ अवसर पर इकट्ठी हो चली है। मेरे मन के थाले में जिज्ञासाओं के बिरवे उग आए। इसी बीच हमारे एक मित्र ने हमें टोका, "यार! किस विचार में बर्ट्रेंड रसेल की तरह खोए हुए हो? जानते नहीं, आज अपने विद्यालय के मैदान में आरा और छपरा के बीच बड़ा अच्छा फुटबॉल मैच होनेवाला है।"

फुटबॉल! क्रीड़ा-कंदुक। कृष्ण-कन्हैया का प्यारा खेल गेंद खेलना। मेरा मन स्मृतियों के सुदूर लोक में पहुँच जाता है। कालिंदी-कूल पर जब श्रीकृष्ण गोपबालाओं के साथ कंदुक-क्रीड़ा करते थे, तब उनके बीच आनंद की जो रसधार उमड़ती थी, उसका क्या कहना। सुना है, एक बार कन्हैया का गेंद यमुना की मँझधार में चला गया। जब उसका पानी कालियनाग के विष से विषाक्त हो गया, तब उन्होंने न केवल गेंद ही निकाली, वरन् उस विषधर भुजंग के फण पर चढ़कर बाँसुरी भी बजाई थी। आज मेरा मन कहता है, ओ आततायियो! तुम अपना फण फैलाओ, मैं भयत्रस्त नहीं होता, मैं भी तुम्हारे फण पर चढ़कर बाँसुरी बजाना चाहता हूँ—"तान-तान फण व्याल कि तुझपर मैं बाँसुरी बजाऊँ!"

कल्पना की डोर टूटते ही मेरे पाँव भी विद्यालय की ओर बढ़ने लग जाते हैं। विशाल मैदान आगंतुकों के अबाध प्रवाह को सिकता-पारावार की भाँति सोखता चला जा रहा है। मैंने भीड़ को ठेलते हुए एक कोने में थोड़ी जगह बना ली। मुझे बचपन से गेंद का खेल बड़ा भाता रहा है। कबड्डी में कौन हड्डी-पसली एक कराए, क्रिकेट

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में कौन कई दिनों तक हार-जीत का फैसला न होने के कारण अनिश्चय के झूले में झूलता रहे, हॉकी में कौन बड़ा खर्च करके उसके डंडे से अपनी खोपड़ी गंजी कराए? इसीलिए, इस खेल के शौकीन होने के नाते मैंने भी सोचा कि गतिशीलता और उत्सुकता बनाए रखनेवाले इस खेल में क्यों नहीं डेढ़ घंटे बिताए जाएँ।

सामने आयताकार मैदान। घास की हरी मखमली कालीन बिछी थी, बिलकुल मनोमोहक, जैसे वह अभी-अभी करघे से उतारी गई हो। मैदान के चारों ओर उजली रेखा खिंची थी। उजली रेखा की यह किनारी मैदान की खूबसूरती में चार चाँद लगा रही थी। गोल पोस्ट के खंभे बिलकुल उजले थे, जैसे उनपर अभी-अभी सफेद वार्निस फेरा गया हो। गोल पोस्ट के लहराते हुह जाल खेल की निर्णयात्मक घड़ियों की प्रतीक्षा बड़ी ही विकलता से करते दीख रहे थे। मैदान के चारों कोने पर रेशमी झंडियाँ सावनी बयार के हौले-हौले झोकों का दुलार पाकर लहरा रही थीं, मानो वे दोनों दलों के खिलाड़ियों को मैदान में आ जाने का न्योता भेज रही हों।

थोड़ी देर बाद दोनों टीमों के खिलाड़ी मैदान के लगभग बीच में आ गए। वे ऐसे लग रहे थे, जैसे बारात की द्वार-लगाई के समय घोड़े जम रहे हों। दोनों टीमों के दस-दस खिलाड़ियों की जर्सियों के रंग भी अलग-अलग थे, दोनों गोलकियों की गंजियों के रंग भी अलग-अलग थे, इसीलिए दोनों टीमों के खिलाड़ियों को पहचानने में कठिनाई नहीं थी। इन सबके बीच रेफरी सरदार की तरह कुछ क्षणों के लिए गंभीर मुद्रा में खड़ा रहा, फिर उसने चमकता हुआ एक सिक्का उछाला। 'टॉस' के अनुसार दोनों दल दो ओर गए। रेफरी ने ज्योंही सीटी बजाई। खेल का रोमांचकारी दृश्य आरंभ हो गया। इधर कोलाहलपूर्ण भीड़ प्रायः निःशब्द हो गई। सारी आँखें गेंद की गति की ओर थीं। थोड़ी देर बाद खेल में और भी वेग आ गया। छपरा की टीम के स्टॉपर ने शॉट लेकर अपने राइट-हाफ को पास दिया। राइट हाफ ने राइट आउट को पास दिया, जिसने झंडे के पास जाकर गेंद को गोलपोस्ट की ओर उछाल दिया। सेंटर फॉरवर्ड ने बड़े ही नाटकीय ढंग से हेड किया, जिसे आरा का गोलकीपर बचाने में असमर्थ रहा और गेंद जाल में जा गिरी। गोल हो गया। यह जादू कुछ सेकेंड में ही हो गया। दर्शकों को पता ही नहीं चला कि कब कैरम की गोटी पिल गई। यह गोल श्रीराम द्वारा धनुर्भंग से कम विस्मयकारी नहीं था।

अड़हुल के फूल की तरह लाल गंजीवाला आरा का गोलकीपर, जो कभी गेंद को हाथ से छूने के विशेषाधिकार के कारण अकड़ रहा था, प्रसन्नवदन नहीं दिखाई पड़ रहा था। अपने दल को पराजय से नहीं उबार सकने के कारण निराशा में डूबा हुआ था। पराजित गोलकीपर के मुखमंडल पर अमावस की संध्या घिर आई थी। ग्रहण लगे चंद्रमा की भाँति उसका म्लान मुख उसके प्रशंसकों को कष्टकर प्रतीत हो रहा था। किंतु, छपरावालों में आनंद की चाँदनी छिटक उठी थी। किसी ने किसी को कंधे पर उठाया, तो किसी को छाती पर जोर से भींच लिया। दर्शकों में भी कुछ छपरा के थे। वे मैदान की उजली लक्ष्मण-रेखा को लाँघ गए—कुछ यूँ ही उछलने लगे, कुछ रूमाल फेंकने लगे, कुछ चप्पल ही उछालने लगे।

हर्ष और विषाद के ज्वार-भाटे अभी शांत भी नहीं हुए थे कि रेफरी ने सीटी बजाई। खेल फिर शुरू हो गया। यद्यपि विजयी दल के लिए एक गोल का अग्रणीत्व उन्मादकारी आरंभ था, किंतु यह अंतिम विजय का ध्रुवतारक नहीं था। इसीलिए, विजयी दल के खिलाड़ी भी फिर उत्साह से खेलने लग गए। पराजित दल के खिलाड़ी भी जानते थे कि किस्मत का पाशा बदलते देर नहीं लगती। वे यह भी जानते थे कि चुनौतियों की चोट खाकर दिलेरों का उत्साह और बढ़ता है। इसलिए, पराजित दल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के खिलाड़ी प्रारंभिक आकस्मिक पराजय से उत्पन्न उत्साहहीनता को अस्वीकृत करते हुए पुनः पूरी निष्ठा के साथ खेल में जुट गए। ठीक ही कहा है—''गति की तृषा और बढ़ती है, पड़ते पग में जब छाले हैं।''

खेल अब अपनी जवानी पर था। दोनों दलों के खिलाड़ियों ने विजयश्री अपनाने के लिए जी-जान की बाजी लगा दी थी। पराजित दल के प्रशंसक तो मन-ही-मन बजरंगबली को लड्डू कबूल रहे थे कि कब उनके दल कीं ओर से एक गोल कर दिया जाए। विजयी दल के प्रशंसक भोला बाबा से कह रहे थे कि उनकी अर्जित प्रतिष्ठा मिटने न पाए। सभी दर्शक बकध्यान लगाए हुए थे। महफिल रंग पर आ गई थी, किंतु इस समय किसी को चौंकने की जरूरत नहीं थी। खेल में काफी गर्मी आ गई थी, किंतु इसी बीच रेफरी ने सीटी बजाई। पैंतीस मिनट खेल हो चुका था। यह मध्यांतर था, दस मिनट के लिए। कोई खिलाड़ी मैदान में लेट गया था, कोई बर्फ का टुकड़ा मुँह में डाल रहा था, कोई नींबू की फाँक चूस रहा था, कोई अपने बूट ठीक कर रहा था तथा कोई अपना पसीना पोंछ रहा था। दर्शकों की भीड़ टिड्डीदल की तरह खेल के मैदान की ओर बढ़ रही थी। इनमें कोई चीनियाबादाम खा रहा था, कोई आइसक्रीम चूस रहा था, कोई फेंटा और थम्स अप की बोतलें उछाल रहा था। आनन-फानन में दस मिनट बीत गए और द्वितीयार्द्ध का खेल आरंभ हुआ।

खिलाड़ी जीतने की नई-नई तरकीबें ध्यान में रखकर गेंद आगे-पीछे कर रहे थे। दर्शकों में से कोई कह रहा था—''बढ़े चलो, आरा !'' कोई कह रहा था—''बढ़े चलो, छपरा !'' ''बहादुर ! मारो जोरदार शॉट ! उछालो गेंद बैलून की तरह। दाग दो बॉल का ऐसा बुलेट कि गोलकीपर को छेदता हुआ गोल पोस्ट में चला जाए।''

समय तेजी से भागा जा रहा था। बहुतों का ध्यान कभी घड़ी की सुइयों की ओर होता, तो कभी खिलाड़ियों की ओर। ज्यों-ज्यों समय बीतता था, दर्शकों के मन का तनाव बढ़ता जाता था। एक कहता—''अरे ! छपरा मार ले गया। यह कोई मामूली जिला नहीं है।'' दूसरा कहता—''यार ! घबराओ नहीं, आरा भी कोई ऐसा-वैसा जिला नहीं है, बाबू कुँअरसिंह का जिला है। वृद्ध कुँअरसिंह जब अँगरेजों के छक्के छुड़ा सकते थे, तो ये तो जवान खिलाड़ी हैं।''

जब खेल समाप्त होने में करीब पाँच मिनट बचे थे, तभी आरा के लेफ्ट हाफ ने अपने लेफ्टं आउट को पास दिया, जिसने छपरा गोलकीपर की ओर एक करारा शॉट लिया। परंतु छपरा के स्टॉपर ने उसे हेड द्वारा बचा लिया। दुर्भाग्यवश गेंद आरा के सेंटर फॉरवर्ड की ओर उछलती हुई आ रही थी, जिसपर उसने एक जोरदार किक गोल पोस्ट में दी। गोल बचाने के लिए छपरा के स्टॉपर ने घबराहट में हाथ से उसे रोक लिया। इसपर रेफरी ने छपरा की ओर पेनाल्टी दे दी। पीली गंजीवाला गोलकीपर गोल पोस्ट के आगे बड़ी ही सावधानी से खड़ा था। लगता था कि आज किसी प्रह्लाद की परीक्षा ली जा रही है। गलती किससे हुई और कठघरे में कौन हाजिर किया गया। इस समय मुझे गोस्वामी तुलसीदास का दोहा याद हो आया—

औरु करै अपराधु कोउ, औरु पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगबंत गति, को जग जानै जागु॥

लेकिन, अब करना क्या था। आरा के एक खिलाड़ी ने बड़ी कुशलतापूर्वक अर्जुन की तरह निशाना साधकर गेंद को गोल पोस्ट के दाएँ कोने में मारकर गोल कर दिया। जो छपरावाले खेल के आरंभ में अपनी जीत से फूले नहीं समाते थे, अब बिलकुल उदास दीख रहे थे। उनके उत्साह पर पानी फिर गया था। उनकी स्थिति वैसी ही थी, परसत तुहिन तामरस जैसे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोनों दलों के खिलाड़ी इस नवीन विजय-पराजय के सुख-दुख के हिंडोले पर झूल ही रहे थे कि रेफरी ने खेल के अंत होने की सीटी बजा दी। दर्शक तेजी से मैदान छोड़ने लगे। कोई इस दल, कोई उस दल की प्रशंसा करता जा रहा था। मैं विचारों में डूब गया था। मुझे लगता था, हमारी ज़िंदगी भी एक मैच ही है। हम जीत गए या हार गए, इसका निर्णय तो जिंदगी के खेल की समाप्ति पर ही हो सकता है।

महाविद्यालय का प्रथम दिन

[आरंभ, कक्षाओं में प्रवेश, पढ़ाई का अंतर, उपसंहार]

अपने स्नातक अग्रज से मैं अक्सर सुना करता था कि महाविद्यालय के बिना ज्ञान नहीं (No knowledge without college)। विद्यालय की चहारदीवारी लाँघकर मेरा मन विश्वविद्यालय के उन्मुक्त वातावरण के लिए तरसता रहता था। मैं जिस शुभघड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था, आखिर वह आ गई।

दूर देहात से मैं पटना आया था। 10 जुलाई से हमारी पढ़ाई शुरू होनेवाली थी। 10 जुलाई को ज्योंही अशोकपथ की भीड़ चीरता हुआ मेरा रिक्शा महाविद्यालय के द्वार पर आया, मेरा मन इसके भव्य भवन को देखकर अभिभूत हो गया। ओह ! यहाँ पटना महाविद्यालय, जनक और याज्ञवल्क्य, चंद्रगुप्त और चाणक्य के गरिमामंडित विहार का इस काल का सबसे प्राचीन उच्चशिक्षा-संस्थान है। एक शताब्दी से अधिक वर्षों से (स्थापना : 9 जनवरी, 1883) इसने राष्ट्र के चतुर्मुखी जीवन को अच्छी तरह प्रभावित किया है। लॉ कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज तथा साइंस कॉलेज इसी से छिटककर अलग हुए हैं। जे॰ के॰ रोजर्स के समय से आज तक सुयोग्य प्राचार्यों की परंपरा रही है। पंडित रामावतार शर्मा, गोरखप्रसाद सिंह, डॉक्टर ज्ञानचंद, डॉक्टर धीरेंद्रमोहन दत्त जैसे महान शिक्षकों की परंपरा इसे मिली है। यह अध्ययन और विद्याव्यसन, चरित्रनिर्माण और संस्कृति, व्यवस्था और अनुशासनबद्धता, उत्कृष्टता एवं दक्षता का प्रमाण माना जाता है। यह प्रख्यात विद्वानों, महान देशभक्तों, जनप्रिय राजनेताओं, विख्यात अधिवक्ताओं, अनुभवी पत्रकारों तथा सुयोग्य प्राध्यापकों का निर्माण-गृह रहा है। बिहार में जो कुछ उत्तम और महान है, वस्तुतः उसका संपोषण यहीं हुआ है। यह सब सोचते-सोचते मेरा रिक्शा प्रशासकीय भवन की बरसाती में लग जाता है।

रिक्शावाले को पैसे देकर ज्योंही भवन के भीतर जाता हूँ, सामने विशाल पुस्तकालय के काउंटर के सामने पुस्तकाध्यक्ष बैठे दिखाई देते हैं। इधर-उधर छात्रों का आना-जाना लगा है। मैं जरा पूरब की ओर बढ़ता हूँ, तो देखता हूँ कि दीवार पर टँगे सूचनापट्ट पर छात्रों का झुंड मधुमक्खियों की तरह टूट पड़ा है। मैंने एक छात्र से पूछा—भाई साहब, आप किस कक्षा में पढ़ते हैं ? उसने कहा—'फर्स्ट ईयर।' फिर उससे रूटीन के बारे में बात हुई और उसने बताया कि आज तीसरी घंटी अर्थात् 11-20 मिनट पर हिंदी-रचना की कक्षा है—कमरा-नं॰ 11।

अभी दिन के ग्यारह बज रहे थे। कुछ लड़कों के साथ मैं प्रशासकीय भवन के पश्चिम विशाल भवन की दूसरी मंजिल पर पहुँचा। कमरा-नं॰ 11 एक विशाल दीर्घा है। मुझ देहाती, छोटे-छोटे कमरावाले विद्यालय में पढ़नेवाले छात्र को तो यह दीर्घा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कोई विशाल रंगशाला-सी प्रतीत हो रही थी। कुछ छात्र बेंचों पर बैठे हुए थे। मेरी नजर खिड़की के शीशे से गंगा की ओर गई। सावन के इस महीने में गंगा किसी मदभरी युवती की तरह अपने सर की वेणी झुलाती हुई, अपने नूपुरों की झंकार सुनाती हुई, अपनी मधुमय मुस्कराहटों का उपहार लुटाती हुई अपने सागर-प्रियतम से मिलने दौड़ी जाती हुई मालूम पड़ रही थी। इसके तपःपूत आँचल की छाया में अवस्थित इस विद्यालय में अध्ययन का सौभाग्य मुझे अपने संचित पुण्य का फललाभ जैसा मालूम पड़ रहा था। भारतवर्ष का शायद ही कोई कला-महाविद्यालय हो, जो गंगा मैया की दुलारभरी गोद के पालने में इस तरह पलता हो। मेरे इन मोहक विचारों का धागा सहसा टूट जाता है, जब प्राध्यापक महोदय कक्षा में प्रविष्ट होते हैं।

पहले वे उपस्थिति लेते हैं। सभी लड़के 'जी हाँ, जी हाँ' करते जाते हैं। ऊँचे मंच से उनका जब भाषण सुना, तब लगा साक्षात् वाग्देवी सरस्वती उनकी जिह्वा पर समासीन हैं। वे सबसे पहले चरित्रनिर्माण-संबंधी प्रेरक बातें बताकर राष्ट्रभाषा हिंदी की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। उसके प्रसार के लिए भागीरथ-साधना की आवश्यकता बताते हैं, दैनिक कार्यों में हिंदी के व्यवहार की आवश्यकता पर बल देते हैं। सभी लड़के मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे हैं। माथे पर नाचते हुए विद्युद्व्यजन मानो, मस्तक पर आशीर्वाद का पवन फैला रहे हैं।

सहसा घंटी बजती है। हम स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आ जाते हैं—"क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति"। इसके बाद तुरत अँगरेजी की कक्षा थी। दौड़ते हुए लड़कों की कतार में मैं भी शामिल हो जाता हूँ। एक संकुल पथ से गुजरते हुए, सहपाठियों के अंगों से रगड़ खाते हुए, हम उस कत्थई मकान में चले आते हैं, जिसकी कक्षा में अँगरेजी की पढ़ाई होनेवाली थी।

कहते है कि डच लोगों का यह भवन अफ़ीम-गोदाम था। शायद इसीलिए, यहाँ अध्ययन-अध्यापन का ऐसा नशा, ऐसा सरूर छाया रहता है। अँगरेजी के प्राध्यापक कोट-पैंट में लैस आए और उपस्थिति लेने के बाद उन्होंने लच्छेदार अँगरेजी में शेक्सपियर पर भाषण देना आरंभ किया। आरंभ में उनकी बात मेरे दिमाग में कम घुसीं, किंतु, धीरे-धीरे जब सब ओर से कूर्मवत् अपने को समेटकर ध्यानस्थ किया, तब शेक्सपियर की महत्ता से संबद्ध कुछ बातें बोधगम्य होने लगीं। शेक्सपियर मानव-मनोविज्ञान का कुशल पारखी था, मानव-अनुभूतियों का चतुर चितेरा था—यह उनके अध्यापन का निष्कर्ष था।

घंटी बजी और मेरे मित्र चिल्लाए, 'लीजर!' यह लीजर क्या बला है, मैं समझ नहीं पाया। टिफिन की बात तो जानता था। गंभीर विचारों के कारण उत्पन्न मानसिक तनाव के तंतुजाल को ढीला करने के लिए इस अल्पावकाश 'लीजर' का बड़ा महत्त्व है—ऐसा मेरे साथियों ने बताया।

मित्रों के साथ हमलोग कैंटीन में पहुँचे। लड़के आनंदविह्वल कोलाहल कर रहे थे—कोलाहल रेडियो के गाने तथा कप, प्लेट और चमचों की खनखनाहट से और भी तीव्र हो रहा था। मेरे मित्र ने बैरा से चाय लाने को कहा। मैं चाय पीने का अभ्यस्त नहीं था। किंतु मित्रों ने कहा—यार, जहर थोड़े ही है; यह तो भारत का राष्ट्रीय पेय है, इसे न पीओगे, तो क्या अमेरिका की तरह कॉलेजों में दूध के नल लगे हैं! करीब चालीस मिनट के बाद हमलोग फिर कक्षा नं० 6 में चले आए।

यह नागरिकशास्त्र की घंटी थी। प्राध्यापक महोदय ने 'भारत में प्रजातंत्र का भविष्य' पर भाषण दिया। उन्होंने बताया कि प्रजातंत्र में क्रूर बहुमत का शासन होता है; प्रजातंत्र में सिर गिने जाते हैं, सिर के भीतर बुद्धि भी है या नहीं, इसपर ध्यान नहीं दिया जाता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रजातंत्र के जहाज को बचाने के लिए अब्राहम लिंकन जैसे महान कैप्टेन की जरूरत होती है, महात्मा गाँधी जैसे कुशल कर्णधार की आवश्यकता होती है।

घंटी बजी। पता चला कि अब आज कोई घंटी नहीं है। छात्र आनंद से अपने आवास की ओर लौट रहे थे। इसी बीच मेरे एक मित्र ने कहा था—प्राचार्य ! प्राचार्य के तन पर दूध-से धुले खादी वस्त्र थे, जो मन की शुभ्रता को प्रतिबिंबित कर रहे थे। खादी पहनना क्या है, आजादी का बाना धारण करना है, ऐसा महात्मा गाँधी ने कहा है। प्राचार्य की आकृति शीशे की तरह पारदर्शी थी, जिसपर उनके अंतःकरण के भाव साफ नजर आ रहे थे।

हमलोग कतराकर कनखियों से उन्हें देखते हुए, आवास की ओर चले। लगा, पटना विश्वविद्यालय का जीवन किसी मधुमास में खिले हुए गुलाब का जीवन है, किसी पावस में पर्वतप्रदेश पर झरते हुए रजतनिर्झर का जीवन है, किसी मधुयामिनी में तारों के सितार पर लहराते संगीत का जीवन है। कॉलेज जीवन का यह प्रथम दिन हमारी स्मृतियों के कोष की वह महामणि है, जिसका आलोक कभी कम न होगा—ऐसा मेरा मन बार-बार कहता है।

व्यवसाय का चुनाव

[आरंभ, रुचि के प्रतिकूल चुनाव से हानि और लाभ, उपसंहार]

क्षणभर हम कल्पना के इंद्रधनुषी विमान पर समासीन होकर सुदूर अतीत की ओर चले जाएँ, तो हमारी मुलाकात आदिम युग के मनुपुत्रों से होगी, जहाँ मच्छरों की तरह मनुष्य भनभनाते नहीं हैं, जहाँ राशन की दूकानों पर मेला नहीं लगता है, जहाँ 'अधिक अन्न उपजाओ' का कंपेन नहीं चलता है। थोड़े-से लोग हैं—सभ्यता सर्पकुंडली की तरह टेढ़ी नहीं हो गई है। थोड़े-से फल, अनाज या आखेट से उनका जीवनयापन हो जाता है। किंतु, ज्यों-ज्यों सभ्यता विकसित होती गई—पाषाणयुग से हम अणुयुग में आ गए, शिक्षा के अनेक आयाम, विज्ञान के नए-नए गवाक्ष खुले, त्यों-त्यों जीवनयापन का प्रश्न जटिल होता गया और हमारे लिए व्यवसाय का चुनाव आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य बन गया।

पश्चिमी देशों में व्यवसाय के चुनाव में सतर्कता बरती जाती है। बड़े-बड़े विशेषज्ञ बच्चों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा लेकर उन्हें उनके अनुकूल व्यवसाय में भेजने की राय देते हैं, और इसका परिणाम होता है कि बच्चे अपने अगले जीवन में बहुत ही चमक उठते हैं। कम्युनिस्ट देशों में तो सरकार की ओर से जाँच का प्रबंध रहता है, ताकि व्यक्ति की प्रतिभा का उचित दिशा में उपयोग हो सके। किंतु, हमारे देश में जिंदगी संयोग है, जूआ है, लॉटरी है। जिंदगी एक लुढ़कती हुई गेंद है, जो किसी-न-किसी किनारे तो लग ही जाएगी अथवा एक बरसाती नाला है, जो कहीं-न-कहीं अपना रास्ता तो बना ही लेगी।

मनुष्य की रुचि, प्रतिभा, शक्ति और सीमा पर यहाँ विचार करने की आवश्यकता ही नहीं होती है, इसलिए हमारे यहाँ के अधिकांश युवकों की जिंदगी असफलताओं की पिटारी रह जाती है। यदि किसी विद्यालयी छात्र से प्रश्न किया जाए कि तुम्हें अपने जीवन में क्या करना है, तो वह सीधे कहेगा—अभी सोचा नहीं है। जब कॉलेज में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसी छात्र से पूछें, तो वह कहेगा—बी॰ ए॰ करने के बाद देखा जाएगा। बी॰ ए॰ करने के बाद पूछें, तो वह कहेगा कि एम॰ ए॰ करने के बाद तय किया जाएगा। इस प्रकार, वृत्ति का ध्यान रखे बिना वह अनिर्दिष्ट पथ पर दौड़ा चला जा रहा है—अँधेरे में ढेले फेंकता चला जा रहा है। उसने अपने जीवन का जहाज सागर में डाल दिया है—पता नहीं, वास्कोडिगामा की तरह किस हिंदुस्तान का पता लगा लेगा, कोलंबस की तरह किस अमेरिका की खोज कर लेगा ! वह अपने जीवन के विशाल भवन का नक्शा बनाए बिना ईंट-पर-ईंट रखे जा रहा है कि वह कभी-न-कभी कोई आकार तो ग्रहण कर ही लेगा। किंतु, इस प्रकार के निर्माताओं का निर्माण कैसा होगा, इसका अनुमान तो लगाया ही जा सकता है।

अधिकांश लोगों को व्यवसाय के चुनाव की कोई पूर्वनिर्धारित योजना नहीं होती। बाद में अपनी रुचि और शक्ति का ध्यान किए बिना किसी व्यवसाय के बाह्य चाकचिक्य के प्रति वे आकृष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति की रुचि चित्रकारी में है, किंतु देखता है कि अब कौन चित्रों की कदर करता है, अच्छा है वह पार्श्वगीत-गायक बन जाए—पैसे और प्रतिष्ठा सभी मिलेंगे। कमल से केवड़े का काम लेने की हठधर्मिता में सब गड़बड़ हो गया। किसी की रुचि दर्शन के अध्ययन में है। किंतु, देखा कि अब शंकराचार्य तक को तो कोई पढ़ता नहीं, मेरे चिंतन का क्या मूल्य होगा। हाँ, इंजीनियर बनने में बहुत आय है। अतः, दर्शन की पढ़ाई छोड़कर वह विज्ञान में कूद पड़ा। किसी की रुचि चिकित्सा में है, किंतु उसे लगता है कि भारतीय शासनसेवा में अधिकार और प्रतिष्ठा है। वह डॉक्टरी को छोड़ उस ओर उछल पड़ा। किसी की रुचि शिक्षण में है, लेकिन देखा कि बेचारे शिक्षक की कोई कद्र नहीं है, यदि राजनीति में चले गए, एम॰ एल॰ ए॰, एम॰ पी॰ हो गए, तो कभी-न-कभी मंत्री अवश्य बन जाएँगे और फिर है पौ-बारह। इतना अर्जित करके छोड़ दिया जाए कि सात पुश्तों तक मटरगस्ती चलती रहे। किसी की रुचि साहित्य में है, पर पद और प्रतिष्ठा के लोभ में वह भारतीय प्रशासनिक सेवा की ओर लपक पड़ा। किसी की रुचि कृषि में है, किंतु लक्ष्मी का निवास तो व्यापार ही में है, कौन खाद-गोबर का हिसाब रखे। कृषि से छलाँग लगाकर वह व्यापार की ओर चला आया। अंगूर की लत्ती से अनार प्राप्त करने की इच्छा का जो परिणाम हो सकता है, वही परिणाम होगा यदि रुचि के प्रतिकूल व्यवसाय का चुनाव किया जाए।

अतः, व्यवसाय के चुनाव में बड़ी सतर्कता और समझदारी की आवश्यकता है। व्यवसाय के चुनाव में सबसे महत्त्वपूर्ण है—रुचि। जिस व्यवसाय में रुचि हो, रुझान हो, आत्मा का आदेश हो, उधर ही जाना चाहिए। दूसरे के कहने से, किसी अन्य व्यवसाय के आकर्षण या किसी प्रकार के प्रलोभन से उस ओर जाना कतई उचित नहीं है। रुचि के प्रतिकूल पेशा चुनने से उधर मन रम नहीं पाता है और इस प्रतिस्पर्धा के युग में सफलता भी नहीं मिल पाती।

इसके अतिरिक्त अपनी रुचि के अनुकूल जब कोई व्यवसाय चुन लिया, तब उस ओर पूरी लगन और निष्ठा से लग जाना चाहिए। सच्ची लगन काँटों की परवाह नहीं करती। यदि मार्ग में बाधाएँ भी आएँ, तो डटकर मुकाबला करना चाहिए। पं॰ सोहनलाल द्विवेदी ने ठीक ही कहा है—

> खड़ा रहा जो अपने पथ पर, लाख मुसीबत के आने में,
> मिली सफलता उसको जग में, जीने में या मर जाने में।

रुचि, लगन तथा उसपर टिके रहने की आदत डालनी चाहिए। यदि अपने मनोनुकूल व्यवसाय में भी असफलता का हलका झोंका आया, तो उसका परित्याग कर भाग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निकलना ठीक नहीं। बंदर की तरह एक डाल से दूसरी डाल पर कूदते रहना ठीक नहीं। जिस व्यवसाय को चुना, उसे धैर्य, परिश्रम, अध्यवसाय एवं सुरुचि से करते जाना चाहिए। यदि उचित व्यवसाय का चुनाव हो गया और उस ओर हम पूरी निष्ठा, लगन और धैर्य से बढ़ते रहे, तो हम समृद्ध, समुन्नत होंगे तथा यश और प्रतिष्ठा सभी हमारे पाँव चूमेंगे। जीवन में दुःख के शूल सदा चुभते रहें या सुख की सुमनशय्या पर मुस्कराते रहें—यह सब व्यवसाय के समुचित चयन पर ही निर्भर है। जीवन के आनंदपूर्ण भव्य रत्नसौध की आधारशिला है—व्यवसाय का चयन।

हमारे पड़ोसी

[आरंभ, विपन्न पड़ोसी, संपन्न पड़ोसी, कर्तव्य, उपसंहार]

यद्यपि मैं अपने पड़ोसियों के साथ जल में कमल की तरह निर्लिप्त रहने का आदर्श अपनाना चाहता हूँ, किंतु क्या ऐसा संभव है ? जल और कमल का कितना अविनाभावसंबंध है, इसे भी हम जानते हैं। जल के बिना न कमल का अस्तित्व है और न उसका विकास ही। अतः, अपने पड़ोसियों से दूर रहने का संकल्प रखकर भी उनसे अपने को दूर रखना संभव नहीं। जिस प्रकार जल में आया हुआ हलका-सा कंपन भी कमल को कंपायमान कर देता है, उसी प्रकार हमारे पड़ोसियों द्वारा किए गए आचरण का एक हलका झोंका भी हमारे मानस-सरोवर में हिलकोर उठा जाता है।

हमारे पास-पड़ोस में दो प्रकार के मकानों की कतारें हैं। एक ओर छोटे-छोटे मिट्टी और नोनियाई ईंटों के खोभारनुमा मकानें हैं, तो दूसरी ओर विशाल भवनों की शृंखला है। इन वैज्ञानिक वरदानों से समृद्धिशालिनी राजधानी में भी ये बिन-पुताई, बिन-रोशनीवाले ऊँघते मकान अब भी पुराकालीन अविकसित समाज का ही रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं। इन छोटे-छोटे मकानों में तथाकथित छोटे लोग रहते हैं, हालाँकि मैं इन्हें बड़ा आदमी मानने के पक्ष में हूँ। मेरी दृष्टि में मनुष्य के बड़प्पन का एक ही मापदंड है, वह यह कि जो दूसरों की उन्नति में आनंद का अनुभव करता हो, वह बड़ा आदमी है। जो दूसरों की उन्नति में दुःख का अनुभव करता है, ईर्ष्या से सुलगता रहता है, वह छोटा आदमी है।

तो, सचमुच इन बौने मकानों में ये रहनेवाले अकिंचन महान पड़ोसी हैं। इनके पास साधन का अभाव है। ये दीनता-दानवी के जबड़े के नीचे कराहते रहते हैं। ये अभावों का वृश्चिक-दंश झेलते रहते हैं। ये पीड़ाओं की सूइयों की चुभन सहते रहते है, फिर भी हमारे लिए ये बड़े ही सदय एवं सहायक हैं। जब मैं बरामदे पर बैठा होता हूँ, तब ये सलाम बजाते हैं, आदाब करते हैं, नमस्कार करते हैं। मेरे परिवार की मरुभूमि में, जब कभी आनंद का फुहारा पड़ता है, ये प्रफुल्लमुख होते हैं। ये जब मुझसे मिलते हैं, तब मुझे वही सुख होता है, जो सज्जन से सज्जन के मिलन का सुख होता है—

चार मिले चौंसठ खिले, बीस रहे कर जोड़ि।
सज्जन सों सज्जन मिले, बिकसे सात करोड़ि॥

ये हमारे लिए वैसे ही पड़ोसी हैं, जैसे हमारे देश के पड़ोसी बँगलादेश, भूटान, नेपाल और श्रीलंका हैं। ये छोटे-छोटे देश अभावों की पहाड़ियों से घिरे विपदाओं की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जलराशि से घिरे हैं, फिर भी हमारे देश के प्रति ये पूरी सहानुभूति रखते हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा भारत के प्रसन्न वर्तमान एवं संपन्न भविष्य की कामना करते हैं। इनके पास चाहे थोड़ा ही क्यों न हो, किंतु हमारी झोली में कुछ-न-कुछ डालने को सदा तैयार रहते हैं।

किंतु, दूसरी ओर जो ये आकाश की ओर सीना ताने बड़े-बड़े कर्पूरी और दुग्धवर्णी भवन हैं, उनमें रहनेवाले बिलकुल इंद्रसखा और अपनी उच्चता का मिथ्या दंभ करनेवाले लोग हैं। ये सचमुच ऊँच निवास, नीच करतूती, देखि न सकहिं पराइ बिभूति को उदाहृत करनेवाले लोग हैं। ये हमारी प्रगति से उसी तरह म्लान होते हैं, जिस प्रकार ज्वर से गजराज। ये अब हमारे सामने से गुजरते हैं, तब बिलकुल गंभीर, नतमुख। ये हमेशा हमारा छिद्रान्वेषण करते हैं। ये हमारे गुण में भी दोष देखते हैं।

कबीर ने कहा था कि निंदक को निकट रखना चाहिए। वे बिना साबुन और पानी के ही हमारे स्वभाव को निर्मल करते हैं। हमारे अनचाहे भी ये हमारे पड़ोसी बन गए हैं, किंतु ये हमारे मलिन स्वभाव को निर्मल नहीं करते, वरन् स्वच्छ स्वभाव को ही मलयुक्त करने की चेष्टा करते रहते हैं।

हम इनपर ध्यान भी रखते हैं, पर हमारे ध्यान रखने से होता ही क्या है? हम लाख सावधानी से गाड़ी चलाएँ, किंतु हमारे दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे से हमें कोई धक्का दे जाए, तो हमारी सद्बुद्धि, सूझ-बूझ, चातुरी क्या काम करेगी!

हमारे ये पड़ोसी जो सदा नतमुख अजनबी-से हमारी आँखों के सामने से गुजरते रहते हैं, वहीं जरूरत पड़ने पर हमारे सामने अपनी बत्तीसी निकालकर, आँखों में आँखें डालकर, उद्ग्रीव होकर बातें करते हैं। जब संकट का ग्राह उन्हें पकड़ ले, तब आप उनके लिए उद्धारक विष्णु हैं; जब उनपर किसी अधिकारी का इंद्रकोप हो जाए, तब आप उनके लिए गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण हैं; जब उनके यहाँ अर्थाभाव हो, तब उनके लिए आप कुबेर हैं; जब आपको उनके बच्चों को पढ़ाना हो, तब आप उनके लिए बृहस्पति हैं; जब उन्हें कोई आवश्यकता हो, तब आप उनके लिए कल्पतरु हैं; जब उनके स्वार्थ की पूर्ति का वातायन आपकी ओर से बंद हो जाए, तब फिर आप उनके लिए दुर्गुणों के कोष, लांछनों के भंडार, बिलकुल नकारा, उपेक्षणीय एवं अस्पृश्य हो जाते हैं।

वे तेज वॉल्यूम करके रेडियो बजाएँगे, ताकि आपकी शांति खंडित हो जाए; उनके बाल-बच्चों की टीम आपकी छत पर फुटबॉल मैच खेलेगी; उनकी दाइयाँ आपके दरवाजे के आगे म्युनिसिपैलिटी का कूड़ाघर बनाएँगी; उनके बच्चे आपकी नालियों को रेलवे का संडास बनाएँगे; उनकी श्रीमतीजी आपकी फुलवारी के मासूम फूलों की गर्दन मोड़कर अपने पूजन का थाल रचेंगी; किंतु आप कभी उनके दरवाजे पर किसी काम के लिए जाएँ, तो फिर उनका तेवर देखिए, उनके चेहरे का रंग देखिए, उनका रोब देखिए, उनकी बेमुरौवती और बेरुखी का जायका लीजिए, उनके ठंडे व्यवहार की ऊष्मा सहिए, उनके ऐंठ का तनाव भोगिए, उनकी निष्पक्षता और सिद्धांतवादिता का हरिबोल सुनिए।

गिरिधर कवि की एक कुंडलिया है—

साँई बैर न कीजिए, गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पौरिया, यज्ञ करावनहार॥
यज्ञ करावनहार, राजमंत्री जो होई।
विप्र पड़ोसी वैद्य, आपको तपैं रसोई॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कह गिरिधर कविराय, युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिए बनि आवै साईं॥

गिरिधर कवि ने पड़ोसी से बैर न करने की सलाह दी है। यदि हम किसी से मैत्री नहीं कर सकते, तो वैर ही क्यों ठानें? किंतु, भगवान बचाएँ ऐसे पड़ोसियों से। इनके साथ तो उदासीन रहने में ही हमें अपना कल्याण दीखता है। पता नहीं, आपके पड़ोसी कैसे हैं? अपनी परिस्थिति देखकर ही कोई सिद्धांत बनाइए, कोई निर्णय लीजिए, मेरी तो आपको इतनी ही सलाह है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लघु निबंध

1. परिश्रम सफलता की कुंजी है

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिए आलस्य और भाग्यवादिता का दामन छुड़ा कठिन परिश्रम करना ही एकमात्र मार्ग होता है। जीवन में सुख प्राप्त करना हर मनुष्य की आकांक्षा होती है। लेकिन, अलादीन का चिराग सबके हाथों में नहीं होता कि चिराग जलाते ही सारी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाएँ। केवल परिश्रम ही जीवन-संघर्ष में सफलता ला सकता है। मानव का इतिहास साक्षी है कि अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखनेवाले लोग ही रेगिस्तानों में झील बना सके हैं। धरती की छाती चीरकर मनोवांछित फल प्राप्त कर सके हैं। वस्तुतः, अपने अदम्य साहस, कौशल और सच्ची लगन के सहारे ही परिश्रमी व्यक्ति जीवन के रेतीले मैदानों को पार करता है। कोयले को हीरे में बदल डालने की कला जादू से नहीं उत्पन्न हो सकती, परिश्रम करनेवाले ही मिट्टी को सोना बना डालते हैं। पुरुषार्थी के लिए कुछ भी असंभव नहीं। अपने परिश्रम के सहारे मनुष्य सफलता के हर शिखर का स्पर्श कर सकता है। कठिन परिश्रम और दृढ़ पुरुषार्थ ही जीवन में सफलता के मूलमंत्र हैं।

2. आवश्यकता आविष्कार की जननी है

यह स्वीकार करने का अब कोई अर्थ नहीं रह गया है कि किसी वस्तु के आविष्कार के मूल में मनुष्य की आवश्यकताएँ नहीं होतीं। वस्तुतः, सभी नई उपलब्धियों के केंद्र में मनुष्य की आवश्यकताएँ होती हैं। हम बिना जरूरत अपना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाते। वैज्ञानिक मनुष्य की आवश्यकताओं का अनुभव करते हैं, तदनुरूप किसी आविष्कार का आरंभ होता है।

प्रत्येक आविष्कार मनुष्य की विकास-यात्रा का नया सोपान है और मानव की यह विकास-यात्रा आवश्यकताओं की जलवायु के बीच ही साँस लेती है। बिना जरूरत न कोई आविष्कार हुआ है, न होगा। समस्त मानवीय उपलब्धियों के केंद्र में मनुष्य की अदम्य जिजीविषा से जुड़ी अनिवार्यताएँ हैं।

3. एकता ही बल है

किसी भी समाज की शक्ति उसकी जनसंख्या में नहीं, अपितु उसकी एकता में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निहित रहती है। एकता के अभाव में न परिवार का स्तर ऊँचा उठता है और न समाज का सही विकास होता है। वस्तुतः, एकता ही शक्ति और संगठन का मूलमंत्र है।

मनुष्य का इतिहास साक्षी है कि जब कभी राष्ट्र और समाज में अनेकता उत्पन्न हुई है, देश का परिवेश खोखला हुआ है। भारत इसलिए पराधीन हुआ कि भारतीय जनता में आपसी एकता नहीं थी, जैसे ही एक होकर स्वाधीनता का शंखनाद किया गया, एकता रंग लाई और भारत स्वतंत्र हुआ। एकता वह केंद्रीय तत्त्व है, जो लोगों के बीच शक्ति और साहस का संचार करती है। एकता सहानुभूति और विकास का दूसरा नाम है, एकता शक्ति और संगठन का जीवंत पर्याय है।

4. सत्यं शिवं सुंदरम्

मानव सभ्यता, चिंतन और कला का विकास जिन तीन मूल तत्त्वों की ओर प्रारंभ से ही उन्मुख रहा है—वे हैं सत्य, शिव और सुंदर। वैदिक काल से अब तक दर्शन और चिंतन की सारी परंपराएँ इन्हीं तीन मानवीय मूल्यों की सिद्धि में व्यस्त रहीं। सत्य के बारे में, यह एक निर्विवाद तथ्य है कि जो कुछ भी आडंबररहित एवं अकृत्रिम है, वह सत्य है। खुली आँखों से दिखाई पड़नेवाली वास्तविकता ही सत्य है। दूसरी ओर, शिव विश्वचेतना में निहित वह तत्त्व है, जो लोकमंगल की दिशा में उन्मुख करता है। मनुष्य को मनुष्य के हितार्थ उन्मुख करने की भावना ही शिवम् है और सुंदरम् सत्य और शिव को समेटकर चलनेवाला वह अनुभूति और अभिव्यक्ति का उत्कर्ष है, जिससे आनंद की वर्षा होती है। सत्य का प्रकाश शिवम् की ज्योति से अनुप्राणित होकर सुंदरम् की मनोहर अभिव्यक्ति करता है। इन तीनों का समन्वय जीवन को पूर्णता प्रदान करता है, मानवीय मूल्यों को एक स्थायी रूप देता है।

5. वसुधैव कुटुम्बकम्

यह सारी सृष्टि उस विधाता की निर्मिति है, जिसने हमें विविध भूखंडों पर अनेक रंगों और भाषाओं में विचरने के लिए स्वतंत्र छोड़ रखा है। धर्म और जाति, भाषा और लिपि, रंग और रूप के नाम पर पार्थक्य की दीवारें मनुष्य ने उठा रखी हैं। पारस्परिक मैत्रीपूर्ण संबंधों को तिलांजलि देकर मनुष्य ने उसी समय से इन दीवारों को बनाने की सक्रियता दिखाई, जब उसे सभ्यता की पहचान हुई। जिसे हम आधुनिक सभ्यता के रूप में जानते हैं, उसने संसार में लोगों के बीच अनेकानेक दरारें उत्पन्न की हैं। जब कोई देश पड़ोसी देश को हड़पने के लिए आक्रमण करता है, जब कोई आदमी दूसरे आदमी को देखकर घृणा से नाक सिकोड़ लेता है, जब किसी जाति-धर्म के लोग दूसरे जाति-धर्म के लोगों का खून बहाते हैं, तब ईश्वर की यह धरती अपने निर्माण की मूलभूत संकल्पना से बहुत दूर हट जाती है। यह समस्त शस्यश्यामला वसुंधरा एक ही है और इसपर रहनेवाले लोग एक ही परिवार के सदस्य हैं, इस अवधारणा का पल्लवन ही युद्ध और वैमनस्य की विभीषिका को दूर करने में सहायक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हो सकता है। जिस दिन पृथ्वी के सभी लोग धर्म और संप्रदायों, रंग और भाषा के विभेद भूलकर एक परिवार की तरह आचरण करने लगेंगे उसी दिन सच्ची मानवता का उदय होगा।

6. मित्रता बड़ा अनमोल रत्न है

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य के लिए यह संभव नहीं कि वह बिना किसी साहचर्य अथवा मैत्री के जीवनयापन करे। रॉबिन्सन क्रूसो की तरह एकाकी जीना मानवीय लक्ष्य नहीं है, अपितु मानव-जगत् के बीच मित्रों और शत्रुओं के मध्य जीना ही सच्चा जीवन है। जीवन के उल्लेखनीय धनों में एक मित्रता भी है, जिसके बिना मानवीय साहचर्य की कल्पना नहीं की जा सकती। मैत्री एक मानवीय आदर्श है, मनुष्य की जीवनधारा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

वास्तविक मित्रता सहज उपलब्ध होनेवाली अथवा बाजारों में बिकनेवाली वस्तु नहीं है। यह एक अमूल्य रत्न है; क्योंकि मानव-इतिहास में लोग मित्रों के लिए अपने प्राण तक न्योछावर करते पाए गए हैं। निश्चय ही, मित्रता एक विलक्षण संपदा है, जीवन की एक अनूठी उपलब्धि है। दिनकरजी ने ठीक ही लिखा है—

> मित्रता बड़ा अनमोल रतन
> कब इसे तोल सकता है धन ?

7. होनहार बिरवान के होत चीकने पात

प्रतिभा अभ्यास से नहीं उत्पन्न होती और वह धनराशि से खरीदी भी नहीं जा सकती। जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय देनेवाले महापुरुषों का जीवनवृत्त साक्षी है कि उन्होंने बचपन से ही अपनी विलक्षणता की ओर संकेत किया है। पूत के पाँव पालने में ही सूचित कर देते हैं कि यह होनहार बिरवा आनेवाले दिनों में कितने विशाल वटवृक्ष के रूप में परिणत होगा।

राष्ट्र और समाज के प्रति अपनी प्रातिभ चेतना से विलक्षण योगदान देनेवाले लोगों ने बचपन से ही अपनी मनोवृत्ति और क्रियाशीलता का संकेत दिया है। पत्थर पर लगातार रस्सी के घिसने से निशान अवश्य पड़ जाते हैं, लेकिन प्रतिभा का दीप प्रौढ़ावस्था में नहीं प्रज्वलित होता। बचपन की गतिविधियों में किसी भी व्यक्ति की भावी जीवनयात्रा का पूर्वाभास परिलक्षित होता है।

8. निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय

मनुष्य के विकास की प्राथमिक शर्तों में यह भी है कि उसे अपनी विशिष्टताओं के साथ-साथ न्यूनताओं का भी परिज्ञान होना चाहिए। इसी कारण कबीर ने ऐसे निंदकों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को आँगन में बसाने की सलाह दी थी, जो बिना पानी और साबुन के आचरण को निर्मल बनाते हैं। ऐसे लोगों की विशिष्ट आवश्यकता अप्रत्यक्ष रूप में सबको महसूस होती है, जो सद्गुणों के साथ-साथ अवगुणों का भी विश्लेषण करते हैं।

सामान्यतः समाज में निंदक को हेय दृष्टि से देखा जाता है। निंदक की कार्यविधि केवल हमें हमारी त्रुटियों से परिचित नहीं कराती, अपितु दुर्गुणों के परिमार्जन की दिशा में भी सचेष्ट करती है। यदि हमें वस्तुतः सद्गुणों का समवाय बनना है, तो अपने निकट अनिवार्यतः दोषदर्शक निंदक रखना होगा।

9. गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय

भारतीय सभ्यता ने विश्व को गुरु-महिमा से विधिवत् परिचित कराया है। हमारी संस्कृति ने गुरु को ईश्वर से भी अधिक शीर्ष स्थान दिया है; क्योंकि गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं। गुरु की पदनख-मणिगण-ज्योति के स्मरणमात्र से दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है, गुरु की पदरज मंजुल अंजन बनकर दृग्दोषों का विभंजन करती है। ऐसे गुरु की महत्ता और विशालता को संतों और भक्तों ने अधिकाधिक गरिमा दी है।

जो अपने शिष्यों का उचित मार्गदर्शन कर उन्हें जीवन की सही दिशा में मोड़ सके, उनकी ज्ञान-पिपासा शांत कर अज्ञान की व्याधि दूर कर सके, वह मनुष्य होकर भी देवता नहीं तो क्या है? इसलिए, ईश्वर से अधिक महत्त्व गुरु को दिया गया है, जो ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दर्शाता है।

10. धरम न दूसर सत्य समाना

धर्म की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं और उसके विभिन्न अवयवों की व्याख्याएँ भी उपलब्ध हैं। लेकिन, सभी संप्रदायों और सभी शास्त्रों ने एक स्वर से धर्म की इस व्याख्या को स्वीकार किया है कि सत्य सबसे बड़ी तपस्या है, सत्य सबसे बड़ी साधना है। सत्य का मार्ग संकटपूर्ण होता है, लेकिन अंततः विजय सत्य की ही होती है 'सत्यमेव जयते' उपनिषद् की उद्घोषणा है।

सत्य का स्थान मानव-धर्म के विविध अवयवों के बीच अन्यतम है, क्योंकि यह किसी संप्रदाय या सिद्धांत की संपत्ति नहीं। सत्य मानव-धर्म की सत्ता और संरचना का केंद्रीय वितान है। सत्य के सहारे ही मनुष्य अन्य धार्मिक संस्कारों से विरत होकर भी सुख और शांति अर्जित कर पाता है।

11. समरथ को नहिं दोष गुसाईं

सामाजिक वातावरण में सबल और निर्बल लोगों का अनुपात प्रारंभ से ही विषम रहा है। निर्बलों पर सबलों के दबाव की कहानियाँ अनादि काल से प्रचलित रही हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समाज का यह भी एक विचित्र विधान है कि समर्थ लोगों की गलत कार्यविधियों को भी सामाजिक संरक्षण मिल जाता है। भय और प्रीति के समन्वय से समाज समर्थ लोगों को दोष देने में हिचकिचाता है। यह हमारे सामाजिक संगठन की एक विसंगति ही है कि सबल को और अधिक सबल बनने का अवसर मिलता रहता है।

एक स्थिति यह भी है कि निर्बलों को अपनी बात कहने और सुनने के अवसर भी नहीं प्राप्त होते। उन्हें अनेक अपराधों से जोड़ दिया जाता है, जबकि सबलों के प्रत्येक आचरण को प्रशंसा की निगाह से देखा जाता है। इस विचारणा का प्रतिफल यह है कि समर्थ मदयुक्त होकर अधिकाधिक समर्थ बनते जाते हैं।

12. का बरखा जब कृषी सुखाने

समय की गति को पहचानकर चलनेवाले लोग ही जीवन-पथ पर अपने लक्ष्य तक पहुँच पाते हैं। जब चिड़ियों के द्वारा पूरा खेत चुग लिया जाता है, तब पश्चात्ताप करने से कोई लाभ नहीं होता। जब खिले हुए कमलों को पाला मार जाए, तब प्रातःकालीन सूर्य की प्रखरता उन्हें खिला नहीं पाती। जब दूध फट जाता है, तब बहुत परिश्रम करने से भी मक्खन नहीं निकाला जा सकता। वस्तुतः, खेती के सूखने के पूर्व ही वर्षा की प्रासंगिकता होती है, बाद में केवल पश्चात्ताप ही शेष रह जाता है।

इतिहास ऐसे अनेक प्रसंगों का साक्षी है कि सही समय पर कार्य-संपादन न होने के कारण बहुतों को संकट का सामना करना पड़ा है। प्यास लगने के बाद कुआँ खोदने के लिए उद्यमशील व्यक्ति को भी प्यासा मरना ही पड़ता है। सही परिस्थिति के अनुरूप आचरण करने पर ही सफलता की देवी गले में वरमाला डालती है।

13. पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं

स्वाधीनता प्राणिमात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है, विशाल सृष्टि के फैले हुए फलक में हर जीव-जंतु को जीने का बँधा हुआ रास्ता रास नहीं आता। जंगल में मेघ-गर्जन सुनकर मत्त होकर नाचनेवाला मोर पिंजड़े में अपने पंख नहीं फैला पाता। अपनी दहाड़ से वन-प्रांतर को हिला डालनेवाला वनराज सर्कस के पिंजड़े में घुटी हुई साँसें ही लेता है। उसी तरह गुलाम जीवन जीनेवाले मनुष्य की स्थिति भी पूरी तरह मालिक की इच्छा पर निर्भर रहती है। बंदियों और दासों को सपने में भी सुख नहीं नसीब होता। यही स्थिति किसी परतंत्र देश की भी होती है। बँधी हुई लेखनी स्वच्छंद गीतधारा नहीं प्रवाहित कर सकती, पराधीन राष्ट्र उन्नति की सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता और गुलाम मनुष्य सामान्य सुखों से भी वंचित रहता है। स्वाधीनता वह अमूल्य निधि है, जिसके बिना जीवितावस्था में ही शववत् आचरण करना पड़ता है। नीच-से-नीच व्यक्ति और छोटा-से-छोटा बालक भी अपने ऊपर किसी का नियंत्रण प्रसन्नता से स्वीकार नहीं करता। गुलामी की जंजीर को तोड़कर स्वाधीनता की ओर अग्रसर मानवता ने इसीलिए स्वतंत्रता का मूल्य आँका है कि यह एक अभूतपूर्व अनुभव है, उपलब्धि है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं चाहते हम धन वैभव, नहीं चाहते हम अधिकार
बस स्वतंत्र रहने दो हमको, और स्वतंत्र रहे संसार ॥

14. जहाँ सुमति तहँ संपति नाना

यह उक्ति अत्यंत भ्रामक है कि लक्ष्मी उल्लू की सवारी करती है। वास्तविकता तो यह है कि लक्ष्मी उन्हीं लोगों के यहाँ निवास करती हैं, जिन्हें लक्ष्मी के समादर का पर्याप्त ज्ञान होता है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास ने स्वीकार किया है कि सुमति और संपत्ति का चोली-दामन का साथ होता है—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निधाना ॥

जिस घर में बुद्धि-कौशल का समुचित विनियोग होता है, वहाँ धन-धान्य की कमी नहीं होती। बहुत-सारे समृद्ध परिवारों के सदस्य भी सुमति के अभाव में जल्द राह के भिखारी बनते देखे गए हैं। सुमति केवल धनोपार्जन से ही जुड़ी हुई नहीं है, इसका रिश्ता आपसी ऐक्य, सौजन्य और स्नेह से भी है। अपनी आर्थिक समस्याओं से जूझनेवाले लोगों के लिए यह अत्यावश्यक है कि वे सुमतिपूर्वक एकता और स्नेह के आँचल तले प्रगति की कामना करें। यह न केवल किसी व्यक्ति और परिवार के ऐश्वर्य का रहस्य है, अपितु समाज और राष्ट्र की समृद्धि का मूलमंत्र भी यही है। जहाँ सुमति है, वहाँ स्वर्ग है, सुख है, जहाँ कुमति है, वहाँ नरक है, दैन्य है।

15. सठ सुधरहिं सतसंगति पाई

श्रेष्ठ और निम्न का भेद मनुष्य के सामाजिक पर्यावरण में इसी कारण निर्धारित किया गया है कि दोनों का संपर्क पृथक् फलों का दायक होता है। शराब की दूकान पर खड़े होकर दूध पीनेवाले व्यक्ति को लोग शराबी ही समझेंगे। नीच मनुष्य की संगति से श्रेष्ठ आचरणवालों को भी ग्रहण लग जाता है। इसके विपरीत, जिस तरह पारस छूने से लोहा भी सोना बन जाता है, कंचन की संगति से काँच में मरकतमणि-सी चमक आ जाती है, उसी तरह सत्संगति से अनेक दुष्ट और दोषग्रस्त व्यक्ति भी सुधर जाते हैं। कबीर ने ठीक ही कहा है—

कबिरा संगति साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगति नीच की, आठों पहर उपाधि ॥

सत्संग की अनिवार्यता वर्तमान संदर्भों में इसलिए भी अनुभव होती है कि आज सच्चरित्र ईमानदार लोगों का लोप होता जा रहा है। गुणवान, सदाचरणयुक्त, ज्ञानी और अनुभवसिद्ध लोगों का साथ आचाररहित, मूर्ख एवं अधकचरे दुष्टों को भी कीर्तिपूर्ण बना डालता है। सत्संगति से लाभान्वित होने के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती और न किसी तपस्या से गुजरना पड़ता है। संपर्क और अनुगमन ही सत्संगति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का धर्म है। सही और श्रेष्ठ लोगों की संगति मामूली और बुरे लोगों को भी महान बना देती है, जैसें साधारण कीड़ा भी पुष्प की संगति से देवमूर्तियों के मस्तक पर चढ़ जाता है—"कीटोऽपि सुमनःसङ्गात् आरोहति सतां शिरः।"

---

16. हाथ कंगन को आरसी क्या ?

यह लोकोक्ति चाहे जिस नवविवाहिता के सौंदर्य को सिद्ध करने के लिए बनी हो, अब इसमें संदेह नहीं कि प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। आसमान में इंद्रधनुष उगे हुए हों और बारिश की फुहारें गिर रही हों, तो मोर के लिए किसी सबूत की जरूरत नहीं होती कि वर्षा ऋतु आ गई है। हमारे दैनिक जीवन में लगातार ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जिन्हें देखने के बाद किसी प्रमाण या उदाहरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारे चारों ओर भ्रष्टाचार और छल का साम्राज्य फैला हुआ है, झूठ और अनाचार की आँधी आई हुई है, इन विसंगतियों की वास्तविकता की पहचान के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

जब हमारे अपने अनुभव ही प्रमाण का रूप धारण कर लेते हैं, तब किसी बाह्य कथन की जरूरत शेष नहीं रह जाती। किसी के कहने पर हमारे भोगे हुए यथार्थ में कोई अंतर नहीं आता। हमारे जीवन में उपलब्ध वास्तविकता ही अपने-आप में प्रमाण हैं। जब हाथ के कंगन में ही अपनी छवि देखी जा सकती है, तब किसी दर्पण की आवश्यकता भला किसे होगी ?

---

17. अधजल गगरी छलकत जाय

पानी से भरी हुई लबालब गागर से एक बूँद पानी बाहर नहीं छलकता, जबकि आधी भरी हुई गागर का जल समूचे रास्ते में छलकता जाता है। इस मामूली उदाहरण के माध्यम से घमंड और विनम्रता के अंतर को चिंतकों ने समझाया है। प्राचीन धर्मग्रंथों में घमंड को हार का द्वार कहा गया है। विशेषतः उन लोगों का घमंड तो नितांत हास्यास्पद बन जाता है, जो आधी भरी हुई गागर की तरह छलकते जाते हैं। सच्चा ज्ञानी अपने पांडित्य का प्रचार नहीं करता, करोड़पति अपने धन की घोषणा नहीं करता, महाबली को अपने बल का गर्व नहीं होता और सागर अपनी विशालता पर इतराता नहीं। इसके विपरीत कम धनवान, कम बलशाली और कम विद्यावाले लोग बार-बार अपनी विशेषता ज्ञापित करते हैं।

जिस तरह वर्षा के समय बादल झुक जाते हैं, उसी तरह मनुष्य को अपनी विद्या और शक्ति, धन और सौंदर्य के कारण विनम्रता का व्यवहार करना चाहिए। जो लोग थोड़ी समृद्धि पाकर इतने इतराने लगते हैं, उनकी स्थिति आधी भरी छलकती गागर से भिन्न नहीं होती।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

18. मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है

मनुष्य के उत्थान और पतन में भाग्य की भूमिका को रेखांकित करनेवाले विचारों की कोई कमी नहीं है। भाग्यवाद ने लाखों को आलसी और निकम्मा बना दिया है। ईश्वर ही हमारे कर्मों का निर्माता है और जो भाग्य में लिखा है, वही प्राप्त होगा—ऐसा सोचकर अपनी ही सफलता के मार्ग पर रोड़े अटकाते हैं। वास्तव में, इस भाग्यवाद ने मनुष्य का जितना अहित किया है, उतना संसार के किसी क्रूरतम तानाशाह ने भी नहीं किया होगा। कन्नड़ में एक कहावत है कि कुएँ में चाहे जितना पानी हो, महज चाहने से वह नहीं निकल सकता। मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माता स्वयं होता है। सफलता आसमान से उतरकर किसी के दरवाजे पर दस्तक नहीं देती। जो लोग अपने भाग्य का विधाता बनने का सामर्थ्य रखते हैं, समृद्धि और सफलता उन्हीं के गले में जयमाला डालती है। इतिहास साक्षी है कि मनुष्य ने जब कभी अपनी क्षमता का उपयोग किया है, उसने अपने भाग्य का निर्माण किया है।

19. ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है

अपने जीवन में मनुष्य को कई अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। जो लोग ईमानदारी को अपने जीवन का आधार बनाते हैं, उनके लिए हर परिस्थिति के बीच से सफलता का मार्ग खुलता जाता है। सच तो यह है कि जीवन का वास्तविक सुख ईमानदार व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। बेईमानी से संपत्ति एकत्र करनेवालों के पास सुख और चैन की वह नींद कहाँ, जो ईमानदारी से जीवन बितानेवाले के पास होती है। कोई आदमी गलत तरीकों से धन कमा सकता है, लेकिन उसकी सारी चिंता उस धन की रक्षा में ही लगी रहती है। इसके विपरीत, ईमानदार व्यक्ति पूरे संतोष और संयम के साथ अपना जीवन व्यतीत करता है।

विभिन्न प्रलोभनों और चिंताओं से अलग हटकर आनंदपूर्ण जिंदगी बिताने का रहस्य ईमानदारी के सिवा कुछ और नहीं। ईमानदारी अपने-आप में एक अनूठा धन है, एक विलक्षण सुख है। ईमानदारी के सहारे ही हम नैतिकता की राह पर चलते हुए संकटों का वीरतापूर्वक सामना कर सकते हैं। इसीलिए, ईमानदारी को सर्वोत्तम नीति कहा गया है; क्योंकि इस विशाल संसार में चरित्र का प्रासाद ईमानदारी की नींव पर ही खड़ा होता है।

20. भई गति साँप छछूंदर केरी

ऐसा प्रसिद्ध है कि यदि साँप छछूंदर को पकड़ लेता है, तो उसकी दशा विचित्र हो जाती है। यदि वह उसे निगल ले, तो उसकी मृत्यु हो जाती है और उगल दे, तो वह अंधा हो जाता है। ऐसी ही स्थिति में कभी-कभी मनुष्य भी पड़ जाता है, जब उसके सामने किए जानेवाले कार्यों का सही बोध नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति मनुष्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के जीवन में जब कभी आती है, उसका अपना विवेक ही सबसे बड़ा सहायक होता है। सही समय पर उचित निर्णय लेने की क्षमता के सहारे ही मनुष्य इस द्वंद्व से निकल सकता है।

हमारे विवेक और निर्णय को चुनौती देनेवाले अवसरों में हमारी स्थिति छछूंदर को पकड़नेवाले साँप से भिन्न नहीं होती। ऐसी स्थिति में एक ओर हमारे धैर्य की परीक्षा होती है, तो दूसरी ओर हमारे निर्णय का इम्तहान होता है। विवेक के सहारे ही हम इस स्थिति से उबर सकते हैं। सफलता का राजपथ उन्हीं लोगों के लिए खुलता है, जिनका प्रत्युत्पन्नमतित्व सही समय पर जागरित होता है।

21. मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना

धर्म का प्रासाद प्रेम और सत्य की नींव पर खड़ा होता है। राम और कृष्ण, ईसा और बुद्ध, मुहम्मद और महावीर सबके चलाए हुए धर्मों का आधार दया और करुणा, स्नेह और अहिंसा की भावना ही है। इसीलिए, कहा जाता है कि कोई भी मजहब आपस में वैर करना नहीं सिखाता। सभी धर्म एक-दूसरे के साथ भ्रातृत्व और स्नेह की डोर से बँधे हुए हैं। संसार के सभी धर्म, एकता और सद्भाव की ही शिक्षा देते हैं। इसके बावजूद धर्म के नाम पर होनेवाले संघर्षों के समाचार रोज अखबारों में छपते रहते हैं। कट्टर धर्मांधता ने न मालूम कितने निर्दोषों की जानें ली हैं और न मालूम कितने उपासना-गृहों को अपवित्र किया है। ऐसा धर्म को सांप्रदायिक जामा पहनाने के कारण ही होता है।

धर्म के वास्तविक मर्म से परिचित लोग जानते हैं कि सभी धर्मों की नदियाँ मैत्री के सागर में ही विलीन होती हैं। इसीलिए, विभिन्न मजहबों के विचारकों ने मानवता का दीप जलाते हुए लोगों के आपसी वैर का निषेध किया है। सच तो यह है कि कोई भी धर्म आपस में वैर करना नहीं सिखाता। महाकवि इकबाल ने ठीक ही कहा है—"मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना।" तब राम-जन्मभूमि और बाबरी मस्जिद के नाम पर आपस में खून-खराबा क्या अच्छा है?

22. स्वास्थ्य ही धन है

स्वास्थ्य को मनुष्य की अन्यतम संपत्ति कहा गया है। न तो भरे हुए बोरे की तरह मोटा हो जाना अच्छे स्वास्थ्य की निशानी है और न सींक जैसी दुर्बलता ही स्वास्थ्य का उदाहरण है। अपने शरीर और मन को पूरी क्षमता के साथ संचालित करने का सामर्थ्य ही स्वास्थ्य है। स्वस्थ व्यक्ति अपने-आपको ही नहीं, औरों को भी लाभ पहुँचा सकता है। बिना किसी कृत्रिम प्रसाधन के जो सौंदर्य चेहरे पर खिलता है, वही स्वास्थ्य का प्रमाण है। अगर हम संसार के सुखों का वास्तविक उपभोग करना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें अपने स्वास्थ्यरूपी धन की रक्षा करनी होगी। स्वास्थ्य को किसी मूल्य पर खरीदा नहीं जा सकता। इसीलिए स्वास्थ्य की महिमा सभी कालों और सभी देशों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में गाई गई है। स्वस्थ होना मनुष्य का सबसे महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है, क्योंकि स्वस्थ मानव को सृष्टि का सर्वोत्तम शृंगार कहा गया है। स्वास्थ्यरूपी धन जिसके पास है, उसके लिए यह पृथ्वी स्वर्ग है, अन्यथा नरक से भी बदतर।

---

23. नाच न जाने आँगन टेढ़

हम अपनी असमर्थता का आरोप दूसरों पर लगाने के अभ्यासी हैं। जिसे अच्छी तरह नाचना नहीं आता, वह आँगन पर टेढ़ेपन का दोष आरोपित करता है। इस प्रवृत्ति का संकेत हमारे दैनिक व्यवहार में लगातार मिलता है। आज के व्यस्त जीवन में कोई काम सीखना नहीं चाहता, लेकिन अपनी कर्मठता का डंका बजाना सभी चाहते हैं। यह बात किसी पर लागू नहीं होती, बल्कि सबसे जुड़ी हुई है। बच्चे, बूढ़े सभी अपना दोष छिपाते हैं और दूसरे के सिर पर दोष मढ़ देते हैं। जब कोई दूसरा दोषी ठहराने लायक नहीं मिलता, तो कार्य की साधन-सामग्री को ही दोषी ठहरा दिया जाता है। किसी से चित्र अच्छा नहीं बनता, तो वह कहता है कि कागज और रंग में खराबी है। कोई अच्छा गा नहीं पाता, तो इसका सारा दोष वाद्ययंत्रों पर थोप देता है। अपना दोष औरों पर आरोपित करने की इसी प्रवृत्ति को 'नाच न जाने आँगन टेढ़' लोकोक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। इस घातक प्रवृत्ति से हमें बचना चाहिए और अपनी गलतियों को स्वीकार कर लेने में हिचक का अनुभव नहीं करना चाहिए।

---

24. लालच बुरी बलाय

लालच को मनुष्य की उन दुष्प्रवृत्तियों के बीच गिना गया है, जिनके कारण मनुष्य का सामाजिक और नैतिक अधःपतन होता है। दूसरे की वस्तुओं के प्रति आकर्षण और उन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए की जानेवाली साजिशों के कारण लोग विपत्तियों में फँसते चले जाते हैं। लालच में फँसकर आदमी एक के बाद एक अपराध करता जाता है और अपने सुखमय जीवन को कंटकमय बना लेता है। अपनी लालची आदत के कारण मनुष्य लगातार गलतियाँ करता जाता है। हमारे परिवेश में लूट और हत्या, झूठ और जालसाजी के जितने अपराध मिलते हैं, उन सबके मूल में लालच ही है।

लालच असंतोष की देन है। प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रयास करना चाहिए कि वह लालच से बचे, चाहे वह लालच किसी बड़ी वस्तु का हो या किसी छोटी वस्तु का। संतोषी और परिश्रमी व्यक्ति के मन में लालच के कीटाणु जन्म नहीं लेते। लालच की बीमारी एक संक्रामक रोग की तरह फैलकर हमारे सामाजिक और नैतिक आदर्शों को समाप्त कर रही है।

---

25. चोर-चोर मौसेरे भाई

इसमें संदेह नहीं कि सामान्य प्रवृत्तिवाले व्यक्तियों में घनिष्ठता होती है। अधिकन्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भले लोग एक साथ नहीं जुटते, जबकि कुमार्गियों की एकता सहज देखी गई है। एक तस्कर के साथ दूसरे तस्कर की मैत्री आसानी से हो जाती है और एक चोर दूसरे चोर के साथ सुगमता से मिल जाता है। ऐसी एकता संभ्रांत लोगों में नहीं पाई जाती; क्योंकि उनमें वैचारिक मतभेद होता है। इसके विपरीत सामान्य दुष्प्रवृत्तिवाले लोगों में मैत्री आसान होती है। इसी कारण कहा गया है कि चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं।

हमारे आसपास भ्रष्टाचार और लूट की धूम मची हुई है। इस वातावरण में कोई भी आदमी दुष्प्रवृत्तियों से अपने-आप को नहीं बचा पा रहा है। सभी अपने-अपने स्तर पर देश को लूटने में लगे हैं और इस धरातल पर सभी एक-दूसरे के सगे-संबंधी बन गए हैं। चोरों और भ्रष्टाचारियों के बीच संबंध स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता, वे तो स्वयं ही मौसेरे भाई होते हैं।

26. एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय

इस प्रेरणादायक उक्ति का तात्पर्य यह है कि एक ही समय में बहुत-सारे कार्यों को हाथ में ले लेने से कोई भी एक कार्य पूर्णता तक नहीं पहुँच पाता। फलतः, हमारे सारे कार्य अधूरे रह जाते हैं। इसलिए, हमें अतिशय व्यग्रता न दिखाते हुए एक समय में कोई एक काम हाथ में लेना चाहिए और उस काम की समाप्ति के बाद ही दूसरा काम शुरू करना चाहिए। एक साथ कई काम हाथ में लेने पर हम किसी विशेष कार्य पर ध्यान नहीं केंद्रित कर सकते। कोई भी काम अपनी चरम परिणति तक नहीं पहुँचेगा, तो कोई काम शुरू करने का कोई लाभ नहीं मिल सकता।

अगर हम अपने जीवन में किसी एक योजना को साथ लेते हैं और उसके बाद दूसरी योजना आरंभ करते हैं, तब हमारी सारी योजनाएँ पूर्ण हो सकती हैं। एक साथ कई नावों पर पैर रखकर चलनेवाला कभी नदी में गिर सकता है। हम किसी एक उद्देश्य के साथ निष्ठापूर्वक जुड़ जाएँ, तो न केवल वह उद्देश्य पूरा होगा, बल्कि अन्य उद्देश्यों की पूर्णता के लिए भी रास्ता खुलेगा।

27. अंधेर नगरी चौपट राजा

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने प्रसिद्ध प्रहसन में एक ऐसी अंधेर नगरी का वर्णन किया है, जिसका चौपट राज अपने अविवेकपूर्ण निर्णयों के कारण शासन और न्याय का विचित्र अंत करता है। 'अंधेर नगरी चौपट राजा' जैसी लोकोक्ति इस प्रहसन की रचना के बाद चौपट शासक की व्यवस्था और अंधकारपूर्ण वातावरण के संदर्भ में प्रचलित हुई है। जिस राज्य में सब ओर निराशा और अशांति का साम्राज्य हो, अशिक्षा और अनाचार व्याप्त हो, उसे अंधेर नगरी कहना अनुचित नहीं होगा। ऐसी अंधेर नगरी का शासक भी यदि मूर्ख और अविवेकी हो, तो इस राज्य की जनता का ईश्वर ही मालिक है। होना तो यह चाहिए कि शासक अपने विवेकपूर्ण आचरणों से शासन-व्यवस्था को संतुलित रखे, ताकि राज्य में कहीं अशांति और अंधकार का समावेश न हो। बिना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सोचे-विचारे शासन करनेवाले प्रशासकों के कारण कोई भी बसी-बसाई नगरी अंधेर नगरी में बदल सकती है। ऐसे चौपट शासक पर जनता विश्वास नहीं करती और ऐसी अंधेर नगरी पर आक्रमण कर कोई भी विपक्षी आसानी से शासन कर सकता है।

28. साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप

जो कुछ अपनी खुली आँखों से दिखाई दे और बिना कुछ जोड़-घटाव किए व्यक्त कर दिया जाए, वही सत्य है। संसार के सभी महापुरुषों ने सत्य की महिमा का बखान किया है। हरिश्चंद्र और युधिष्ठिर जैसे राजाओं को सत्यनिष्ठा के कारण ही गरिमा प्राप्त है। बहुत छोटा-सा शब्द है सत्य, लेकिन इसका पालन अत्यन्त दुष्कर है। इसीलिए महात्मा कबीर ने कहा है कि सच के समान तप नहीं और झूठ के समान पाप नहीं।

तपस्या की परंपरा हमारे देश में रही है। तपस्या में मनुष्य अपने-आप को तपाता है। तप से भी अधिक कष्ट, अधिक तप सत्यपालन में झेलना पड़ता है। सत्य की रक्षा के लिए महाराज दशरथ को पुत्रवियोग में प्राण त्यागने पड़े, राजा हरिश्चंद्र को चंडाल के यहाँ नौकरी करनी पड़ी, युधिष्ठिर को सत्यमार्ग पर चलने के कारण ही अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ा। लेकिन, इन सभी सत्यनिष्ठों का आदर्श हमें यह शिक्षा देता है कि सत्य के मार्ग पर अडिग रहनेवाले लोग ही कीर्तिमान बने हैं। झूठ के पाप-पंक से बचते हुए सच की तपस्या करके ही मनुष्य संसार में अक्षय कीर्ति प्राप्त कर सकता है।

29. बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताए

कई लोग किसी भी काम को शीघ्रतापूर्वक कर डालते हैं। लेकिन, अनेक मौकों पर यह शीघ्र कर्म एक लंबे पश्चात्ताप को भी उत्पन्न कर देता है। प्रत्येक कार्य के भले-बुरे पहलुओं पर भलीभाँति विचार करके ही उसपर अमल करना चाहिए। बिना सोच-विचार किए भले-बुरे कामों में शीघ्रतापूर्वक संलग्न होनेवाले व्यक्ति के जीवन में प्रायः विपत्तियाँ डेरा डाल देती हैं। इसीलिए, महाकवि भारवि ने कहा है कि बिना विचार किए हुए किसी कार्य का आरंभ नहीं करना चाहिए। अविचार विपत्तियों की जड़ है, क्योंकि गुण और दोष का विचार कोई विचारशील व्यक्ति ही कर पाता है और ऐसे ही विचारशील व्यक्ति के गुणों पर लुब्ध होकर सुख-संपदा स्वयं उसका वरण करती है—

सहसा विद्धीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

बहुत पुरानी कहावत है कि जल्दी का काम शैतान का होता है। कोई कार्य संपादित करने के पूर्व उसके पक्ष-विपक्ष, गुण-अवगुण, साधक-बाधक तत्त्वों की समुचित मीमांसा कर लेनी चाहिए, ताकि बाद में पछताना न पड़े। अच्छी तरह विचारकर प्रारंभ किया गया कार्य अधूरा नहीं रह सकता और उसके दूरगामी फल लाभदायक होते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

30. करत-करत अभ्यास ते, जड़मति होत सुजान

बुद्धि की मंदता एक सामान्य चिंता है। बहुत-सारे लोग यह सोचकर दुःखी रहते हैं कि उनसे कोई काम अच्छी तरह नहीं हो सकता और वे अपनी मंद बुद्धि के कारण आजीवन असफल रहेंगे। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। अभ्यास एक ऐसा साधन है, जिसके सहारे कोई महामूर्ख भी पंडित बन सकता है। जिस प्रकार रस्सी की बार-बार रगड़ से पनघट के पत्थर पर भी निशान पड़ जाते हैं, उसी तरह बार-बार अभ्यास करने से बुद्धिशून्य व्यक्ति भी विद्वान बन सकते हैं। महावैयाकरण बोपदेव इसके ऐतिहासिक उदाहरण हैं।

कुशाग्र-बुद्धि किसी पाठ को एक ही बार में याद कर लेती है। लेकिन, ऐसी कुशाग्र बुद्धि से संपन्न व्यक्ति भी पाठ को अपनी बुद्धि की प्रखरता के अहंकार पर छोड़ दे, तो पाठ के विस्मृत होते देर न लगेगी। लेकिन, मंदबुद्धि व्यक्ति पाठ को बार-बार पढ़कर इस तरह आत्मसात् कर सकता है कि वह कभी विस्मृत नहीं हो। अभ्यास की इसी महत्ता को उक्त सूक्ति में रेखांकित किया गया है। सच तो यह है कि अभ्यास ही मस्तिष्क की तीक्ष्णता का केंद्रीय तत्त्व है।

31. परहित सरिस धर्म नहीं भाई

गोस्वामी तुलसीदास ने इस सूक्ति में यह बताया है कि परोपकार जैसा कोई दूसरा धर्म नहीं है। परहित का अर्थ है निःस्वार्थ भाव से दूसरों की भलाई करना। जब कर्म में स्वार्थ और व्यापार का समावेश हो जाता है, तब वह परोपकार नहीं रह जाता। परहित की भावना स्वार्थ की चेतना से जुड़ी नहीं होती, अपितु बिना स्वार्थ सहायता का भाव इसमें होता है। परोपकार करते हुए अनेक संकट झेलने पड़ सकते हैं, अनेक बाधाएँ रास्ता रोक सकती हैं। स्वयं भूखे रहकर भी दूसरों की क्षुधा शांत करने और स्वयं कष्ट सहकर भी औरों के कष्ट-निवारण करने की भावना ही इस दिव्य आचरण का मूलाधार है।

स्वयं अभाव में रहकर भी विपन्नों की सहायता करना परोपकार की परिधि में आएगा। महर्षि वेदव्यास ने स्वीकार किया था कि मेरे हजार-हजार वचनों में दो ही अति महत्त्वपूर्ण वचन हैं—परोपकार से पुण्य होता है और परपीड़न से पाप। गोस्वामी तुलसीदास ने भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर कहा कि परहित के समान कोई दूसरा धर्म नहीं और परपीड़ा के समान कोई अधर्म नहीं।

3683
Memorial Library

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

BHARATI BHAWAN (P & D)

Brihat Nibandh Bhaskar

ISBN 81-7709-078-X 009
6AUPE

Rs 39.00